ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 6 अंक 21-22 जनवरी-जून 2020

त्रैमासिक

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

हिन्दी कश्मीरी संगम एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में 'हिन्दी और कश्मीरी साहित्य में अंतरसंबंध की बुनियादें' विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में वक्तव्य देते साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र एक साथ में हैं। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के अध्यक्ष डॉ. सदानन्द प्रसाद गुप्त एवं प्रख्यात गीतकार डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र।

हिन्दी कश्मीरी संगम एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर डॉ. अतुला सारूरू की पुस्तक 'भारतीय छंद परम्परा में गजल की रीत्यात्मक कवि के लोकापर्ण का दृश्य, चित्र में दाहिने से डॉ. वीणा बुदकी, डॉ. निर्मल विनोद, डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, डॉ. सुधाकर अदीब, डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त, अतुला सारूरू, प्रो. कलानाथ मिश्र डॉ. विनोद तनेजा डॉ. वीरेन्द्र प्रताप सिंह

आयोजन में प्रो. कलानाथ मिश्र सम्पादक साहित्य यात्रा को सम्मानित करते डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त, साथ में हैं डॉ. वीरेन्द्र बुदकी डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, डॉ. सुधाकर अदीब, डॉ. विनोद तनेजा, डॉ. प्रदीप कुमार साव।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-6 अंक-21-22 जनवरी-जून, 2020

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ नरेन्द्र कोहली

डॉ॰ हरीश नवल

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

सहायक संपादक

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्व अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

आलेख

कालजयी कृति उर्वशी: एक पुनर्पाठ 11
डॉ. संध्या प्रेम

साक्षात्कार

यशस्वी आलोचक नन्द किशोर नवल के साथ कलानाथ मिश्र की बातचीत 16

आलेख

रामकथा का लोक विमर्श 24
डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

आधुनिक आर्यभाषा : मराठी 37
डॉ. जसपाली चौहान

हिन्दी : भारतीय अस्मिता की पहचान 42
बलवन्त

नागार्जुन के काव्य में कृषक-क्रांति के स्वर 49
विनय कुमार मिश्र

छायावादी चतुष्ट्य एवं आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के काव्य में बिम्ब-योजना 55
डॉ. आशुतोष मिश्र

क्या उत्तरकाण्ड रामचरितमानस में प्रक्षिप्तांश है? 63
कमलेश कमल

साहित्य और सत्ता : बनते-बिगड़ते रिश्ते 68
डॉ. अनिल कुमार सिंह

लघुकथा

खंडिता 76
हरीश नवल

व्यंग्य

लॉकडाउन के साइड इफेक्ट 79
मदन गुप्ता सपाटु

लघुकथा

क्या करती रहती हो सारा दिन? 82
डॉ. विभा रंजन (कनक)

आलेख

हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी : पुनः विचार 84
डॉ. सुलोचना कुमारी

अपभ्रंश भाषा और साहित्य का विकास 88
आलोक सिंह

वृंदावन में ज्ञान हारा और भक्ति जीती 94
आचार्या रेखा कल्पदेव

एक राष्ट्र-एक भाषा का समाधान गाँधी दर्शन में 98
डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

स्वस्तिक 103
शंकर लाल महेश्वरी

कहानी

बसेरे से बिछड़ कर 106
डॉ. यदुनन्दन प्रसाद उपाध्याय

आशीष 115
डॉ. करूणा कमल

'रूक जाना नहीं.....' 118
भावना विशाल

खुद्दारी 122
हरिप्रकाश राठी

दस्तावेज

निराला की कविता 129
श्री जानकी बल्लभ शास्त्री, शास्त्रीचार्य

कविता

चार सॉनेट 144
डॉ. वेद मित्र शुक्ल

बंद आँखों के नीचे, भाषा 147
धर्मपाल महेन्द्र जैन

तकनीकी तरक्की या त्रासदी 148
डॉ. अर्चना त्रिपाठी

दिनकर के प्रति 149
ललित हरि मिश्रा

भूख, रोटी, कपड़ा, मकान, घर 150
डॉ. अंजनी कुमार सिंह

पुस्तक विमर्श

'आश' की आस निरास न भई 151
विनोद नागर

सम्पादकीय

जीवन यापन : भारदीय दर्शन

जीवन का सहज प्रवाह एकाएक शिथिल पर गया। शहर बंद, सड़कें सूनी, मनुष्य स्तब्ध रह गया। मन अदृश्य आशंकाओं से भर गया। विश्व की समस्त शक्तियाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयीं। एक अदृश्य सूक्ष्म जीवाणु के सामने विज्ञान ने भी जैसे घुटने टेक दिए। मनुष्य प्रकृति के सामने एक बार पुनः लाचार दिखा। एक से सौ, सौ से हजार की संख्या में संक्रमण बढता गया। एक दूसरे से दूरी के सिवाय कोई रास्ता नहीं। लोग घरों में कैद हो गए। यातायात ठप। ट्रेन, विमान, मैट्रो, टैक्सी, रिक्सा सब थम गया। पार्क वीरान। स्कूल, कॉलेज सब में सन्नाटा घरर कर गया। पेट्रोल पंप वीरान। घर में रखे कपड़े, जूते सब हमें निहार रहे हैं, उन्हें पहनने की कोई जरूरत ही नहीं। सारे कारोबार ठप हो गए। अर्थ शास्त्र धरा का धरा रह गया। आधुनिक विकास की अवधारणा को प्रकृति अंगूठा दिखाते नजड़ आयी। एक शेर याद आ रहा है–

हालात ने बच्चों को भी संजीदगी देदी।
सहमे सहमे हुए रहते हैं शरारत नहीं करते।

वर्त्तमान परिवेश में मुझे 2004 में लिखी गयी अपनी ही एक कविता की कुछ पँक्तियाँ याद आ रही हैं–

एक हवा का झोंका ऐसा आया,
मन का मौसम बदल गया
जीवन जैसे ठहर गया.....।
न जाने कैसा चक्रवात था,
प्रकृति का कैसा विषम राग था,
जीवन प्रवाह शिथिल हुआ
मन भीतर-भीतर सहम गया.....।
जीवन जैसे ठहर गया।

आज जीवन के ठहराव को हम देखते हैं और कोरोना महामारी के सामने विवश जीवन को देखते हैं तो हमें अपनी पुरानी संस्कृति, प्रकृति के साथ तारतम्य बनाकर चलने की संस्कृति, आहार, व्यवहार, व्यक्तिगत सुचिता, को अपनाने की ओर स्वतः ही दृष्टि जाती है। यह समय जब जीवन की गति रुक सी गयी है, हमारी बहुत सी आवश्यकताएँ भी सिमट गयी हैं। ऐसी स्थिति हमें पीछे मुड़कर देखने को विवश करता है। यह एक सिंहावलोकन का समय है।

हमें यह महसूस होने लगा है कि प्रकृति मनुष्य की सहचरी रही है, उसकी दासी नहीं। भारतीय संस्कृति की विशेषता इस रूप में रही है कि वह प्रकृति पूजक संस्कृति है, न कि प्रकृति विजेता। साहित्य में प्रतिबिंबित तदयुगीन समाज को जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि वह भी हमारी संस्कृति और प्रकृति के सहयात्रा का साक्षी रहा है। प्राचीन साहित्य, विशेष रूप से वैदिक साहित्य तो मूलतः प्रकृति का ही साहित्य है। प्रकृति के नियामक देवताओं की स्तुति का ही साहित्य है।

वैदिक ऋचाएँ प्रकृति की वन्दनाएँ हैं। हम कह सकते हैं कि आज जो वैश्विक संकट उत्पन्न हुआ है उसके लिए प्रकृति को जीतने वाली अवधारणा ही उत्तरदायी है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की मंशा कोरा अज्ञान ही है। प्रसाद ने कामायनी में मनु से कहलवाया है कि –

प्रकृति रही दुर्जेय,
पराजित हम सब थे भूले मद में,

देव और दानव संस्कृति को भी प्रकृति को जीत लेने का भ्रम हो गया था। जिसके फलस्वरूप प्रलय उत्पन्न हुआ। जिसकी प्रसाद ने कामायनी में बड़ी ही सुंदर व्याख्या की है। साहित्य में यह चिंता निरंतर विद्यमान रही है कि प्रकृति के प्रकृति हमें संवेदनशील होना चाहिए। उसके प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का भाव होना चाहिए। जिस भारतीय संस्कृति और साहित्य में वनस्पतियों से प्रार्थना पूर्वक उसके रस और उसकी औषधियों की याचना की जाती हो और उसके प्रकृति अगाध श्रद्धा और कृतज्ञता व्यक्त की जाती हो, उस संस्कृति का प्रकृति प्रेम स्वयमेव ही स्पष्ट है। दरअसल प्रकृति को जीतने का भ्रम विज्ञान की सीढ़ी ने पैदा किया। जिसके सहारे मनुष्य प्रकृति पर सवार होना चाहता है। उसे अश्व की भाँति मनमाने तरीके से हाँकना चाहता है। किन्तु प्रकृति ने अनेक बार यह सिद्ध कर दिया है कि विज्ञान की अपनी सीमा होती है, वह सर्वशक्तिमान नहीं है। महामारी के उपचार तलाशते हुए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी असहाय दिख रही है। इन सबों के बीच इसकी भी आवश्यकता महसूस हो रही है कि हमें चिकित्सा की नयी तकनीक के साथ-साथ एक बेहतर शिक्षा और चिकित्सा की रूप रेखा पर विचार करना होगा जो योग, आयुर्वेद, वेदांत आदि के गणों से युक्त हो। अर्थात एक सम्पूर्ण स्वास्थ्य पद्धति। मनुष्य जब प्रकृति में असंतुलन उत्पन्न करता है तो प्रकृति शताब्दियों में एकाध बार अवश्य अपना संतुलन बनाती है। आज यह जो महामारी उत्पन्न हुई है यह उसी संतुलन की चेष्टा है। प्रकृति के प्रहार के समक्ष मनुष्य कितना बेवश और असहाय होता है, इसी से प्रकृति की शक्ति का अंदाजा लगाया जा सकता है। हमारी लोक संस्कृति और साहित्य में वृक्षों की पूजा की परम्परा रही है चाहे वह पीपल हो, बरगद हो, नीम हो, तुलसी हो, इन सबकी पूजा होती रही है और इनमें देवी देवताओं का वास माना जाता है। इस प्रकार लोक अपने तरीके से पर्यावरण के प्रति जाग्रत एवं सचेत तथा संवेदनशील रहा है। यही नहीं हमारे यहाँ जीव जंतुओं के प्रति करुणा का भाव रहा है और जीव हत्या की निंदा की जाती रही है। किन्तु मनुष्य जब निरीह जीव जंतुओं को मारता है, तो उसका परिणाम कोरोना जैसी महामारी के रूप में दिखाई पड़ता है। महामारियाँ पहले भी होती रही हैं जिसमें गाँव के गाँव नष्ट हो जाते थे। हैजा, प्लेग आदि ऐसी ही महामारियाँ थीं। भारत के गाँवों में तो एक गाली ही चल गयी। जा तोहें हैयवा लइ जाय। 'हैयवा' हैजा का ही लोक निर्मित रूप है। इस प्रकार थोरे बहुत परिवर्तनों के साथ विभिन्न क्षेत्रों में कहावतों में वह महामारी घर कर गया। इस तरह बीमारी को लोक ने मृत्यु की देवी के रूप में परिवर्तित कर दिया। क्योंकि जब मनुष्य के रोके नहीं रूकता तो लोक ऐसी महामारी को दैवी आपदा अथवा दैव प्रकोप ही मान लेते हैं। वह ठीक भी था क्योंकि दैहिक, दैविक और भौतिक तीन तरह के प्रकोप माने जाते हैं। रामचरित मानस में तुलसी दास जी ने लिखा है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

अर्थ 'रामराज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। दैविक ताप के समक्ष मनुष्य विवश और लाचार नजर आता है। इस प्रकोप का

सम्बन्ध प्रकृति के प्रकोप से रहा है। दैविक प्रकोप प्रकृति को अपना माध्यम बनाता है और मृत्यु ताण्डव करता है। –

पुराणों व शास्त्रों में मनुष्य को प्रकृति, जीव जंतु, पेड़ पौधों से प्रेम करने को बताया गया है। तथा सबकी रक्षा करने को कहा गया है। भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धिति आज सहज ही विश्व को आकर्षित कर रहा है। विश्व के लोग हाथ मिलाना छोड़ नमस्ते और प्रणाम करने लगे हैं। इस परिस्थिति हम जब अपनी ही संस्कृति के मूल में, उनके द्वारा बताए गए जीवन यापन की कला, व्यक्तिगत सुचिता के बारे में सोचते हैं तो चकित होते हैं। यह पता चलता है कि हमारी संस्कृति में व्यक्तिगत सुचिता को कितना महत्व दिया जाता था। यह सब हमारे स्वास्थ्य के प्रति सजगता थी। शास्त्रों में हमें जीवन देने वाली प्रणवायु, जल, सूर्य, नदियाँ, समुद्र, पहाड़ इत्यादि सबका महत्त्व बताया गया है। हम अपने शरीर को स्वस्थ नही रखेंगे तो हमें कई प्रकार के संक्रमण हो सकते हैं। इन्हीं संक्रमणों के कारण हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के जीवाणु या कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं।

पद्मपुराण (51/88) में उल्लेख है कि–

'हस्तपादे मुखे चौव पञ्चाद्री भोजनं चरेत।'

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में भी उल्लेख है कि–

'नाप्रक्षालितपाणिपादो भुञ्जीत न मुत्रेच्चारपीडित।',

(सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान २४)

अर्थात हमें हमेशा अपने हाथ, पैर व मुख को धोने के पश्चात ही भोजन करना चाहिए।

इसी प्रकार 'धर्मसिन्धु' में सूत्र है कि–

लवणं व्यञ्जनं चौव घृतं तैलं तथैव च ।
लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥

अर्थात् नमक, घी, अन्न तथा सभी प्रकार के व्यञ्जन चमच से ही परोसना चाहीये हाथ से परोसे हुए नहीं खाने चाहिये। उनदिनों संभवतः चम्मच के स्थान पर 'सूब' (लकड़ी का चम्मच) प्रयुक्त किया जाता था।

मनुस्मृति में उल्लेख मिलता है कि–

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ॥

अर्थात् बिना कारण अपनी इन्द्रियों (नाक, कान, इत्यादी) को न छूएँ। आज डॉ बार-बार हमें संक्रमण से बचने के लिए नाक, कान, ऑख आदि छूने से मना कर रहे हैं।

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है कि–

'अपमृज्यान्न च स्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥'

अर्थात् स्नान करने के बाद अपने हाथों से या स्नान के समय पहने भीगे वस्त्रों से शरीर को नहीं पोंछना चाहिये ।।

हम इस तरह के अनेक उक्ति भारतीय प्राचीन वाङ्गमय में देख सकते हैं।

इसी तरह पद्मपुराण में वर्णित है कि–

'न धारयेत् परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन ॥'

अर्थात् दूसरों के स्नान के वस्त्र तौलिया इत्यादि प्रयोग में नहीं लेने चाहीये ।। महाभारत में वर्णित है कि–

'अन्यदेव भवद्वासः शयनीये नरोत्तम ।
अन्यद् रथ्यासु देवानाम् अर्चायाम् अन्यदेवहि ॥'

अर्थात् शयन के समय, घर से बहार घूमते समय, पूजन के समय अलग अलग वस्त्र होने चाहिये। तथा दूसरों के पहने कपड़े नहीं पहनने चाहिये। 'न अन्यधृतं (वस्त्रं) धार्यम्।'

इसी प्रकार का निर्देश विष्णुस्मृति में भी है। उसमें कहा गया है कि–

'न अप्रक्षालितं पूर्वधृतं वसनं बिभृयाद्।'

अर्थात् पहने हुये वस्त्र को बिना धोये पुनः नहि धारण करना चाहिये ।। कहा गया है कि 'न आर्द्रं परिदधीत'। अर्थात् गीले वस्त्र नहीं पहनने चाहिये।

इस प्रकार भारत में आज समस्त मनुष्य जाति इस महामारी के समक्ष बेवश और लाचार नजर आ रही है। आज के वैज्ञानिक इस महामारी से बचाव के तरीके और उपचार खोजने में अहर्निश जूझ रहे हैं। निरंतर शोध एवं प्रयोग चल रहा है कि आखिर इस विपत्ति से कैसे पार पाया जाय। संभव है कि शीघ्र ही इसका भौतिक उपचार खोज लिया जाय और मनुष्यता को बचाया जा सके। किन्तु इस महामारी से मनुष्य को यह सबक लेने की जरूरत है कि वह प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदले। उसकी रक्षा करे, उसे पल्लवित, पुष्पित होने के मार्ग में बाधक न बने। प्रदूषण रोका जाय। आज नदियाँ अपने आप स्वच्छ एवं निर्मल हो गयी हैं, पेड़ पौधे हरे–भरे लगने लगे हैं। पेड़ों पर अब धुएँ की चादर नहीं बल्कि पक्षियों के कलरव और भौरों की गुंजार सुनाई पड़ रही है। यह भी देखा गया है कि दुर्लभ होते पक्षी एवं पशु पुनः दिखाई पड़ने लगे हैं। ऐसे में हम संकल्प लें कि इस प्रकृति को हम ऐसे ही निर्मल एवं स्वच्छ रखेंगे और उसे दूषित नहीं होने देंगे। अपने आचरण में हम परिवर्तन लाएँ। अपनी संस्कृति में दिए गए जीवन यापन के संदेशों को जीवन शैली में अपनाएँ। हर आपदा कोई न कोई सन्देश लेकर आती है और मनुष्य का धर्म है कि वह उससे प्रेरणा ले और प्रगति पथ पर अग्रसर हो। निश्चय ही हम सबका मार्ग प्रशस्त होगा और एक नया सबेरा आयेगा।

इस बीच साहित्य क्षेत्र में एक दुखद घटना घटी। मूर्धन्य आलोचक गुरूदेव नंदकिशोर 'नवल' का 12 मई 2020 को 83 वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया। वे हिंदी साहित्य के यशस्वी हस्ताक्षर थे। नवल जी हमारे गुरु एवं पटना विश्वविद्यालय में हिंदी के श्रेष्ठ एवं लोकप्रिय अध्यापक थे। उनके जाने से साहित्य जगत में एक महाशून्य की स्थिति व्याप्त हो गयी। लगभग आठ वर्ष पूर्व हमने उनका एक साक्षात्कार लिया था। इस अंका में हम उसे प्रकाशित कर रहे हैं। आदरणीय हरीश नवल जी का लघुकथा अपको अच्छा लगेगा। संध्याप्रेम, सत्यप्रिय पाण्डेय जी सहित अन्य आलेख, मदन गुप्ता जी का व्यंग्य तथा दस्तावेज के अंतर्गत निराला की काव्य कला पर जानकी वल्लभ शास्त्री जी का विषद समालोचना आदि के संयोग से इस अंक को संग्रहणीय बनाने की चेष्टा की गयी है।

लॉकडाउन के कारण प्रेस भी सब बंद था ऐसे में पत्रिका का प्रकाशन करना दुरूह कार्य था। अतः यह अंक संयुक्तांक है।

आशा है सुधी पाठक के मन को संतोष मिलेगा।

शुभकामनाओं सहित।

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

कलानाथ मिश्र

कालजयी कृति उर्वशी: एक पुनर्पाठ

डॉ. संध्या प्रेम

नामवर जी कहते हैं कि इसके कारण हृदय और बुद्धि के अलगाव के रूप में मन का विभाजन हुआ और उसके कारण एक रिक्तता का संकट पैदा हुआ। उनके मुताबिक काव्य के स्तर पर इस संकट से उबरने के दो ही रास्ते थे : या तो इस संकट को गंभीरता से स्वीकार कर समूचे द्वन्द्वको पूरी नाटकीयता के साथ काव्य रूप दिया जाए या फिर इस संकट को 'संकट' के रूप में मानने से एकदम इंकार कर दिया जाए। बौद्धिक युवा कवि पहला रास्ता चुनें, इससे पहले बच्चन आदि उत्तर छायावादी कवि दूसरा रास्ता अपना चुके थे। जैसा सभी मानते हैं मैथिलीशरण गुप्त के बाद दिनकर जी को ही राष्ट्रकवि कहकर पुकारा गया।

दिनकर जी ने जब लिखना शुरू किया तो छायावाद रूप ग्रहण कर चुका था। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 1930 ई. तक छायावादी रचनाओं ने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। इसी समय तीन और शक्तिशाली कवियों का प्रवेश हुआ। ये हैं- भगवती चरण वर्मा, 'बच्चन' और दिनकर। पहले दो के स्वभाव में मस्ती, उल्लास और अपने प्रति दृढ़ निश्चय का प्राधान्य रहा। दिनकर जी के बारे में लिखते समय वे सिर्फ मस्ती को उनकी विशेषता नहीं मानते। वे लिखते हैं- 'कल्पना की ऊँची उड़ान, विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण 'दिनकर' प्रथम दो कवियों से एकदम भिन्न श्रेणी के कवि हैं। 'दिनकर' की उमंग और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है। दिनकर अपने ढंग के अकेले हिन्दी कवि हैं। यौवन और जीवन उन्हें आष्ट करते हैं, सौन्दर्य का मोहन संगीत उन्हें मुग्ध करता है, पर वे इनसे अभिभूत नहीं होते। उल्लास और उमंग सच्चे अर्थों में मानवता की मुक्ति से ही संभव है। दिनकर में यह आदर्श पूरे जोर पर है।

दिनकर जी ने जिस युग में लिखना शुरू किया था, उस समय अंग्रेजों की गुलामी खत्म करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा संघर्ष नए धरातल पर पहुँच गया था। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन ने पूरे देश को झकझोर दिया था। इसके साथ ही और भी घटनायें थीं जो संपूर्ण देश के मानस को आंदोलित कर रही

थीं। एक तरफ जहाँ महात्मा गाँधी देश के सर्वमान्य नेता बन चुके थे, वहीं दूसरी तरफ स्वाधीनता आंदोलन में युवा शक्ति अपने ढंग से हस्तक्षेप कर रही थी। यही समय था जब भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और पढ़े-लिखे लोगों के बीच साम्यवादी विचार लोकप्रिय होने लगे। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी सोवियत संघ नई आशा बनकर उभरा था। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक का यह कालखंड अत्यंत घटनापूर्ण था। इसमें एक ओर जहाँ मानवता की मुक्ति के लिए आशाजनक संकेत मिल रहे थे और दिशाएँ खुलती दिखलाई पड़ रही थीं, वहीं दूसरी ओर फासिज्म जन्म ले रहा था और द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी भी चल रही थी।

नामवर जी कहते हैं कि इसके कारण हृदय और बुद्धि के अलगाव के रूप में मन का विभाजन हुआ और उसके कारण एक रिक्तता का संकट पैदा हुआ। उनके मुताबिक काव्य के स्तर पर इस संकट से उबरने के दो ही रास्ते थे : या तो इस संकट को गंभीरता से स्वीकार कर समूचे द्वन्द्वको पूरी नाटकीयता के साथ काव्य रूप दिया जाए या फिर इस संकट को 'संकट' के रूप में मानने से एकदम इंकार कर दिया जाए। बौद्धिक युवा कवि पहला रास्ता चुनें, इससे पहले बच्चन आदि उत्तर छायावादी कवि दूसरा रास्ता अपना चुके थे। जैसा सभी मानते हैं मैथिलीशरण गुप्त के बाद दिनकर जी को ही राष्ट्रकवि कहकर पुकारा गया। उन्होंने आजादी के आंदोलन के दौरान लिखना शुरू किया था और उनके चारों ओर की स्थितियाँ उन पर जबर्दस्त असर डाल रही थीं। 1939-40 के दौरान उनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं- 'रसवंती', 'द्वन्द्व-गीत' और 'हुंकार'। इस बारे में वे स्पष्ट करते हैं- 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया।' हम यह भी देखते हैं कि राष्ट्रीयता की जिस भावना का संचार गाँधी जी के द्वारा हुआ, उसमें दूसरों के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता का अहंकार न था, आक्रामकता न थी बल्कि समानता के व्यवहार का कोमल नियंत्रण था। राष्ट्रीयता अपने आपमें एक उदात्त भावना है लेकिन जब वह अहंकार और श्रेष्ठतम के भाव से मुक्त हो जाए तो विश्व बन्धुत्व की उच्चता प्राप्त कर लेती है। दिनकर जी की राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कविताएँ इसी भाव से युक्त हैं-

'गत विभूति भावी की आशा
ले युग धर्म पुकार उठे,
सिंहों की धन-अन्ध गुहा में
जागृति की हुंकार उठे।'

प्रियदर्शन इतिहास कंठ में
आज धवनित हो काव्य बने
वर्तमान की चित्र-पटी पर,
भूतकाल संभाव्य बने।

पर दिनकर जी सिर्फ राष्ट्रवादी ही नहीं हैं। आरंभ से ही वे एक ही साथ अलग-अलग भावाधारित कविताएँ लिख रहे थे। 'हुंकार', 'द्वन्द्व-गीत' और 'रसवंती' - ये तीन संग्रह एक साल के भीतर प्रकाशित हुए। उनको देखकर ही यह राय बना ली गई कि दिनकर जी जैसे कवियों में जोश बहुत है, बौद्धिकता कम है। ऐसे आरोपों से वे व्याकुल ही रहते थे। उन्होंने लिखा है- 'मैं भी

चाहता था कि गर्जन-तर्जन छोड़कर कोमल कविताओं की रचना करूँ, जिनमें फूल हों, सौरभ हो, रमणी का सुंदर मुख और प्रेमी पुरुष के हृदय का उद्वेग हो, और उन्होंने 'रसवंती' में लिखा कि -

'दो प्रेमी हैं यहाँ, एक
बड़े साँझ जब आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है,
'हुई न क्यों' मैं कड़ी गीत की
विधना, यों मन में गुनती है।'

सौंदर्य और प्रेम की भावनाओं की यह अभिव्यक्ति दिनकर जी के मूल स्वभाव के अनुकूल थी। उन्होंने लिखा भी है कि आगे चलकर यही धारा 'उर्वशी' नामक उनके प्रसिद्ध काव्य में जोरों से फूटी। 'उर्वशी' 1955 से 1961 के बीच लिखी गई। इस रचना के लिए उन्हें प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। 'उर्वशी' में भी 'कुरूक्षेत्र' की तरह एक मिथकीय आख्यान को लेकर उसकी पुनर्रचना की गई है। पुरुरवा चंद्रवंशी राजकुल का प्रवर्त्तक था। उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा। इंद्र और वरूण देवताओं के श्राप के कारण उसे पृथ्वी पर उतरना पड़ा। पृथ्वी पर उतरते हुए उसे पुरुरवा ने देखा और उस पर आसक्त हो गया, बाद में उर्वशी भी उसके सौन्दर्य, सच्चाई, भक्ति और उदारता जैसे गुणों के कारण उस पर मुग्ध हो गई। दोनों पति-पत्नी बन गए। बहुत दिनों तक सुख से रहने के बाद एक पुत्र जन्म देकर उर्वशी स्वर्ग चली गई। पुरुरवा उसके वियोग में पागल सा हो गया। उर्वशी इससे प्रसन्न होकर फिर धरती पर लौटी। बार-बार वह स्वर्ग चली जाती थी। लेकिन पुरुरवा तो उसे जीवनसंगिनी बनाना चाहता था। गंधार्वों के निर्देशानुसार उसने यज्ञ किया और उसका मनोरथ पूरा हुआ। यह कथा 'विक्रमोर्वशीयम्' में दी गई है।

दिनकर जी ने 'विक्रमोर्वशीयम्' और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'उर्वशी' पढ़ी थी। मूलत: यह प्रेम और कामाकर्षण की कथा है। आगे चलकर अरविंद की 'उर्वशी' उन्होंने पढ़ी और उसके आध्यात्मिक पक्ष से प्रभावित हुए। 'उर्वशी' में भी लगातार एक द्वन्द्व चलता रहता है। पुरुरवा पूछता है-

'रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं, तो और क्या है?
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार
रस-चुंबन नहीं, तो और क्या है?

'उर्वशी' उनकी बिल्कुल ही अनूठी शब्दति है जो अपने स्वरूप में पर्याप्त नाटकीय दिखलाई पड़ती है, यद्यपि इसका स्वाद मुख्यत: कविता का है। 'उर्वशी' दिनकर की काव्य-यात्रा में एक गंभीर मोड़ का साक्ष्य है। 'उर्वशी' में पुरुष और स्त्री के बीच प्रातिक आकर्षण, काम भावना

के कारण उत्पन्न प्रेम और फिर इस प्रेम के विस्तार को मापने की कोशिश की गई है। इस संबंध में कवि ने स्वयं जो कुछ कहा है, वह हमारे लिए उपयोगी हो सकता है- 'उर्वशी की रचना का समय वह है जब ललित कला उपयोगी कला से बहुत दूर हो गई है। इसलिए आज संतानोत्पत्ति काम का ध्येय नहीं रहा। काम का उपयोगी पक्ष गौण, उसका ललित पक्ष ही प्रधान है।' काम का ललित पक्ष क्या है, प्रेम। फिर प्रेम क्या है? प्रेम संतानोत्पादन के साथ-साथ आनंद का उत्कर्ष भी है, वह शारीरिक होने के साथ-साथ रहस्यवादी अनुभूति भी है।' प्रेम का यह दूसरा पक्ष ही कवि को अपनी ओर खींचता है। उनके अनुसार 'एक आत्मा से दूसरी आत्मा का गहन संपर्क अध्यात्म की भूमिका बन सकता है, यही उर्वशी काव्य का गुणीभूत व्यंग्य है।'

दिनकर ने इसी काव्य-बिंब को लेकर अपनी इस कविता का निर्माण किया है। इस कविता में जो बुनियादी प्रश्न उठाया गया है वह स्त्री और पुरुष के अन्तरंग संबंध को लेकर है। क्या स्त्री और पुरुष समाज के संबंध के बाहर अन्तरंग होने के लिए स्वतंत्र माने जा सकते हैं। यह प्रश्न काव्य के मुख्यधारा में परिव्याप्त है। उर्वशी का एक आत्म कथन है-

'मैं नाम-गोत्र से रहित पुष्प,
अंबर में उड़ती हुई मुक्त आनंद शिखा,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग,
सुर, नर, किन्नर, गन्धर्व नहीं,
मैं केवल अप्सरा!
नर के इच्छा से समुद्भूत।

इसमें उर्वशी ने अपने को नाम-गीत से रहित कहा है। इसका क्या अभिप्राय है?

दिनकर की काव्य-तियों में 'उर्वशी' का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे स्वर इसमें भी ओज का ही है। फिर भी इसमें अन्तर्दृष्टि प्रेम से जुड़ी हुई है।

'उर्वशी' प्रेम काव्य है या नहीं? यह प्रेम शारीरिक आकर्षण से आगे कहाँ तक जाता है? दिनकर जी स्पष्ट करते हैं, 'उर्वशी..... प्रेम की अतल गहराई का अनुसंधान करने के लिए लिखी गई है।..... उर्वशी धर्म नहीं, प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है और यही आख्यान उसका आध्यात्मिक पक्ष है।' इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि उर्वशी में प्रेम के ऐंद्रिय पक्ष का निषेध किया गया है। पुरुरवा की उक्ति है-

फिर अधार-पुट खोजने लगते अधार को।
कामना छूकर त्वचा को फिर जगाती है।
रेंगने लगते सहस्रों साँप सोने के रूधिर में,
चेतना रस की लहर में डूब जाती है।

रूप के सौन्दर्य, प्रेम और शृंगार की अनुभूतियों की खुली अभिव्यक्ति 'उर्वशी में मिलती है। 'उर्वशी' के प्रकाशन के बाद इसे लेकर भारी साहित्यिक विवाद हुआ। भगवतशरण उपाध्याय ने इसे चोरी का माल बताया, भाषा का मजाक उड़ाया और छंदों और असंगत बिंब-विधान आदि की

चर्चा की। मुक्तिबोध को इसमें स्वाभाविकता की जगह शब्दजाल और आडंबर दिखलाई पड़ा। डॉ. नामवर सिंह ने इस पूरे विवाद में मुक्तिबोध की दिशा को ठीक बताया है। पर हमें 'उर्वशी' पढ़ते हुए हमेशा ही दिनकर जी की उनके पहले की रचनाओं को ध्यान में रखकर पढ़ना चाहिए। ऐसा करने पर हम पाते हैं कि दिनकर जी प्रत्येक घटना या मनोभाव अथवा अनुभति के सांस्कृतिक पक्ष को हमेशा से यान में रखते रहे हैं। वह जबर्दस्ती आरोपित नहीं है। 'उर्वशी' की भाषा दिनकर जी के दीर्घ कवि-जीवन के दौरान विकसित हुई उनकी अपनी विशिष्ट काव्य भाषा है, जिसके आधार पर उन्हें उनके समकालीन अन्य कवियों से अलग पहचाना जा सकता है। 'उर्वशी उनके काव्य क्षमता की सही निष्पत्ति है जिसमें महाकाव्य और नाटक की उदात्तता एक साथ देखने को मिलती है। 'कामायनी' के क्रम में 'उर्वशी' का कवि यह दृष्टि उभारता है कि देव-सृष्टि के अमूर्त्त और वायवीय प्रेम-प्रसंग की तुलना में मानवीय संबंधों की मांसलता अधिक स्पृहणीय है। मानवीय संस्कृति ने नश्वर होकर सूक्ष्म-प्रेम की भावना और रचनात्मकता को विकसित किया। छायावाद और उत्तरछायावाद के बीच दृष्टि का एक बुनियादी अंतर यहाँ देखा जा सकता है।

अभी तक दिनकर पर काफी कुछ लिखा जा चुका है। ध्यान देने की बात यह है कि जो कुछ लिखा गया है वह या तो उनकी कविताओं की राष्ट्रीय भावना अथवा प्रगतिशील संवेदना के संबंध में लिखा गया है। जरूर 'उर्वशी' के संबंध में भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है और उसके क्रम में काम और अध्यात्म के संबंध में खूब बातें हुई हैं। आश्चर्य की बात यह है कि दिनकर की कविता में स्त्री की जो भूमिका है उसकी लगभग अनदेखी हुई है। स्त्री का प्रेम से संबंध होता है। यह तो एक सामान्य तथ्य है। यह भी माना जा सकता है कि सारे संबंधों के परे भी इस संबंध की संभावना होती है। रोमांटिक या स्वच्छंदतावादी आंदोलन ने समाज के रस्मों-रिवाज के बाहर स्त्री और पुरुष के संबंध की जो परिकल्पना की थी वह स्मरण योग्य है। सावधानी यह रखनी है कि स्त्री माँ भी होती है, ऐसी भी होती है जिससे 'प्रेम' न हो या कम हो और उसकी अन्य भूमिका भी हो सकती है।

उर्वशी का यह कहना कि वह सारे परिचयों के परे केवल अतृप्त इच्छा की देन है यह स्त्री को बहुत संकीर्ण दायरे में समेटना है। जिस तरह दिनकर की कविता में प्रेम का और उसके आलोचना के रूप में स्त्री का अधिकार दबा हुआ, गौण मालूम पड़ता है। कुछ-कुछ समाज में भी उसी तरह स्त्री की स्थिति रही है। कहने की जरूरत नहीं कि अब स्त्री में एक नई जागरूकता का लक्षण दिखलाई पड़ रहा है। इस जागरूकता के कारण वह न केवल सजग है बल्कि सक्रिय भी। इसके परिणामस्वरूप समाज के उसी तरह साहित्य में स्त्री-विमर्श का प्रभावशाली प्रचलन संभव है।

डॉ. संध्या प्रेम, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखंड)
मो. : 7542860067, ई-मेल : sandhya.prem60@gmail.com

✧ ✧ ✧

यशस्वी आलोचक नन्द किशोर नवल के साथ कलानाथ मिश्र की बातचीत

मूर्धन्य आलोचक गुरूदेव नंदकिशोर 'नवल' का 12 मई 2020 को 83 वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया। वे हिंदी साहित्य के यशस्वी हस्ताक्षर थे। नवल जी हमारे गुरु एवं पटना विश्वविद्यालय में हिंदी के श्रेष्ठ एवं लोकप्रिय अध्यापक थे। नवल जी सच्चे, सहृदय प्राध्यापक तो थे ही हिन्दी जगत के भास्वर नक्षत्र थे। कविता, आलोचना के साथ-साथ आलोचना की आलोचना भी सूक्ष्मता से कर देते थे। तुलसी, मैथिलीशरण, निराला, मुक्तिबोध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकार उनके अध्ययन के विषय रहे। गंभीर विचारों को सहजता से रख देना उनकी विशेषता थी।

उनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृतियों में, कविता की मुक्ति, हिन्दी आलोचना का विकास, प्रेमचंद का सौदर्य शास्त्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, शब्द जहाँ सक्रिय हैं, यथाप्रसंग, समकालीन काव्य-यात्रा, मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, निराला और मुक्तिबोधः चार लंबी कविताएँ, दृश्यालेख, मुक्तिबोध, निराला कृति से साक्षात्कार, शताब्दी की कविता, निराला-काव्य की छवियाँ, कविता के आर-पार, कविताः पहचान का संकट, मुक्तिबोध की कविताएँः बिंब-प्रतिबिंब, क्रमभंग, निकष, उत्तर-छायावाद और रामगोपाल शर्मा 'रूद्र' महत्वपूर्ण हैं। उनका संपादन कौशल 'कसौटी' पत्रिका के रूप में जाना जा सकता है। 'कहाँ मिलेगी पीली चिड़िया (1997), जनपद (2006), द्वाभा (2010), नील जल कुछ और भी धुल गया (2012) आदि प्रसिद्ध कविता-संग्रह हैं। रचना कर्म में वे सत्य निष्ठ थे। बेबाकी पन से अपने विचारों को रखने के लिए भी प्रसिद्ध थे। रचनाकर्म के लिए उन्हें रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार, सुब्रह्मण्यम भारती पुरस्कार, दिनकर पुरस्कार, राजन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान से विभूषित किया गया था।

2012 में मैंने उनसे साहित्य पर अंतरंग बातचीत की थी। जो नईधारा के अप्रैल-मई अंक में प्रकाशित हुआ था। सहज स्नेहपूर्ण, आत्मीयता के साथ उन्होंने मेरे प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दिया था। आज मैं उनके यशःकाय को नमन करते हुए वह साक्षात्कार प्रकाशित कर रहा हूँ।- कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा के सम्पादक प्रो. कलानाथ मिश्र नन्द किशोर नवल किशोर जी के साथ उनके आवास पर फाईल चित्र 12 मई 2020

कलानाथ : आपकी पत्रिका 'कसौटी' निकलती थी, जो कुछ अंकों के बाद वह बंद हो गई। इसके पीछे क्या कारण है?

नंद किशोर नवल : कसौटी दरअसल पुनश्च नामक एक एन.जी.ओ. की पत्रिका थी, जिसके कर्ता-धरता अपूर्वानन्द थे। उन्होंने मेरी इच्छा का खयाल कर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं एक आलोचना त्रैमासिक का संचालन करूँ। विश्वविद्यालय की सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद मैंने उनके अनुरोध किया पर इस शर्त के साथ कि इसके सिर्फ एक अंक निकलेंगे। पंद्रह अंक निकले और फिर उसका धूमधाम से जनाजा निकला यानी समापन हुआ, एक विशेषांक के रूप में जो बहुत लोकप्रिय हुआ, और आज भी वह पुस्तक रूप में बहुत ज्यादा माँग में है।

कलानाथ : आप लगभग पिछले पाँच दशकों से साहित्य साधना में रमे हैं। इस आधी शती के साहित्यिक सफर के बाद आप कैसा अनुभव करते हैं?

नंद किशोर नवल : देखिए, मैंने अलोचना में, जो शटर-पटर किया है, उसे साहित्य साधना जैसा गरिमा गरिम नाम न दें। मैं एक साहित्य प्रेमी हूँ और अपने को ही जानने, समझने के लिए उल्टा-सीधा लिखा है। आलोचना को मैं भूल सुधार की प्रक्रिया कहता हूँ। इसलिए टी. एस. ईलियट ने कहा है कि - जिस भाषा में आलोचकों की जितनी लम्बी परम्परा होती है, उसमें सत्य तक पहुँचने की उतनी सम्भावना होती है। यानि अगला आलोचक पिछले आलोचक की भूल दुरुस्त करता हुआ आगे चलता है। मैं यह बात आलोचक मात्रा पर लागू कर रहा हूँ। यदि उसमें विकाशशीलता नहीं है तो वह एक बिन्दु पर चक्कर काटता रहेगा। पचास वर्षों की हिन्दी कविता को निकट से देखने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि

वह अवास्तविकता से यथार्थ की दिशा में आगे बढ़ी है लेकिन कल्पनाशीलता को छोड़कर नहीं। कारण यह कि बिना कल्पनाशीलता के रचना सम्भव ही नहीं है। हाँ उस कल्पना के रूप बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ पन्त की कल्पना एक तरह की थी और मुक्तिबोध की दूसरी तरह की। इस परिवर्तन का कारण वस्तु और बिम्ब के बीच में रचनाकार का स्थित होना है। उसमें अपवर्तित होकर वस्तु का रूप बहुत बार इस तरह बदल जाता है कि उसे पहचानना मुश्किल होता है। कविता प्राय: गद्य में लिखि जाती है लेकिन समर्थ कवि उसमें भी बातचीत के लय का निर्वाह करते हैं। भाषा सरल हो गई है, लेकिन सपाट नहीं बल्कि उसमें एक जटिलता का समावेश हुआ है।

कलानाथ : उस समय के साहित्यिक परिवेश और आज में क्या अंतर लगता है आपको?

प्रश्न : साहित्य की मेरी दुनियाँ गाँव से चलकर महानगर दिल्ली तक पहुँची है। पिछले पचास वर्षों में साहित्यिक परिवेश में भयावह परिवर्तन हुआ है। अब लेखक कम और लेखक यश: प्रार्थी अधिक रह गए हैं। 'प्रकाशन संस्थाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ, संचार माध्यम विदेशी दूतावास, विदेश यात्राएँ, पुरस्कार और सम्मान' इस सबों ने मिलकर माहौल को गैर रचनात्मक बना दिया है। मुक्तिबोध ने कहा था कि आजादी के बाद हिन्दी लेखकों में अवसरवाद की बाढ़ आई है। अब उस बाढ़ ने जल प्रलय का रूप धारण कर लिया है।

कलानाथ : आपकी पत्रिका 'कसौटी' निकलती थी, जो कुछ अंकों के बाद वह बंद हो गई। इसके पीछे क्या कारण है?

नंद किशोर नवल : कसौटी दरअसल पुनश्च नामक एक एन.जी.ओ. ही पत्रिका थी, जिसके कर्ता-धरता अपूर्वानन्द थे। उन्होंने मेरी इच्छा का खयाल कर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं एक आलोचना त्रैमासिक का संचालन करूँ। विश्वविद्यालय की सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद मैंने उनके अनुरोध किया पर इस शर्त के साथ कि इसके सिर्फ एक अंक निकलेंगे। पंद्रह अंक निकले और फिर उसका धूमधाम से जनाजा निकला यानी समापन हुआ, एक विशेषांक के रूप में जो बहुत लोकप्रिय हुआ, और आज भी वह पुस्तक रूप में बहुत ज्यादा माँग में है।

कलानाथ : राजकमल से गो. तुलसीदास पर आपकी पुस्तक आई है। वर्तमान समय में तुलसीदास की प्रासंगिकता के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : 'प्रासंगिकता' मार्क्सवादियों द्वारा चलाया गया एक ऐसा शब्द है, जो पूरी तरह से साहित्य के लिए बाहर का शब्द है। श्रेष्ठ रचना की यह विशेषता होती है कि वह प्रत्येक आने वाले समय में अपना रूप बदलकर समकालीन हो जाती है। यदि ऐसा न होता, तो अतीत का सम्पूर्ण साहित्य अजायब घरों में रखने का चीज होता और बाल्मीकि रामायण, महाभारत, कालिदास, भवभूति, विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी और बिहारी को कोई नहीं पढ़ता। अतीत का साहित्य कैसे समकालीन हो जाता है इसका बहुत ठोस उदाहरण भारतेन्दु का नाटक अंधेरनगरी है, जिसे देखने पर आपातकाल के दौरान पटना रेडियो पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। तुलसीदास हिन्दी कवियों की शिरोमणि हैं। वे सनातनी हिन्दु थे। उनके कुछ हिन्दु धर्मशास्त्र से प्रेरित विचारों को देखकर उनके सम्पूर्ण काव्य को खारिज कर देना अपनी सबसे बड़ी सम्पत्ति गवाँ देना है। शेक्सपीयर, मिल्टन, टॉल्सटॉय आदि सभी इसाई थे, लेकिन उनका इसाई मत हमें उनके साहित्य से रस ग्रहण

करने में कहीं बाधा नहीं डालता, जैसे मीर, गालिब और ईकबाल मुसलमान थे लेकिन बावजूद उसके हम उन्हें अपना मानकर स्वीकार करते हैं। त्रिलोचन की पंक्ति याद कीजिए, 'गालिब गैर नहीं हैं'।

कलानाथ : आप अब तक आधुनिक कविता पर लिखते रहे। आधुनिक साहित्य के पाठक और आलोचक रहे हैं। पर इस बार आपने भक्तिकालीन कवि तुलसीदास पर लिखा। इस परिवर्तन का क्या कारण है ?

उत्तर : बहुत पहले एक सज्जन ने मेरा साक्षात्कार लेते हुए मुझसे पूछा था कि भविष्य में आपकी क्या योजनाएँ हैं? मैंने उन्हें अपनी योजनाएँ बतलाई थीं और कहा था कि यदि जिन्दगी ने मौका दिया तो अन्त में मैं भी अपनी नैया तुलसी दास के समुद्र में उतार दूँगा। वह इसलिए कि तुलसीदास मेरे सर्वासिद्ध प्रिय कवि हैं और उन पर पुस्तक लिखना मैंने क्यों आवश्यक समझा, इसका जिक्र उसकी भूमिका में ठिकाने से दिया गया है। तुलसी दास के बाद मैं कुछ भी और लिखने की स्थिति में नहीं था और चिर विराम की अवस्था में पहुँच गया था। किसी कारण आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास लिखने के लिए भारतीय ज्ञान पीठ फेलोशिप स्वीकार करने के आलोक जैन के अनुरोध को मैंने तीन बार ठुकराया। लेकिन एक दिन अचानक मेरे भीतर आत्मविश्वास पैदा हो गया और मैंने उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। जिन्दगी ने मुझे कुछ और मौका दे दिया था जिससे वह बृहत् योजना निर्बाध पूरी हुई और अब तो पुस्तक भी रिलीज हो चुकी है। मैंने यह भी स्पष्ट कर दूँ कि इतिहास में नौ अध्याय है जिन्हें डिक्टेट कराने में मुझे ठीक नौ महीने लगे। मुझे अधिक दौड़-धूप नहीं करनी पड़ी क्योंकि उससे संबंधित निन्यानब्बे प्रतिशत सामग्री मैंने जुटा रखी थी। फेलोशिप की रकम कुछ बची हुई पुस्तकें और ग्रंथावलियाँ खरीदने में तथा डिक्टेशन लेने वाले को पारिश्रमिक देने में गई। मैं डिक्टेशन लेने वाले अपने एक छात्र को पाँच हजार रुपया महीना दिया करता था। आधी पुस्तक का डिक्टेशन मेरी धर्म पत्नी ने लिया था और आधी का मेरे उक्त छात्र ने। फिर दो तीन महीने समय कम्प्यूटराईजेशन और प्रूफ देखने में गए।

कलानाथ : कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' में उसके संपादक मंडल के सदस्य छद्म नाम से लिखते थे। कहा जाता है कि नंदकिशोर नवल भी विवेकी सिंह के नाम से स्तंभ लिखते थे? आपको छद्म नाम से लिखने की क्यो आवश्यकता हुई?

उत्तर: मैंने डा. गोपाल राय सम्पादित समीक्षा में कुछ समीक्षाएं लिखी थीं। कसौटी में उसके हर दूसरे अंक में मुझे इस नाम से भी एक लेख लिखना पड़ा क्योंकि एक ही लेखक के नाम से उसकी एकाधिक रचना जब किसी पत्रिका में छपती है, तो अच्छा नहीं लगता है। मतवाला में निराला अपने नाम से कविताएँ लिखते थे और दो स्तम्भ गरगज सिंह वर्मा और साहित्य शार्दूल के नाम से लिखते थे। इसी तरह शिवपूजन बाबू सम्भवत: चलती चक्की के नाम से एक स्तम्भलिखते थे। यह पत्रिका का सामान्य नियम है, जिस हर सचेतन सम्पादक जानता है।

कलानाथ : आपको रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार, सुब्रहम्णकयम् भारती पुरस्कार, दिनकर पुरस्कार भी मिल चुका है पर बिहार के 'राजेन्द्र प्रसाद शिखर-सम्मान' से विभूषित किए जाने पर आप ने कैसा महसूस किया? इसमें से किस पुरस्कार से आप सर्वाधिक प्रसन्न हुए?

नंद किशोर नवल : पुरस्कार ओ सम्मान के समाचार से स्वभावत: प्रसन्नता होती है, लेकिन मुझे वह कहीं से अभिभूत नहीं कर पाता क्योंकि मेरे दृष्टि मे एक ही चीज का महत्व है, जो कि काम है। अपना काम करना चाहिए और पुरस्कार सम्मान की चिंता छोड़कर ही चलना चाहिए। संस्कृत में एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि स्तुति अर्थात् यश रूपी कन्या आज तक कुँवारी है क्योंकि जो उसे चाहता है उसे वह नहीं चाहती और जिसे वह चाहती है वह उसे नहीं चाहता। इसके अलावा एक उक्ति ही है कि 'प्रतिष्ठा' शूकरी विष्ठा। ऐसी स्थिति में कोई पुरस्कार ओ सम्मान की भूख क्यो पालेगा। मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता अपने राज्य के राजेन्द्र प्रसाद स्मृति शिखर सम्मान की प्राप्ति से हुई, क्योंकि इसका निर्णय मुख्यत: डा. नामवार सिंह ने किया था और इसकी राशि भी सबसे ज्यादा थी।

कलानाथ : आज दिल्ली साहित्यिक राजधानी भी है। वहां रहकर लिखने के अपने फायदे हैं। पर आप पटना में ही जमे रहे। आपको नहीं लगता कि इससे आपकी ख्याति बाधित हुई?

नंद किशोर नवल : एक दिल्ली वह थी जो मैथिली शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, बनारसी दास चतुर्वेदी, जैनेन्द्र कुमार, रामधारी सिंह दिनकर और डा. नागेन्द्र की दिल्ली थी उस समय दिल्ली का वातावरण पूरी तरह से साहित्यिक था। उस समय दिल्ली जाने में वातावरण में हिन्दी की सुगन्ध महसूस होती थी। इन लेखकों ने दिल्ली में उर्दू वालों के समकक्ष हिंदी की सत्ता स्थापित की थी। लेकिन जैसे-जैसे दिल्ली प्रचार-प्रसार का केन्द्र होती गई वैसे-वैसे लेखकों में लेखकीय ईमानदारी कम होती गई और वे सुख-सुविधा के पीछे भागने लगे। आज दिल्ली में उठापटक, गाली-गलौज, खीचतान, लूटपाट आदि की स्थिति है। मतलब यह कि आज की दिल्ली पूरी तरह से गैर रचनात्मक हो चुकी है। नामवर जी की पीढ़ी के बाद न पढ़ने वाले लेखक दिल्ली में रह गए हैं न लिखने वाले। अकारण नहीं कि आज महत्वपूर्ण साहित्य की रचना दिल्ली से दूर के शहरों में हो रही है, यथा भोपाल, रायपुर और बनबारस'।

कलानाथ : कहा जाता है कि आज कल कविता के पाठक कम होते जा रहे हैं। आपका इस बारे में क्या मानना है?

नंद किशोर नवल : मैं यह नहीं मानता कि आज कविता के पाठक कम होते जा रहे हैं। एक तो कविता पुस्तकों की कीमत बहुत बढ़ गई है और दूसरे कवियों ने निरर्थक कविताएं लिखना शुरू कर दिया है। उचित ही इसका उत्तर पाठक उपेक्षा से देते हैं। कविता के पाठक कम नहीं हुए हैं, इसका प्रमाण धूमिल का कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' है। आज देख लें, उस पुस्तक के कितने संस्करण हो चुके। यह बात उन सभी कवियों के संग्रहों पर लागू है जो सम्प्रेषणीय हैं। वैसे भी कविता के पाठक कथा साहित्य के पाठक की तुलना में शुरू से कम रहे हैं। आजादी की लड़ाई के दौरान मैथिली शरण और दिनकर की कविता पुस्तकें खूब बिकीं आज उनकी पुस्तकें भी वही पढ़ते हैं जो सच्चे काव्य प्रेमी हैं। ये सच्चे काव्य प्रेमी साहित्य जगत में हमेशा रहेंगे और साहित्य की संख्या के साथ उनकी संख्या निश्चय ही बढ़ती जाएगी।

कलानाथ : पटना में आजकल 'बिहार दिवस' का आयोजन हा रहा है। साहित्य के क्षेत्र में

गौरव प्रदान करने वाली बिहार की कौन-सी बात आप को सबसे अच्छी लगती है?

नंद किशोर नवल : बिहार दिवस और बिहार स्थापना दिवस इनको धूमधाम से मनाया जाना चाहिए लेकिन इसपर करोड़ों-करोड़ की राशि खर्च करना गलत है। क्योंकि तब ये आयोजन ग्लैमर का शिकार होकर प्रचार-प्रसार का साधन हो जाते हैं और जनता के मुँह की रोटी छीनी जाती है। यदि पिछले सौ वर्षों में साहित्य के क्षेत्र में बिहार को गौरव प्रदान करने का श्रेय किसी को दिया जा सकता है तो चार प्रतिभाओं को। वे हैं-रामधारी सिंह दिनकर, नागार्जुन, फणिश्वर नाथ रेणु और राजकमल चौधरी।

कलानाथ : आज सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं लेकिन उनमें स्तरीयता का अभाव है। आपका इस पर क्या मत है। आपके हिसाब से हिन्दी में स्तरीय पत्रिकाएं कौन-कौन-सी है?

उत्तर : एक समय था कि हिन्दी छोटी पत्रिकाओं का आन्दोलन चला था। ये आन्दोलन धर्मयुग जैसी रंगीन पत्रिकाओं के विरुद्ध था। वह पत्रिका एक इजारेदार घराने की पत्रिका भी थी। आज धर्मयुग, सारिका साप्ताहिक, हिन्दुस्तान आदि पत्रिकाएं बन्द हा हो चुकी हैं। इधर सारी छोटी पत्रिकाएं मोटी पत्रिकाएं हो गई हैं। उनमें कूड़ा कचरा ही अधिक रहता है। सम्पादक तरह-तरह से अपने को और अपने रुचि के लेखकों को प्रक्षेपित करता है। उसे साधारण पाठाकों का कतई परवाह नहीं है। वो उनका नाम तो बहुत लेता है, लेकिन भीतर से उन्हें गँवार मानता है। उसे इस बात का चेत ही नहीं है कि उनके रसबोध को वाल्मिकि, व्यास, कालिदास, भवभूति से लेकर प्रेमचंद-निराला तक ने बनाया है। ऐसे में वह सम्पादकों के दिशा निर्देश को कैसे माने। अभी हिन्दी में एक भी पत्रिका ऐसी नहीं है, जिसका इन्तजार रहता है। नाम ही लेना हो तो देखने योग्य जो पत्रिकाएं रह गई हैं वे हैं नया ज्ञानोदय, तद्भव, वागर्ल और किसी हद तक आलोचना।

कलानाथ : आज कल इन्टरनेट पर हिन्दी की कई पत्र-पत्रिकाएँ, एवं ब्लाग उपलब्ध है आप को क्या लगता है इससे हिन्दी साहित्य और उसके पाठक वर्ग का विकास हो रहा है?

नंद किशोर नवल : एक तो इन्टरनेट की पहुँच अभिजात्य वर्ग तक ही है, जिसकी दृष्टि में हिन्दी का साहित्य तीन नम्बर की चीज है। ऐसी स्थिति में उसे हिन्दी साहित्य का क्या विकास होगा। सम्पादक और प्रकाशक इन्टरनेट पर अपनी पत्रिकाओं और पुस्तकों को डालकर अपना रुतबा बढ़ाना चाहते हैं। जहाँ तक ब्लॉग की बात है लेखकों का ब्लॉग तो अभिनेताओं के ब्लॉग से भी कम महत्वपूर्ण है। उसे यदि कोई देखता है तो निहित स्वार्थ वाले।

कलानाथ : आजकल स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श दोनों पर खूब लिखा जा रहा है। आप इस विमर्शों को किस रुप में देखते हैं?

नंद किशोर नवल : साहित्य की दुनिया बहुत बड़ी है। उसमें विचारों और विमर्शों के लिए भी जगह है लेकिन ये साहित्य के नियामक नहीं हो सकते, उसके अनुशासन को मानकर ही उसमें बने रह सकते हैं। यह बात स्मरणीय है कि आचार्य शुक्ल ने कविता को कर्मयोग और ज्ञान योग से अलग भाव योग कहा था। यह साहित्य मात्रा पर लागू हैं तात्पर्य यह कि साहित्य के लिए भूल वस्तु संवेदना है। विचार या ज्ञान नहीं। विचार और ज्ञान फैलते नहीं हैं। उनके पंखों में जैसे पत्थर बंधे होते हैं जबकि संवेदना आकाश की व्यापकता में अपने पंख फैला सकती है। दूसरे, अनुकरण पर

आई हुई कोई चीज बहुत दिन नहीं चल सकती। स्त्री विमर्श यूरोप के फेमिनिज्म की देन है और दलित विमर्श अमेरिका के ब्लैक मूवमेन्ट की। मेरा कहना यह है कि इन दोनों विमर्शों पर सिर फुटौव्वल करने से बहतर है स्त्री और दलित को विषय बनाकर लिखी गई किसी महत्वपूर्ण रचना को साहित्य की प्रदर्शनी में रख देना। लेकिन स्त्री विमर्श वाली लेखिकाएँ कहती हैं कि स्त्रियों की पीड़ा स्त्री ही जान सकती है इसलिए उनपर कलम चलाने के अधिकारी वही हैं। इसी तरह दलित विमर्श वाले लेखक कहते हैं कि जो स्वयं दलित नहीं है, वे दलितों पर प्रामाणिक रूप से नहीं लिख सकते। ये दोनों अपनी परम्पराओं को भी नहीं जानते। नामवर जी ने एक बार टॉल्सटॉय की कहानी 'इन्सान और हैवान' की ओर संकेत करते हुए कहा था कि घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है।

कलानाथ : वर्तमान में स्त्री-विमर्श के नाम पर देह-विमर्श अधिक हो रहा है। आप इस पर क्या कहेंगे? स्त्री स्वतंत्रता को किस रूप में देखते हैं आप?

नंद किशोर नवल : स्त्री के लिए यौन स्वच्छंदता की बात सर्वप्रथम सेकेण्ड सेक्स की लेखिका साइमन द बुआ ने की थी, जिसे जर्मन द ग्रीयर ने अतिवाद तक पहुँचा दिया। ज्ञातव्य है कि 'बुआ' ने स्त्री की यौन स्वच्छंदता से शुरू किया था और वे मानव स्वतंत्रता तक पहुँची। जहाँ कहीं साम्राज्यवादी उपनिवेश में स्वतंत्रता की लड़ाई चलती थी बुआ दौड़ कर वहाँ पहुँचती थी इसके अलावा अन्त में आकर उन्होंने परिवार संस्था का विरोध भी छोड़ दिया और कहा कि मैं परिवार विरोधी नहीं हूँ बस पति-पत्नी के बची समझदारी (अंडर-स्टेण्डिंग) होनी चाहिए। दोनों बराबर के हिस्सेदार बनकर परिवार चलाएँ, बच्चों का पालन करें और एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान। हिन्दी की स्त्री विमर्श वाली लेखिकाएँ स्वयं परिवार में रहकर बच्चों का पालन करते हुए, उन्हें यौन स्वच्छंदता दिए बगैर सिर्फ यौन स्वच्छंदता की माँग करती हैं और फेमिनिज्म के इस नारे को अपना नारा बना लिया है कि दुनिया कि महिलाओं, पुरुषों ने अब तक तुम्हारे शरीर का सील करके रखा है उस सील को तोड़ दो।

कलानाथ : आप लगभग पिछले पाँच दशक से कविता की आलोचना और आलोचना की आलोचना करते रहे हैं। निराला, मुक्तिबोध, मैथिलीशरण, और अब तुलसी। इधर महावीर प्र. द्विवेदी, प्रेमचंद। संख्या में कवि और कविता की आलोचना की अधिक है। क्या आपका मन कविता की आलोचना में ही रमता है?

नंद किशोर नवल : मैं मूलत: कविता प्रेमी हूँ, उसमें भी आधुनिक कविता प्रेमी, क्योंकि ब्रजभाषा में मेरी वैसी पैठ नहीं है। यद्यपि यथा शक्ति डिंगल से लेकर पिंगल तक के दृश्य को पढ़ने और समझने की कोशिश की है। मैं अपने प्रात: स्मरणीय गुरुदेव प्रो. नलिन विलोचन शर्मा का शिष्य हूँ। वे कविता को ग्रहण करने के बाद उसे बौद्धिक विश्लेषण पर जोर देते थे इसलिए मैं स्वभाविक रूप से उधर बढ़ गया। कोई दूसरा काम था नहीं इसलिए उसमें धंसता चला गया। मैं अपने एम.ए. के छात्रों का शुक्रगुजार हूँ कि उन्हें मैं जिन-जिन कवियों को पढ़ाता था उनमें सूर तक पैठने का मुझे अवसर दिया।

कलानाथ : आप आलोचक हैं पर आपने कविताएं भी लिखी हैं। 'कहाँ मिलेगी पीली चिड़याँ' में आपकी कविताएँ संकलित हैं। कहाँ आपका मन अधिक रमा है? मौलिक

लेखन में या आलोचना में?

नंद किशोर नवल : मैंने भी साहित्य में कविता के माध्यम से ही प्रवेश किया। पहले मैं गीत लिखा करता था। पर नई कविता के आन्दोलन के झोंके ने सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और थोड़े दिनों बाद मैं नयी कविता के ढंग से की कविताएँ लिखने लगा। कहाँ मिलेगी पीली चिड़िया में ज्यादा कविताएँ, जिनमें भरपूर ताजगी है, मेरे छात्र जीवन की है। मैं प्रकृति से रोमानी हूँ, इसलिए प्रेम और प्रकृति ये दोनों मुझे सबसे ज्यादा संवेदित करते हैं। आज भी कोई अच्छी कविता पढ़ने को मिल जाती है तो मैं भीतर से प्रकम्पित हो उठता हूँ और वो दिन एक अत्यारुपेय आनन्द के साथ गुजरता है। जहाँ तक आलोचना की बात है, गुरुदेव का यह कथन मुझे इसी क्षण सही लगता है कि – 'आलोचना कला का शेषांस है।' मेरे मन को सबसे जादे रमाने वाली चीज कविता है वह अपनी हो या दूसरे की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं आपसे यह कह दूँ कि हिन्दी की काव्य परम्परा इतनी समृद्ध है कि उस आनन्द सागर में कोई जीवन भर तैरता रह सकता है।

कलानाथ : हिन्दी पर अंग्रेजी का प्रभाव निरंतर बढ़ रहा है। एक नाम ही दे दिया गया है 'हिंग्लिश'। क्या इससे हिन्दी का विकास अवरूद्ध होगा?

नंद किशोर नवल : किसी भी भाषा का विकास दूसरी भाषा के सम्पर्क में आने पर ही होता है, जैसे अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों और मुहावरों ने हिन्दी को समृद्ध किया है। इस प्रसंग में यह बात नोट करने लायक है कि किसी दूसरी भाषा से हम कुछ लेते हैं तो उसे अपना बना करके। जैसे गरीब को हम गरीब बना लेते हैं और उसका बहुवचन गुरबा न करके गरीबों कर लेते हैं। यही बात अंग्रेजी पर भी लागू है। अंग्रेजी के अनेक शब्द हमने लिए हैं, लेकिन उन्हें अपना बनाकर, जैसे हॉस्पीटल को हमने अस्पताल कर लिया है और कॉलेज को कालेज। यह हिंग्लिश वाली बात मेरे समझ में नहीं आती, क्योंकि यह हिन्दी के अपने रूप को विकृत करना है, लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फैलाव के साथ अंग्रेजी और हिन्दी का हास्यास्पद मिश्रण किया जा रहा है और कुछ लोग इसे हिन्दी का विकास समझते हैं। मेरा खयाल है कि अपनी प्राण शक्ति से उद्वेलित हिन्दी भाषा की धरा बहुत शीघ्र ऐसी विकृतियों को किनारे पर फेंक देगी और अपने गति से आगे बढ़ जाएगी।

कलानाथ : आगे काम करने की आपकी क्या योजना है?

उत्तर : आपके इस प्रश्न के उत्तर में मैं सिर्फ फिराक का यह शेर दूहरा रहा हूँ – 'सब मरहले हयात के तय करके अब फिराक बैठा हुआ हूँ मौत में ताखीर देखकर '

कलानाथ : नए रचनाकारों के लिए कोई संदेश / मार्गदर्शन देना चाहेंगे।

उत्तर : संदेश और मार्गदर्शन ये दोनों बड़े शब्द हैं। मैं उन्हें सिर्फ यह परामर्श दूँगा कि वे क्रमबद्ध रूप से साहित्य का अध्ययन करें और रचना में हमेशा अपने को सीखने और विकसित करने पर ध्यान दें। याद रखें कि किसी रचनाकार का शिक्षक कोई महान रचनाकार ही हो सकता है, मुझ जैसा टुच्चा आलोचक और अध्यापक नहीं।

रामकथा का लोक विमर्श

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

अब जरा इसी अंगिका लोकगीत का एक अन्य पाठ देखें जिसके अनुसार दशरथ ने गुरु वशिष्ठ से प्रार्थना की कि मुझे कोई संतान नहीं है और अब मैं वृद्ध हो चला हूँ, आप मेरा दुःख दूर कीजिए। इसके बाद सभी ऋषियों ने मंत्रणा की और यज्ञ करके दो पिंड तैयार किये। एक पिंड कौशल्या को तथा दूसरा कैकेयी को दे दिया। दोनों ने अपने में से आधा-आधा सुमित्रा को दे दिया। इसीलिए कौशल्या और कैकेयी को एक-एक तथा सुमित्रा के दो पुत्र हुए।

'ना ना भाँति राम अवतारा' वाली उक्ति जितनी शास्त्र पर लागू होती है उससे कहीं ज्यादा लोक पर लागू होती है। लोक ने रामकथा के कई-कई पाठ निर्मित किये हैं, यों भी लोक शास्त्र की तरह किसी एक पाठ का आग्रही नहीं होता, वह किसी भी कथा प्रसंग का एकाधिक पाठ रचता है और उसे नवीन कथा प्रसंगों से युक्त करता है, उसे ठोंक बजाकर दुरुस्त करता है और लोक की कसौटी पर कसता है और उस कसौटी पर जो खरा उतरता है, उसे ही वह ग्रहण करता है, बाकी को छोड़ देता है। इसी तर्ज पर रामकथा से जुड़े विविध कथा प्रसंगों के लोक ने शास्त्रोत्तर पाठ रचे हैं, चाहे वह राम जन्म का प्रसंग हो अथवा वनवास का हो या सीता निष्कासन का प्रसंग हो, इन सबका लोक ने नया पाठ प्रस्तुत किया है। सबसे पहले राम जन्म को लेकर ही लोकगीतों में एकाधिक पाठ मिलते हैं, जैसे अँगिका के एक सोहर लोकगीत में सन्दर्भ आया है कि जब दसरथ की तीनों रानियों को कोई संतान नहीं हुई तो पंडित को बुलाकर शुभ लग्न में औषधि लाई जाती है और उसे कुमारी कन्या से पिसवाकर रानियों को पिलाया जाता है जिससे वे गर्भवती हो जाती हैं और उन्हें पुत्र की प्राप्ति होती है-

अहे हंकरो नगर के बाभन, दिवस हे गुनाय दे हो हे ,
ललना रे, कौन नछतर तोड़ी क आनब, कोसिला रानी ओखध भल हे।
अहे कहमा से आनब लोढ़िया, कहमा से आनब सिलोट भल हे।
ललना रे, कहमा से कनिया रे कुमारी, ओखध पीसि पियाएति हे।

.....

कौने मुख राखब लोढ़िया, कौने मुख सिलोट भल हे।
ललना रे कौने मुख भरब रे कटोर, कौने मुख ओखध भल पिअति हे।
दखिन मुख राखब रे लोढ़िया, पछिम मुख सिलोट भल हे।
सुरुज मुख भरब कटोरा, पीसि रानी पीअति हे।[1]

यही नहीं, यहाँ तक विचार किया गया कि सिल और लोढ़े को किस दिशा में रखकर औषधि पीसी जाय और किस दिशा में मुँह करके उसे पिया जाय। इससे यह संकेत स्पष्ट है कि प्रत्येक दिशा का अपना महत्व होता है और लोक में दिशा का विचार किया जाता है लिहाजा दिशाशूल आदि का भी विचार किया जाता है इसीलिए यह कहा गया होगा कि –

सोम सनीचर पुरुब न चालू। मंगर बुध उतर दिश कालू।। इस प्रकार सबसे पहले वह औषधि कौशल्या ने पिया, फिर कैकेयी ने और सबसे अंत में सुमित्रा ने सिल धोकर पिया–

आहे पहिने जे पिअलक रानी कोसिला, तब रानी कंकइ न हे।
ललना सिला धोइ पिअलक रानी रे सुमिंतरा, तीनों ही रानी सैं हे।
कोसिला के जनमल राजा रामचंदर, भरथ कंकइ के जनमल हे।
ललना रे सुमिंतरा के जनमल लछुमन, तीनों घर बधावा बाजै हे।[2]

अब जरा इसी अंगिका लोकगीत का एक अन्य पाठ देखें जिसके अनुसार दशरथ ने गुरु वशिष्ठ से प्रार्थना की कि मुझे कोई संतान नहीं है और अब मैं वृद्ध हो चला हूँ, आप मेरा दु:ख दूर कीजिए। इसके बाद सभी ऋषियों ने मंत्रणा की और यज्ञ करके दो पिंड तैयार किये। एक पिंड कौशल्या को तथा दूसरा कैकेयी को दे दिया। दोनों ने अपने में से आधा-आधा सुमित्रा को दे दिया। इसलिए कौशल्या और कैकेयी को एक-एक तथा सुमित्र के दो पुत्र हुए–

करि असलान रजा दशरथ, बदन निरखल रे।
ललना रे अब त उमरि मोरा बीतल, बंस नहीं बाढ़ल रे।

.....

सब मुनि एक मत कैलनि, पतरा उचारलनि रे।
ललना रे, होम करि भसम बनाओल, पिंड दुइ निकालल रे।
सब मुनि राजा के बोलाओल, पिंड दुनु सौंपि देल रे।
ललना रे इहे पिंड रानी के खियाएब, तब बंस बाढ़त रे।।[3]

रामचरितमानस में यह प्रसंग इस रूप आया है कि–

एक बार भूपति मन मांहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।।
गुरु गृह गयेउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय बिसाला।।

.....

सृंगी ऋषिहिं बसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरु कर लीन्हें।।

.....

यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई।।[4]

इस प्रकार वह यज्ञ का प्रसाद तीनों रानियों में बाँट दिया गया– हाँ, यहाँ बांटने का प्रसंग समान है। यहाँ भी दोनों रानियाँ अपने हिस्से का थोड़ा–थोड़ा भाग सुमित्र को दे देती हैं।

बुन्देली के एक गीत में यह प्रसंग इस रूप में आया है कि– 'रानी कौशल्या राजा दशरथ से कहती हैं कि अपने पास सब कुछ है किन्तु एक संतान नहीं है, लिहाजा आप बाजार जाकर एक संतान खरीद लाइये, राजा ने उत्तर दिया, मूर्ख और अज्ञानी, कहाँ तक समझावें, हाट में हाथी बिकते हैं, संतान नहीं। इस पर रानी को बहुत दु:ख हुआ और उसने विनय की कि नाई बुलाकर इस अभागिन की कोख चिरवा दें (जिस कोख से संतान न उत्पन्न हो, वह किस काम की) इसके बाद राजा ने काशी से पंडित बुलवाए, जिन्होंने बताया कि राजा पूर्व जन्म में बहेलिया थे और उन्होंने गाभिन हिरनी मारी थी। इसी कारण न तो बाधाये बजेंगे न सोहर गाये जायेंगे। पंडितों ने संतान का उपाय बतलाया कि राजा सोने की हिरनी और चाँदी के गभेलुआ (गर्भलुआ = गर्भस्थ संतान) हर बन में छुड़ा दें। राजा ने ऐसा ही किया। साथ ही पर्बत से संजीवनी बूटी मँगाकर पिलवा दी, रानियाँ गर्भवती हुईं और नौ दस माह में पुत्र उत्पन्न हुए। .....एक अन्य गीत में खीर खाने का संकेत है– हमनें सुनी अवध की नारी, दूर रएं पुरसन से, खीर खायें सूत पैदा करतीं लाला बड़े जतन से।' (बुन्देली संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ–235, प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त)

अवधी के एक अन्य सोहर गीत में प्रसंग आता है कि जब दशरथ की तीनों रानियों से कोई संतान नहीं हुई तो सबसे बड़ी रानी कौशल्या ने दशरथ से कहा कि राजन– आप मेरी छोटी बहन सुमित्रा को ब्याह कर ले आइये। दशरथ उनसे विवाह करते हैं किन्तु उनसे भी कोई संतान नहीं हुई तो फिर कौशल्या कहती हैं कि आप मेरी सबसे छोटी बहन कैकेयी से विवाह कर लीजिये, लिहाजा दशरथ ने उससे विवाह किया किन्तु उनसे भी कोई संतान नहीं हुई और सारी अयोध्या में यह समाचार फैल गया कि तीनों ही रानियाँ बाँझिन हैं–

कौशिल्या बियहि दशरथ लावहिं महल बइठावहिं हो,
बहिनी होइगा अजोधिया म शोर कौशिल्या रानी बाँझिन हो।
बोलिया त राजा बोल्या त जउ बिधि पुरवइ हो,
राजा हमरी बहिनी सुमित्र बियहि लइ आवहु हो,

सुमित्र बियहि दशरथ लावहिं महल बइठावहिं हो,
बहिनी होइगा अजोधिया म शोर सुमित्र रानी बाँझिन हो।
बोलिया त राजा बोल्या त जउ बिधि पुरवइ हो,
राजा हमरी बहिनी कैकेयी बियहि लइ आवहु हो।
कैकेयी बियहि दशरथ लावहिं महल बइठावहिं हो,
बहिनी होइगा अजोधिया म शोर तीनउ रानी बाँझिन हो।।[5]

यह गीत रामकथा के इस प्रसंग न केवल एक नया पाठ रचता है बल्कि यह दिखाता है कि उस समाज में बाँझिन होना कितना बड़ा अभिशाप था? जब पटरानियों को बाँझ होने की इतनी मानसिक व्यथा थी तो आम जन-मानस की क्या मनः स्थिति रही होगी? इसके अतिरिक्त गीत में एक मौलिक उद्‌भावना यह भी व्यक्त की गई है कि सुमित्रा और कैकेयी कौशल्या की ही बहनें थीं जबकि यह शास्त्र - सम्मत नहीं है क्योंकि कौशल्या कोशल की थीं और कैकेयी कैकेय प्रदेश की थीं जो कश्मीर प्रदेश का प्राचीन नाम है। आनंद रामायण में प्रसंग आया है कि अयोध्या के पास ही कोसल देश की कोसल पुरी में कोसल नाम का एक बड़ा पुण्यात्मा राजा राज करता था। उसकी विवाह के योग्य एक सुन्दरी कौशल्या नाम की पुत्री थी। उसका उसके पिता कोसल ने दशरथ के साथ विवाह निश्चित किया। (आनंदरामायण, सर्ग-1, सारकाण्डम, 32-34).... तदनंतर राजा दशरथ ने मगध देश के राजा की कन्या सुमित्रा को व्याहकर अपनी दूसरी प्राणप्रिया स्त्री बनाई। केकय देश के राजा की कमलनयनी कन्या कैकेयी को व्याहकर उन्होंने बड़े आदर पूर्वक तीसरी पत्नी बनाई। इन तीनों के अतरिक्त अन्य भी उनकी सात सौ स्त्रियाँ थीं। (वही, 70-71) किन्तु तीनों रानियों का यह जो बहनापा इस गीत में वर्णित है वह उनकी व्यथा की सहानुभूति के कारण है क्योंकि बाँझपन को लेकर लम्बे समय से यह धारणा समाज में प्रचलित थी कि बाँझपन स्त्रियों का दुर्भाग्य है, स्त्रियों का दोष है या पुरुष भी नपुंसक हो सकते हैं, इसकी तो जैसे कल्पना ही नहीं थी लिहाजा यह धारणा कालान्तर में स्त्रियों के मन में अपराध-बोध के रूप में घर कर गई कि मानों बाँझ होना मनुष्य न होने जैसा कुछ है। कौशल्या को यह अपराध-बोध सता रहा था कि देखो मुझमें कमी की वजह से दशरथ का वंश नहीं चल सका, मैं ही इसकी जिम्मेदार हूँ, लिहाजा वे दशरथ के समक्ष यह विकल्प रखती हैं कि आप मेरी बहन से विवाह कर लीजिये, क्या जाने उसी से आपका वंश चल जाए- यह गीत बांझपान की पीड़ा की समूची परम्परा का उद्‌घाटन कर देता है और रामयण काल को चीरता हुआ समसामयिक सन्दर्भों से स्वतः ही जुड़ जाता है। कौशल्या को ही नहीं बल्कि दशरथ को भी निः संतान (नेरबसिया) होने की यातना झेलनी पड़ती थी- किसी रामायण में ऐसा उल्लेख है कि एक बार दशरथ इन्द्र के पास गए थे तो उनके आने के बाद इंद्र ने यह कहकर अपना सिंघासन धुलवाया था कि इस पर नेरबसिया बैठ गया है। अवधी के ही एक गीत में प्रसंग आया है कि दशरथ को एक हेलिन ने ताना मारते हुए अपने पति से कहती है कि सुबह-सुबह नेरबसिया का मुँह दिखाई पड़ गया, यह ठीक नहीं हुआ देखिये भगवान क्या करते हैं?

सोने के खरउवाँ राजा दशरथ हेलवा बोलावहु हो,
हेलवा बरहौ बजन लइके आवउ हो, सुनब सुख सोहर हो।

बइठि जगावे हेलिनिया सुनहु राजा हेलवउ हो,
हेलवा देखा नेरबँसिया के मुँहवा दइउ केस करिहइं हो,
येतनी बचन सुने दशरथ जियरा दुखित भयें हो,
राजा गोड़े-मूँड़े ताने पिछउरा, सोवहु धउराहर हो,
बइठि जगाये कउसिल्या रानी, उठौ राजा दशरथ हो,
राजा दुधवा के रीधी रसोइयाँ करो उठि भोजन हो।
काउ कहउं कउसिल्या रानी कहत लाज लागइ हो,
रानी जतिया के पातरि हेलिनिया, कहइ निरबँसिउ हो।[6]

दरअसल लोक में नि:संतानता को अभिशाप माना जाता रहा है, वह चाहे पुरुष के सन्दर्भ में अथवा स्त्री के सन्दर्भ में। सुबह-सुबह किसी नि: संतान पुरुष अथवा स्त्री का मुँह दिखाई पड़ना अच्छा नहीं माना जाता था। कहा जाता है कि आज नेरबसिया क मुँह देखे अही, देखा काव होथै? यही लोकधारणा उपर्युक्त गीत में व्यक्त हुई है। लोक ने रामकथा के इस प्रसंग को भी इसी लोक मान्यता की कसौटी पर कसा और दशरथ और कौशल्या के बहाने उसने नि: संतानता की पीड़ा का उद्घाटन किया और अब यह गीत केवल दशरथ और कौशल्या तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उन सभी बाँझ स्त्रियों और नि:संतान पुरुषों की व्यथा को अपने भीतर समेट लेता है और उसे अभिव्यक्त कर देता है।

एक संताली गीत में राम जन्म का प्रसंग कुछ यों आया है कि गुरु ने दशरथ से कहा कि जाओ, एक पेड़ में चार आम लगे हैं, उन्हें तोड़ लाओ। दशरथ बाएँ हाथ से फल तोड़ते हैं और दाहिने हाथ से लोक लेते हैं। इसी फल को खाकर रानियाँ गर्भवती हुईं-

गुरु मुनि कहायेते सुनुभा,
या राजा दासारथे,
कोन गाछे चारयाम जो फेराय,
हो यामवाला यानी देहो।
ये हो ये हो भाया राजा दसारथे
बायें हाँथे माराय हो
दहिन हाँथे वाला लकीले।
याम केरा फल जुगीरे
देवला राजारे हाते
से हो खाया तीनों रानी
बाला आस पति हो।[7]

संताली कथाओं में ऐसा भी वर्णन मिलता है कि संतालियों के पूर्वज खेरवारों ने लंका विजय में राम की सहायता की थी- मारे हाथडाम को को रोड़ आकात आ काथाय सेदाय जुगरे दे। राम राजाए ताहें काता ओकते जो तो खारवार होड़ उनी तुलुच लोंकाते सेनकाते रावोन राजा हारे लागित को

गोंड़ों आदेआ। 'अर्थात- हम लोगों के पूर्वजों की कहानी है कि प्राचीन काल में राम राजा थे, उनको खेरवार जाति के लोगों ने लंका के राजा रावण को हराने में सहायता दी थी। स्मरण रहे, संतालों का प्राचीन नाम खेरवार ही था।'[8] दरअसल कोई भी धारणा अपने देश, काल और वातावरण से निर्मित होती है। उसके पीछे सामाजिक और सांस्कृतिक परविवेश जुड़ा होता है। चूँकि संताली प्रकृति की गोद में निवास करते हैं लिहाजा वनस्पतियों से उन्हें बहुत गहरा लगाव होता है इसलिए रानियों को आम खिलाने का सन्दर्भ इसी का परिणाम है इससे उनका प्रकृति प्रेम तो पता चलता ही है और साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रकृति ही उनके लिए सबसे बड़ा देवता है, उसे छोड़कर वे किसी अन्य देवी – देवता को नहीं मानते। यह कहीं न कहीं वैदिक संस्कृति की प्रकृति पूजा की परम्परा का अवशेष भी कहा जा सकता है जिसका अंश अभी जनजातियों और आदिवासियों में मौजूद है। अंगिका के ही एक अन्य गीत में तीनों रानियों को अकवन का फूल पिसवाकर पिलाया जाता है और उससे उन्हें पुत्र की प्राप्ति होती है-

सभवे बैठल राजा दशरथ, मचिये कोसिला रानी हे।
ललना रे, ढेर अँधेर, संतति एक चाहिले हे।
बगियहिं घूमहिं बसिठ मुनि, मने मने सोचौ हे।
राजा के बन में फरलै अकन फूल, रानी क पिआबहो हे।[9]

जन्म के बाद बच्चों के ग्रह- लग्न आदि विचारने के लिए वशिष्ठ मुनि को बुलाया जाता है और ग्रह- लग्न आदि के परीक्षण के बाद उसी समय गुरु यह भी बता देते हैं की राम को वनवास होगा। यह सुनकर कौशल्या दुखी हो जाती हैं किन्तु उन्हें इस बात का तोष है कि यह दु:ख मेरे बाँझ रहने के दु:ख से कम ही है, बाँझ का कलंक तो छूट गया, भले राम को वनवास जाना पड़े, यह दु:ख मैं सहन कर लूँगी-

बबुआ के दिन बड़ सुन्नर, भले रासी जनमल हे।
ललना रे, रामेचंदर जयता बनबास, कंकई सिर अपजस हे।[10]

अवधी के एक सोहर गीत में यही प्रसंग इस रूप में आया है कि राम वन को जा रहे हैं, इस दु:ख से दुखी कौशल्या राम से कहती हैं कि बेटा अब मैं किसके लिए कलेवा रखूँगी, किसकी देखभाल करूँगी? किसे देखकर अपने हृदय को आसरा दूँगी? इसके उत्तर में राम कहते हैं की मां आप लक्ष्मण के लिए कलेवा रखना, और कोई कार्य हो तो सत्रुहन को बुलाना तथा भरत का ध्यान रखना, उनकी देखभाल करना। इसके उत्तर में कौशल्या ने बड़ी ही स्वाभाविक और लोक सम्मत बात कही कि जो कैकेयी मेरी शत्रु है, जिसने मुझसे शत्रुता की है, मैं उसी के बेटे को कैसे बुलाऊँगी? अपने महल के ऊपर से कैकेयी व्यंग्य कर रही हैं कि आखिर जिसका पुत्र वन में रहेगा, भला उस माँ को नींद कैसे आ सकती है? यह सुनकर कौशल्या बहुत ही सहज और सधा हुआ उत्तर देती हैं कि बहन, मेरे ही राम वन जाएँगे और मुझे नींद भी आयेगी क्योंकि बाँझिन का कलंक तो छूट गया, भले ही राम को वनवास जाना पड़े। लोक की यही ताकत है कि वह तर्क करता है, संवाद करता है। यही सम्वाद्धर्मिता और तार्किकता उसे विशिष्ट बनाती है, अवधी के इस गीत का

तेवर देखें –

अपनी महल रानी ककही बिरह बोलिया बोलइं ,
बहिनी जेकर राम बन सेइहैं, निदरिया कइसे लगिहैं हो।।
हमरै राम बन जइहैं निदरिया हमरे लगिहैं हो,
बहिनी छुटिगै बझिनिया क नाउं भलेहि रामा बन गए हो।। 11

अवधी के ही एक अन्य सोहर गीत में सन्दर्भ आता है कि राम के जन्म के बाद बारहवें दिन उनकी बरही का आयोजन हो रहा है। आस पास के लोगों को नाइन निमंत्रण देकर बुलाती है। कैकेयी को भी बुलाया गया किन्तु उनको बड़ी तकलीफ हुई, मानों उन पर वज्रपात हो गया हो। वे नहीं आती हैं। दशरथ उनके पास जाते हैं और पूँछते हैं कि रानी तुम्हें किस बात का कष्ट है, तुम महल क्यों नहीं आई? कैकेयी ने कहा, राजा आपको क्या बताऊँ? कहने में लज्जा आ रही है। आप राम को बनवास दे दीजिये और भरत को राजगद्दी। यह सुनकर दशरथ को वज्रपात सा लगा। उन्होंने कहा कि रानी तुमने तो मेरे करेजे में जैसे बाण मार दिया हो, गीत देखें–

घर–घर फिरहि नउनिया त गोतनी बोलावइ हो,
गोतिनि आजु मोरे राम कै बरहिया सबहि केउ आइउ हो।
केउ सखि नाचत आवैं त केऊ बजावत हो,
मोरी बहिनी कैकेयी के पड़ा बिस्मात महलिया न आवइं हो।
सोने कै खड़उवाँ राजा दशरथ कैकेयी महल गएँ हो,
रानी कवन संकट तोहरे जियरा महलिया न आइउ हो।
काउ कही मोरे राजा कहत लजिया लागइ हो,
राजा राम क देत्या बनबास भरत राज बेहसइं हो।
बोलिया तौ रानी बोलिउ बोलाइ नहिं जानिउ,
रानी मारिउ करेजवा बीच बान करेजवा हमरा सालइ हो।
जवन रामा अँखिया क पुतरी नयनवाँ से न उतरइं हो,
रानी तवन रामा बन चला जइहैं जियब हम कइसे क हो।। 12

इस गीत में राम के जन्म पर ही वरदान मागने का सन्दर्भ आया है और अवधी के ही एक अन्य गीत में राम के यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर कैकेयी द्वारा वरदान माँगे जाने का प्रसंग आया है जिसके अनुसार राम के जनेऊ संस्कार पर राजा दसरथ बाँस काटने गए हैं। खैर दसरथ क्या बाँस काटेंगे किन्तु लोक का यही वैशिष्ट है कि वह विशेष को सामान्य बनाकर उसे मनुष्यता की सामान्य भावभूमि पर उतारता है और उसे जनमानस की अनुभूति से संपृक्त कर देता है। नागमती जो कि पटरानी थी, उसे जायसी ने सामान्य स्त्री के रूप चित्रित किया। तुलसी ने मानस के बालकाण्ड में दिखाया कि राजकुमार राम सामान्य बच्चों के साथ धूल में खेलकर आये है– धूल धूसरित नृप तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए।। इस प्रकार यहाँ दसरथ एक सामान्य पिता की तरह अपने बेटे राम के जनेऊ संस्कार हेतु बाँस काटने जाते हैं किन्तु बाँस की खपीच उनकी ऊँगली में धंस जाती

है। कैकेयी आती हैं और उनकी पीड़ा दूर करती हैं इसी से प्रसन्न होकर दशरथ कहते हैं कि मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसके बदले में तुम्हें क्या चाहिए? वह कहती है कि मैं जो माँगूंगी वह तुमसे दिया नहीं जाएगा। दसरथ प्रसन्न थे उन्होंने कहा जो भी मांगना है, माँग लो। दरअसल उन्हें इस बात का अंदेशा ही नहीं था कि कैकेयी राम का वनवास ही माँग लेंगी–

बंसवा कटावइ चले हैं राजा दसरथ, गड़लि अंगुरिया खपीच।
अँगुरी बेदनियाँ मरइं राजा दसरथ, ककही क बोलि पठाउ।
आईं रानी ककही पलँग चढ़ि बइठी, हरहिं अंगुरिया क पीर।
जवन मंगन तुहूँ माँगउं रानी ककही, उहै मंगन हम देब।
जवन मंगन मैं मागउं राजा दसरथ, तोहरे बूते दइय न जाइ।
राम लखन दुइनौ बन कै अहेरिया, भरथ क तिलक कराउ।
जवन मँगन तुहूँ माँगिउ रानी ककही, माँगिउ प्रान अधार।
रामा त अहें मोरी अँखिया क पुतरी, कइसे भाखउँ बनबास।। 13

जबकि भोजपुरी के एक गीत में यही प्रसंग इस रूप में वर्णित है कि राजा दशरथ कदली के वन में गए थे वहाँ उनकी ऊँगली में काँटा चुभ गया जिसे कैकेयी निकालती हैं और वे प्रसन्न होकर उन्हें वरदान माँगने को कहते हैं और वही कैकेयी भरत को राजगद्दी और राम को वनवास मांग लेती हैं–

राजा जवन मांगन हम मागीले तवने रउरे देईना हो,
राजा राम लखन बन जासु भरत राज विलससु हो।।

प्रश्न यह भी है कि कैकेयी ही क्यों दशरथ के पास प्राय: दिखाई पड़ती हैं, वही काँटा निकालती हैं, अन्य दोनों रानियाँ क्यों नहीं? इसमें यह संकेत निहित है कि कैकेयी दशरथ को सर्वाधिक प्रिय थीं, यों भी वे सबसे छोटी रानी थीं, सुंदरी भी थीं। मानस में सन्दर्भ आया है कि जब दशरथ कोप भवन में उन्हें मनाने गए थे तो वहाँ उन्होंने उनके लिए जो विशेषण प्रयुक्त किया है वह कैकेयी के प्रति न केवल कैकेयी के अनुराग को व्यक्त करता है वरन उनके सौन्दर्य को भी उद्घाटित करता है, पंक्ति देखें–

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर।। (रा .च .मा .अयो. 2)

और भी–

जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू।।
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें।। (रा .च .मा .अयो. 25/4-5)

भोजपुरी के एक गीत में सुमित्रा कौशल्या से कहती हैं कि रानी राम का मुख दिखा दो, कौशल्या ने कहा बारह वर्ष में दिखाउंगी। सुमित्रा कहती हैं कि 12 वर्ष में तो राम वन चले जाएँगे। यह सुनकर कौशल्या दुखी हो जाती हैं। दशरथ उन्हें धीरज देते हुए कहते हैं कि, बाँझिन का कलंक

तो छूट गया–

अइसन बोली जनि बोलहु बहिनी कौशिल्या रानी हो,
बहिनी बारह वर्ष राम होइहें त बन के सिधारी जैइहें हो।
इतना बचन जब सुनलीं कौशल्या रानी हो,
ललना गोड़े मूड़े तानी ले चदरिया सोवेले दु:ख नीदरि हो।
हँसि हँसि बोले राजा दशरथ सुनहु कौशिल्या रानी हो,
रानी छुटेला बझीनिया के नाम बलइया रामा बन जइहें हों। 14

अंगिका के एक सोहर गीत में सन्दर्भ आता है कि सीता अयोध्या में गर्भवती हैं, दशरथ उन्हें मछली, आम का टिकोला आदि लाकर देते हैं। सीता के पुत्र हुआ और अयोध्या में सोहर गाया जा रहा है। इस गीत में विशेष बात यह है कि इसके अनुसार सीता का प्रसव वन में नहीं बल्कि अयोध्या में हुआ बल्कि राम वन में हैं जहाँ नाई रोचन लेकर उन्हें देने जाता है, नाई से राम पूँछते हैं कि यह रोचन कहाँ मिला और किसका है?

सात कुइयाँ सात पोखर, औरो केदली गाछ हे,
ललना रे, तहि तर राम करे दतुअन, नौआ नाचौते आबे हे।
कहाँ के छिके तोहें नौआ, कहाँ कैने जाए छै रे,
ललना रे किनका के भेलें नंदलाल, लोचन पहुँचाबै हे।
अजोधा के छिंका हम नौआ, केदली बने जाय छी हे,
ललना रे सीता के भेलैन नंदलाल, लोचन पहुँचाबै हे। 15

जबकि अवधी के एक सोहर गीत में सन्दर्भ आया है कि सीता वन में हैं और नाई वहाँ से रोचन लेकर अयोध्या आया और सीता ने उसे यह आदेश दिया है कि उस पापी राम को खबर भी नहीं लगनी चाहिए कि मेरे पुत्र भी हुआ है, हाँ लक्ष्मण, कौशल्या और दशरथ को अवश्य रोचन दे देना–

हंकरौ रे नग्र के नौआ, कि हाली बेगि आवहु हो,
नौआ रिगि रिगि पीसहु हरदिया रोचन पहुँचावहु हो।
पहिला रोचन राजा दशरथ दुसरा कौंसिला रानी हो,
रामा तिसरा रोचन लछिमन देवरा पपिहवा न जनाएउ हो।
चारिनि खूँटे कै पोखरवा त रामा दतुइन करैं हो,
नौआ केकरे भएँ नंदलाल रोचन माथे झलकइ हो,
जवनी सीता रामा मारया त देसवा निसारया त हो,
रामा ओनहीं के भएँ नंदलाल रोचन माथे झलकइ हो।।16

सीता निष्कासन के कारण के रूप में अवधी के एक गीत में प्रसंग आया है कि एक दिन राम की बहन ने सीता से हास्य विनोद करते हुए कहा कि भाभी एक बार आप रावण का चित्र बनाओ, मैं देखना चाहती हूँ कि कैसा था वह? अब सीता उसके कपट को समझ न सकीं, उन्होंने सहज ही

रावण का चित्र उकेरना शुरू कर दिया। उन्होंने सबसे पहले उसका हाथ बनाया, फिर मुँह बनाया और फिर पैर बनाया। ठीक इसी समय दरवाजे में राम के खखारने की आवाज आई (पहले ससुर और जेठ जब घर के भीतर आते थे, तो खखारकर आते थे जिससे भयव वगैरह सावधान हो जाएँ और घूँघट से मुंह ढँक लें, खखारने में इसी लोक परम्परा का सन्दर्भ निहित है) उन्हें आता देखकर सीता की ननद ने आग लगाते हुए कहा, भइया जिस रावण ने आपके साथ शत्रुता की, आपसे युद्ध किया, उसी दुष्ट रावण का चित्र भाभी बना कर मुझे दिखा रही थी। बस फिर क्या था, राम को क्रोध आ गया और उन्होंने आसन्न प्रसवा सीता को अयोध्या से निकाल दिया। यों तो यह प्रसंग आनंद रामायण में भी आया है किन्तु वहाँ इसका पाठ थोड़ा भिन्न है मसलन वहाँ कैकेयी ने सीता से कहा कि रावण का चित्र बनाओ तो सीता ने कहा कि मैंने उसका मुंह नहीं देखा है, केवल उसके दाहिने पैर का अंगूठा देखा वह भी तब जब वह पंचवटी में मेरा हरण करने आया था। कैकेयी ने कहा कोई बात नहीं, यौम केवल अंगूठा ही बना दो। सीता ने रावण के पैर का भारी- भरकम अंगूठा बना दिया, बस फिर क्या था, इसी के आधार पर कैकेयी ने उसके समूचे शरीर का चित्र खींच दिया और राम को दिखाकर कहा कि इसे सीता ने बनाया है- 'और इसके बाद वह इरादतन राम को उसी दीवार के पास रोक देती है और राम अचानक रावण का विशाल चित्र देखकर पूँछ बैठते हैं कि यह किसने बनाया, तो कैकेयी ने कहा कि सीता ने बनाया है क्योंकि जहाँ जिसका मन लगा रहता है, बार-बार उसी की याद आती है, यह साधारण नियम है और फिर स्त्रियों के चरित्र को कौन जा सकता है।' (आनंद रामायण, सर्ग-3, जन्मकाण्डम्, श्लोक-45-46, पृष्ठ-303-304)

संभव है कि धोबी के प्रसंग को लोक ने बहुत महत्त्वपूर्ण कारण के रूप में न स्वीकार किया हो किन्तु रावन के चित्र उकेरने का प्रसंग निःसंदेह गंभीर प्रसंग है इसके माध्यम से लोक ने ननद-भौजाई के संबंधों के समाजशास्त्र को भी उजागर किया है क्योंकि प्रायः ननदें भाभियों की शिकायतों का अवसर ढूँढती रहती थीं और छोटी सी बात को अत्यंत तूल देती थीं। आनंद रामायण के प्रसंग की तुलना में लोकगीत का प्रसंग ज्यादा स्वाभाविक और सहज दिखाई पड़ता है। यों कैकेयी के इस कृत्य की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि दुष्ट व्यक्ति अपना स्वभाव जीवन पर्यंत नहीं तजते- राहु आज तक चन्द्रमा को ग्रसता है।

दरअसल सीता निष्कासन का प्रसंग रामकथा का अत्यंत कारुणिक प्रसंग है। लोक जनमानस की दृष्टि में राम का यह कृत्य अत्यंत अनुचित था लिहाजा उसने राम को कटघरे में खड़ा किया, उसने सीता के मुख से राम को पापी भी कहलवाया। राम ने सीता की अग्नि परीक्षा भी ली और एक धोबी के कहने पर उन्हें निकाल दिया, क्या सीता का कोई स्वाभिमान नहीं है? उन्हें लोक यह शक्ति देता है कि वे राम को उनके किये का हवाला दे सकें और उन्हें यह एहसास करा सकें कि राम ने उन्हें निष्कासित करके अपराध किया है और इसके बाद भी राम को सीता की आवश्यकता पड़ती है, राजसूय यज्ञ के लिए। अब राम किस मुँह से सीता को मनाने जायेंगे लिहाजा गुरु वशिष्ठ जाते हैं और सीता से कहते हैं कि सीता चलो, अयोध्या तुम्हारे बिना बीरान है, उजाड़ हुई जा रही है। सीता बड़ी ही विनम्रता से उत्तर देती हैं कि गुरूजी मैं आपका बहुत सम्मान करती हूँ इसलिए मैं आपके

कहने से दो चार कदम चलूँगी किन्तु उस अयोध्या में मैं अपना कदम नहीं रख सकती, उस राम ने मुझे कड़ाही में तेल की तरह खौलाया है, सपने में भी मेरा उनसे चित्त नहीं मिलता है –

तोहरा कहा गुरु मनबै परग दस चलबै,
गुरु वहिं रे अजोधिया के बीच परग नाहीं धरबै हो।
जइसे करहिया में तेल जलै उबलि उबलि जलै हो,
रामा वोइसे जलै मोरा जियरा सपनवहुँ न चित मिलै हो। अथवा
जौने रामा हमका मारेनि घरा से निकारेनि हो,

रामा वहि रे पपिहवा क मुंहवा हम कइसे क देखब हो। 17 राम को पापी कहने का साहस शास्त्र के पास नहीं, लोक के पास है। लोक की सीता राम को चुनौती देती हैं, उनका प्रतिरोध करती हैं। लोक ने राम को सीता के समक्ष झुका दिया अथवा उन्हें उनकी भूल का एहसास कराया और वे स्वयं सीता को मनाने जाते हैं, जबकि वाल्मीकि रामायण में उल्लेख आता है कि वाल्मीकि ही सीता को लेकर अयोध्या आते हैं, राम नहीं जाते, गीत देखें–

रानी छोड़ि देहु जियरा विरोग अजोधिया बसावहु हो,
सीता, तोरे बिनु जग अँधियार त जीवन अकारथ हो।। 18

भोजपुरी के एक गीत में यह सन्दर्भ भी आता है कि सीता कहती हैं कि जब मैं अपने पिता के घर थी, बहुत खुश थी किन्तु अयोध्या में मुझे कष्ट ही मिला है–

जब हम परलीं राम घरे राजा रे दशरथ घरे,
जरि जरि भइलीं कोयलिया त जरि के भसम भइलीं हो। 19

इस गीत का अवधी पाठ यों है–

का येस रामा के घर रहे, का मधुबन रहे,
एक्कहु अहकिया न पुरये अजोधिया में रहिके।
सोने की नइयाँ रामा लायेनि त लाइ के बुझायेनि हो,
रामा ककरी की नइयाँ जियरा फारेनि त घरा से निसारेनि हो। 20

ऐसे राम के घर रहने अथवा बाहर रहने से क्या फर्क पड़ता है जिसने हमारी एक भी इच्छा, आकांक्षा कभी पूरी ही न की हो। उन्होंने तो मुझे सोने की तरह तपाया और फिर पानी डालकर बुझाया। उसने ककड़ी की तरह मेरे कलेजे को फाड़ दिया और मुझे असहाय अवस्था में घर से निकाल दिया।

इसी का आधुनिक पाठ है–

कबहुं न हँस कर कर गहे, रिस कर गहे न केश,
जइसे कंता घर रहे, वोइसे रहे बिदेस।।

बहरहाल यह सुनकर दशरथ राम से पूंछते हैं कि राम तुमने क्या कष्ट दिया है सीता को? राम इसी बात पर नाराज होकर सीता को छोड़कर वन में चले जाते हैं। सीता को यह वियोग सालता है, वे लक्ष्मण को उन्हें खोजने का आदेश देती हैं किन्तु बहुत खोजने पर भी जब राम नहीं मिलते हैं तो लक्ष्मण कहते हैं कि भाभी मैं आपकी सेवा करूंगा, देखभाल करूँगा। यह सुनकर सीता कहती हैं कि मैं तुम्हें अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती क्योंकि मैंने तुम्हें अपना देवर ही माना है और लछिमन कहकर बुलाया है। यह सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं और वे सीता को पापिनि तक कह जाते हैं–

अरे रे, पापिनि भउजइया, पाप जनि बोलहु,
भउजी जइसे कोसिला रानी मतवा ओइसन हम जानीले हो।
लाख दोहइया राजा दशरथ राम माथ छूइ ले हो
बुड़की बिरथा मोरि जाय जो धनि कहि गोहरावउं हो। 21

यों तो यही प्रसंग रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में इस रूप में आया है कि मारीच के शिकार हेतु निकले राम को लेकर चिंतित सीता लक्ष्मण पर आरोप लगाती हैं कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति व्याघात है, इसीलिए तुम अपने भाई की मदद करने नहीं जा रहे हो–

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू।। 22

एक कथा प्रसंग और देखें जिसमें एक बार कौशल्या ने पूड़ी सोहारी बनाया और आँचर के नीचे ढँक कर राम को खोजने निकल पड़ीं। वे बेर से पूँछती हैं कि क्या तुमने राम को देखा है? वह कहती है कि इसी रास्ते राम गए हैं, देखो यह उनकी पगड़ी अरुझी हुई है। कौशल्या ने उसे आशीष दिया कि तुममें घौद–घौद फल लगें। आगे चकई मिली, उससे पूँछा तो उसने कहा हमने नहीं देखा। कौशल्या ने उसे शाप दे दिया कि जाओ तुम्हें अपने पति का वियोग सहना पड़ेगा–

घिउआ क काढ़ेली सोहरिया, त दुधवा क जाउरि कइली हो।
लिहेली आँचर तर ढांक रमइया हेरइ निकसेली हो।
.....
बइरी घवदन घवदन फरिहउ घवदन पकिहउ हो,
बहिनी हमके बतवलू हमरा लाल के जियरा हुलसि उठल हो।।23

इस तरह लोक ने राम कथा के प्रसंगों को न केवल नए अर्थ सन्दर्भ प्रदान किए बल्कि उसे अपनी शर्त पर चुस्त दुरुस्त भी किया। उसे अपने समय और समाज के संदर्भो से जोड़ा मसलन कौशल्या और कैकेयी कावल रामकथा की ही चरित्र नहीं रह गयीं बल्कि वह उनके हवाले से अपने समाज के स्त्री स्वभाव और मनोविज्ञान को उद्घाटित करता है। उसकी दृष्टि बड़ी ही तार्किक होती है उदाहरण के लिए अवधी की एक कहावत देखें जिसमें कहा गया है कि– राम क बन ककही क अपजस। यह कितना यथार्थवादी और तार्किक वयक्व्य है और साथ ही प्रारब्ध को सर्वोपरि मानने वाला भी। क्योंकि कैकेयी का वनवास तो पूर्व निश्चित ही था किन्तु अपयश लग

गया कैकेयी को। यानी जब किसी दूसरे के कंधे पर बन्दूक रखकर चला दी जाय तो यही कहावत कही जाती है। अब देखें कि कैसे एक प्राचीन कथा प्रसंग एकदम नए और समसामयिक अर्थ से आलोकित हो उठा, यही लोक का वैशिष्टड है। इसके साथ-साथ उसने रामकथा को मानवीय धरातल पर उतारा और उसका यथोचित मूल्यांकन भी किया चाहे वह राम का मूल्यांकन हो अथवा सीता से जुड़े कथा प्रसंगों का मूल्याँकन हो, लोक उसे अपनी पैनी दृष्टि से रेखांकित करता है और राम के समक्ष सीता को खड़े करने का साहस करता है। यह शास्त्र न कर सका था। लोक किसी तरह के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध है लिहाजा वह रामकथा के ऐसे प्रसंगों को रेखांकित करना नहीं भूलता, जहाँ उसे अधर्म और अन्याय दिखाई पड़ता है। सीता का अयोध्या में कदम न रखने का संकल्प इसी का परिणाम है। इसलिए रामकथा के लोक विमर्श को ओझल करके रामकथा को उसकी सम्पूर्णता में न तो देखा जा सकता है और न ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, यही लोक की ताकत है कि उसे दरकिनार नहीं किया जा सकता है, और इसीलिए लोक से जुड़कर ही, रामकथा का फलक अत्यंत व्यापक हुआ और उसमें नए नए आयाम भी जुड़ते गये। रामकथा लोक की स्रोतस्विनी से आप्लावित होती रही है और अबाध गति से प्रवाहित होती रही है।

सन्दर्भ :

1. अंगिका संस्कार गीत, पृष्ठ - 52, सं. पंडित वैद्यनाथ पाण्डेय, 2. वही, पृष्ठ - 53, 3. वही, पृष्ठ - 53, 4. रामचरितमानस, बालकाण्ड -188/1 - 2, 5 - 6, 8, 5. अवधी सोहर गीत, निजी संग्रह से, 6. चौतहिं कै तिथि नवमी त नौबति बाजै, डॉ. सरोज सिंह, हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, जनवरी - मार्च 2018, पृष्ठ - 31 से साभार उद्धृत, 7. संताली भाषा और साहित्य का इतिहास, पृष्ठ -115 -116, श्री उमाशंकर, 8. वही, पृष्ठ - 115, 9. अंगिका संस्कार गीत, पृष्ठ - 57, सं. पंडित वैद्यनाथ पाण्डेय, 10. वही, पृष्ठ - 57, 11. अवधी सोहर गीत, निजी - संग्रह से, 12. अवधी सोहर गीत, निजी संग्रह से, 13. अवधी सोहर गीत, निजी संग्रह से, 14. भोजपुरी ग्राम गीत, पृष्ठ - 175, डब्लू . वी. आर्चर, 15. अंगिका संस्कार गीत, पृष्ठ - 62, सं, पंडित वैद्यनाथ पाण्डेय, 16. अवधी सोहर गीत, निजी संग्रह से, 17. वही।, 18. भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह, 19. वही, 20. अवधी सोहर गीत, निजी संग्रह से, 21. भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ-41, 22. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 27/5 - 6, 23. भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ - 71

डॉ. सत्य प्रिय पाण्डेय, लोक साहित्य विमर्शकार, 13/258, ग्राउंड फ्लोर, वसुंधरा, गाजियाबाद, उ. प्र.–201012, मो. : 8750483224

आधुनिक आर्यभाषा : मराठी

डॉ. जसपाली चौहान

'मराठी' का पहला लिखित रूप 'चिकुर्डे ग्राम' में 736 ई. का विजयादिव्य का ताम्रपत्र मिला है। 1983 का श्रवणवेलगोला का शिलालेख -'चावुण्डरायें करवियले' भी आदि मराठी का रूप है। ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में यशश्चन्द्र नामक जैन पंडित के 'राजमती प्रबोध' नाटक में मराठी है। बारहवीं शती में 'विवेकसिंधू' जैसे वेदांत के ग्रंथ महाराष्ट्री में लिखे गए। ऐसा उल्लेख मिलता है कि 1290 में होयसल वंश के राजाओं ने मैसूर राज्य में द्रविड़ भाषाओं के साथ-साथ मराठी पढ़ाने की व्यवस्था की थी। 1278 में महानुभावों के 'लीलाचरित्र' जैसे ग्रंथ मिलते हैं। तेरहवीं सदी में तो 'ज्ञानेश्वरी जैसा प्रौढ़ संस्कृतमय ग्रंथ रचा गया।

मध्य-युग में मुस्लिम आक्रमण के बाद मराठी गद्य और पद्य में फारसी शब्दों का आयात बहुत बड़ी मात्रा में हुआ। सोलहवीं शती में 'महानुभाव पंथ, 'जयकृष्णी-पंथ' बनकर पंजाब तक पहुँचा। नामदेव के पद पहले आदिग्रंथ में थे ही। सत्रहवीं शती में शिवाजी जैसे राजाओं ने 'राज्य-व्यवहारकोश' बनाए और मराठी में से फारसी-शब्द कम करने का यत्न किया गया। अंग्रेजी से पुर्तगाली भाषा का आक्रमण मराठी पर हुआ। सिलाई या जहाजरानी, सामुद्री युद्ध के सब शब्द पुर्तगाली से आए। 1622 में ईसाई फादर स्टीफन्स ने रिव्रस्त-पुराण' की रचना मराठी में की।

इसके बाद 'महानुभाव पंथ' ने मराठी साहित्य में विशेष रूप से कार्य किया। इस पंथ के प्रथम कवि 'चक्रधर' थे। बाद में इस पंथ के अनुयायी बड़े-बड़े राजा-महाराजा, धनी-व्यापारी, शास्त्री-पंडित आदि बने। यह द्वैतवादी भक्ति पंथ है। जीव, देवता, प्रपंच और परमेश्वर को ये स्वतंत्र और नित्य मानते हैं। गीता और भगवान को प्रणाम करते है परंतु अर्थ द्वैतपरक ही करते हैं। वैदिक-धर्म का कर्म-सिद्धांत, पुनर्जन्म, अवतारवाद को ये 'महानुभाव' मानते हैं। इस पंथ का मूल ग्रंथ चक्रधर के वचनों का संग्रह 'सूत्रपाठ' है। जीव और ईश्वर का भेद, भक्तियोग, संन्यास और अहिंसा इनके मूलाधार है।

उन्नीसवीं शती से मराठी पर अंग्रेजी का असर शुरू हुआ। यह अक्षर भाषा-शैली और शब्द-निर्मिति दोनों पर हुआ। अंग्रेजी के शब्द गाँवों तक पहुँच गए। यह क्रिया दैनिक पत्रों में अनुवाद की शीघ्रता से अधिक बढ़ी। ''फारसी-अंग्रेजी के वाक्यों का भी मराठी पर बड़ा असर पड़ा। स्वराज के बाद हिंदी, बोली-भाषाओं - 'कोंकणी' आदि और वर्ग उपभाषाओं का किसानों और मजदूरों की बोलियों का भी असर बढ़ता जा रहा है।'' मराठी का उत्पत्तिकाल भी दसवीं या ग्यारहवीं शती मराठी काव्य-साहित्य की सबसे पहले नींव, वैदिक धर्म के सनातन चातुर्वर्ष्य तथा देववाणी के विरोध में, लोकवाणी में प्रचार करने वाले नाथ पंथी साधुओं ने डाली।

मुकुंदराज (1123-1200), 'विवेक सिंधु' के लेखक मराठी के प्रथम कवि हैं। इस पद्यबद्ध ग्रंथ में शंकराचार्य के अद्वैतमत का, योगमार्ग का और सगुणोपासना का निरूपण है।

इसके बाद 'महानुभाव पंथ' ने मराठी साहित्य में विशेष रूप से कार्य किया। इस पंथ के प्रथम कवि 'चक्रधर' थे। बाद में इस पंथ के अनुयायी बड़े-बड़े राजा-महाराजा, धनी-व्यापारी, शास्त्री-पंडित आदि बने। यह द्वैतवादी भक्ति पंथ है। जीव, देवता, प्रपंच और परमेश्वर को ये स्वतंत्र और नित्य मानते हैं। गीता और भगवान को प्रणाम करते है परंतु अर्थ द्वैतपरक ही करते हैं। वैदिक-धर्म का कर्म-सिद्धांत, पुनर्जन्म, अवतारवाद को ये 'महानुभाव' मानते हैं। इस पंथ का मूल ग्रंथ चक्रधर के वचनों का संग्रह 'सूत्रपाठ' है। जीव और ईश्वर का भेद, भक्तियोग, संन्यास और अहिंसा इनके मूलाधार है।

कवि ज्ञानेश्वर ने अत्यंत छोटी उम्र में गीता पर इतनी बड़ी और मधुर रसपूर्ण भाषा में पद्यबद्ध टीका लिखी, जो 'ज्ञानेश्वरी' नाम से प्रसिद्ध हुई। यह ग्रंथ साहित्य और दर्शन दोनों दृष्टियों से मराठी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। हिंदी में इसके दो गद्य और एक पद्य अनुवाद प्रकाशित हैं।

'नामदेव' के करीब 2,000 पद मिलते हैं जिनमें से 61 गुरु ग्रंथसाहिब में है।

महाराष्ट्र में तेरहवी-चौदहवीं शती में नामदेव के समकालीन जो संत कवि हुए, वे प्रायः सभी विठल भक्त थे। उनकी विशेषता यह है कि इन सबकी रचनाओं में भक्ति के निरूपण के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन का भी सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में बहुत अच्छा विवेचन है। इन्होंने सामाजिक बुराइयों पर व्यंग्य भी किए। 'संस्कृत' इस समय मुठ्ठी भर पंडितों की भाषा बनकर सीमित हो गई थी। परंतु इन संत कवियों ने बोलचाल की मराठी को अपनाया। इन सब संतों के विषयों में नाममाहात्म्य, संतमाहात्म्य, विठल और पठरी का महत्त्व है फिर भी इन संतों का 'बारकरी' पंथ 'महानुभाव पंथ' से अधिक व्यापक और प्रभावशाली सिद्ध हुआ। 'बारकरी' पंथ की रचना सीधी-सहज और जन-जन तक पहुँचने वाली थी।

'एकनाथ' (1533-1599) में वारकरी, दत्रसंप्रदाय, प्रतिष्ठान की परंपरा का सुंदर समन्वय मिलता है। 'चतुःश्लोकी भागवत' 'एकनाथ' का प्रथम ग्रंथ है। इन्होंने अध्यात्मपरक प्रकरण भी लिखे जिनकी संख्या तीन-चार हजार है। 'भावार्थ-रामायण' इनकी सबसे बड़ी रचना है। अन्य रचनाएँ हैं - एकनाथी भागवत, रुक्मिणी-स्वयंवर आदि।

मुक्तेश्वर (1574-1645) ने तीर्थ यात्रा के निमित्त बहुत सा देशाटन किया तथा रामायण और महाभारत पर रचना की महाराष्ट्र देश और भाषा के प्रति इनमें उत्कट अभिमान दिखाई देता है। रजवाड़े ने इनको 'ऐतिह्य' प्रतिभा का कवि कहा है।

'तुकाराम' ने चार हजार पद लिखे, इनकी भाषा सरल और विषय समाज-समीक्षा से अध्यात्म तक सब प्रकार के हैं।

'रामदास' ने अनेक तीर्थ यात्राएँ की, शिवाजी महाराज को उपदेश दिया और सज्जनगढ़ में मठ स्थापित किया। सन् 1659 में 'दासबोध' ग्रंथ की रचना की। मन की कविता ओज-गुण संपन्न है।

'बामन पंडित' की रचना में (1608-1695) समश्लोकी गीता, गंगालहरी, भर्तृहरि के शतकों का अनुवाद, कृष्णकथा परक अनेक आख्यान-काव्य और रामकथा पर भी सुश्लोक-बंध मिलते हैं। इनकी रचनाएँ मधुर और कांत पदावली के लिए प्रसिद्ध हैं।

हरिनारायण आप्टे मराठी उपन्यास के जनक माने जाते हैं। इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में अगरकर से समाज-सुधार की प्रेरणा ली थी। महादेव गोविंद रानाडे की भाँति समाज-क्रांति और परंपरा निर्वाह में समन्वय खोजा। इनके ऐतिहासिक उपन्यास भी सामाजिक कथाओं की भाँति उपदेश-प्रधान हैं उन्होंने साहित्य को समाज-सुधार का अस्त्र बनाया।

मल्हार जोशी के साहित्य में दार्शनिक विषयों की विवेचना, नैतिक समस्याओं की चर्चा है। इस प्रकार मराठी उपन्यास साहित्य का मुख्य विषय समाज-सुधार और नैतिक शिक्षा रहा।

'मोरोपंत' (1729-1794) की बराबरी अनुप्रास और यमक में अन्य कोई कवि नहीं कर सकता। इनकी रचनाएँ विपुल हैं। इन्होंने 108 रामायणें लिखीं हैं जिनमें से 90 ही उपलब्ध हैं। मंत्र, भागवत, आर्या-रामायण, आर्या भारत, के कावलीस्रोत आदि अनेक प्रकार की रचनाएँ इन्होंने की।

महाराष्ट्र के लोकजीवन का सच्चा प्रतिबिंब हमें ओजस्वी वीर-गाथा और युद्ध-वर्णनात्मक 'पोवाडे' (पँवारम) और शृंगारपूर्ण 'लावणी' रचना में मिलता है। 'अगिनदास' ने गद्य का 'पोवाड़ा' लिखा जो मराठी का पहला पोवाड़ा माना जाता है। ये कविताएँ समकालीन जीवन का आलेख-पट हैं जिनमें कहीं-कहीं अत्युक्ति होने के बावजूद भी युद्ध तथा वीरों के साहस का अनोखा वर्णन हैं।

लावणीकारों में प्रसिद्ध हैं - राम जोशी, प्रभाकर, सगनभाऊ और परशुराम। इनकी रचनाएँ गाँव-गाँव में प्रचलित हुई। इनमें समकालीन जीवन का बहुत ही यथार्थवादी वर्णन और ठेठ काव्य की सहजता और उत्कटता मिलती है।

मध्ययुग से ही मराठी साहित्य में उच्च-भ्रू (हाई-प्रो) और जन-सुलभ लोकप्रिय साहित्य की दो समानांतर धाराएँ चल पड़ीं, जो अब भी बराबर दिखाई देती हैं। बौद्धिक घटा-टोप, ऊहापोह और खंडन-मंडन करने वाले पंडित एक वर्ग का ही मनोरंजन कर पाते हैं। बहुसंख्यक जनता एक भिन्न प्रकार के हास्य-व्यंग्य और जन-साधारण की भाषा में लोकप्रिय साहित्य ही पसंद करती है।

अन्य भाषाओं के समान 'मराठी' ने भी गद्य-साहित्य की श्रीवृद्धि की 'महानुभावों' का गद्य 'मराठी' का प्रारंभिक गद्य है। स्मृति के आधार पर लिखी हुई दंतकथा, आख्यायिकाएँ ऐतिहासिक वृत्तों के आधार पर सप्त प्रकरणात्मक शिव-चरित्र आदि गद्य के अच्छे नमूने हें जो शिवाजी और पेशवाकालीन इतिहास को संक्षिप्त और ओजस्वी ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

सभी भारतीय भाषाओं की भाँति 'मराठी' के आरंभिक गद्य में मिशनरी लोगों का विशेष योगदान रहा है। ''सामाजिक विषयों की चर्चा मिशनरी द्वारा निकाली गई पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही हुई।'' गोपालहरि देशमुख ने 1848-50 के बीच 'प्रभाकर' पत्र में 100 से अधिक पत्र प्रकाशित किए और महाराष्ट्र में समाज-सुधार की चर्चा की नींव डाली।

1857 में बाबा पद्मन जी नामक इसाई सज्जन ने 'यमुनापर्यटन' नामक प्रथम सामाजिक और धर्मनिहांत्मक उपन्यास लिखा।

हरिनारायण आप्टे मराठी उपन्यास के जनक माने जाते हैं। इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में अगरकर से समाज-सुधार की प्रेरणा ली थी। महादेव गोविंद रानाडे की भाँति समाज-क्रांति और परंपरा निर्वाह में समन्वय खोजा। इनके ऐतिहासिक उपन्यास भी सामाजिक कथाओं की भाँति उपदेश-प्रधान हैं उन्होंने साहित्य को समाज-सुधार का अस्त्र बनाया।

मल्हार जोशी के साहित्य में दार्शनिक विषयों की विवेचना, नैतिक समस्याओं की चर्चा है। इस प्रकार मराठी उपन्यास साहित्य का मुख्य विषय समाज-सुधार और नैतिक शिक्षा रहा।

'कहानी' के माध्यम से 'अरविन्द गोखले' व्यक्ति के भीतर परिस्थितियों के प्रति तनाव का वर्णन करते हैं। 'भावे' का स्फूर्ति-स्थान परंपरित नीतिवाद है। 'व्यंकटेश' की कहानियों में देहात के सही-सही चित्रण मिलते हैं।

'केशवसुत' (1866-1903) से आधुनिक मराठी कविता का प्रारंभ होता है। 'नया सिपाही' अकाल-पीड़ित, मजदूर और अछूत से संबंधित है, जिसमें उन्होंने लिखा है - ''मैं ब्राह्मणवादी नहीं हूँ, हिंदू नहीं हूँ, मैं किसी एक पंथ का नहीं हूँ। वे ही पतित है जो साकल्य का प्रदेश संकीर्ण बनाते हैं।'' इनके बाद 'वी' कवि और 'भास्कर तांबे' ने प्रकृति व प्रेम और रहस्यात्मकता के गीत गाए। 'विनायक' में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है तो 'गडकरी' में सामाजिक अन्याय के विरोध में गहरी वेदना। 'बी' मराठी के आधुनिक काल के रहस्यवादी कवि है और 'तांबे' बहुत ही मधुर गीतकार। ये सब देश-व्यापी 'रवीन्द्र-युग' के कवि हैं। इन्हीं रचनाकारों की परिणति 'माधव', 'यशवंत' आदि में मिलती है, जिनमें सामाजिक विषयों पर अधिक आग्रह है।

'मराठी' की नई कविता में दो धाराएँ दिखाई देने लगी - क. प्रगतिवादी धारा जिसके प्रमुख 'सुप्त ज्वालामुखी' के लेखक 'आत्माराम रावजी' बने ख. मनोविश्लेषण पर जोर देने वालाी और रूढ़ कविता को झकझोरने वाली प्रयोगशील धारा, जिसके प्रमुख मुक्तिबोध आदि हैं।

'मराठी' में नाटक और रंगमंच की भी समृद्ध परंपरा रही है। 1843 में विष्णुदास भावे ने मराठी नाटक की नींव रखी परंतु उसको आधुनिक बनाया 'भार्गवराम' ने। उन्होंने सामाजिक प्रश्नों को प्रधानता देकर 'मराठी' नाटक को संगीत के जादू से मुक्त किया। नाटक के लिए महाराष्ट्र में बड़ा प्रेम है। 'बंबई-मराठी साहित्य संघ' ने प्रतिवर्ष नाट्य महोत्सव करने के लिए, एक बड़ा आधुनिक थियेटर संगठित किया है।

'मराठी' में विष्णुशास्त्री और दृष्णशास्त्री के ज़ामाने से ही पत्रकारिता और खंडन-मंडनात्मक शास्त्रीय गद्य की परंपरा रही है। राजनीति, समाज-सुधार, इतिहास-संशोधन, भाषाशास्त्र और साहित्य-समालोचन का भी विकास हुआ और वाटवे, जोग, देशपांडे आदि ने काव्यशास्त्र और रसशास्त्र पर मौलिक विवेचना की है। पत्र-पत्रिकाओं का योगदान भाषा को समृद्ध बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

'मराठी' में विद्वता की एक अखण्ड परंपरा रही है। भांडारकर, काणे, बेलवलकर, गोडे आदि संस्कृतज्ञों का नाम विख्यात है। डॉ. 'केतकर' ने अकेले 23 खण्डों में मराठी विश्वकोश (1928) संपादित किया। लक्ष्मणशास्त्री जोशी ने धर्मकोश संपादित किया। गुणे, कात्रे, कालेलकर, धारगे जैसे भाषा-वैज्ञानिक भी महाराष्ट्र की ही देन हैं। कोश-रचना में महाराष्ट्र जैसा कार्य शायद ही किसी अन्य प्रांत ने किया हो।

मराठी-हिंदी दोनों की लिपी देवनागरी है, दोनों आर्य भारतीय भाषाएँ हैं, दोनों में 40 प्रतिशत तत्सम तद्भव शब्द समान हैं। ज्ञानेश्वर के समय में ही प्राय: प्रत्येक संत (मराठी) ने हिंदी में भी रचना की है। 'सप्रे' आदि मराठी पत्रकारों ने हिंदी पत्रों का भी संपादन किया। मराठी के अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद भी हुआ जैसे - 'गीता रहस्य' (तिलक) और 1857 का 'स्वतंत्रता संग्राम' (सावरकर) अत: दोनों भाषाओं में आदान-प्रदान का कार्य बराबर चल रहा है।

डॉ. जसपाली चौहान, संयोजिका – शिक्षा प्रकोष्ठ, भाजपा, दिल्ली प्रदेश एसोसिएट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय। एफ–13, मानसरोवर गार्डेन, न्यू दिल्ली–110015, मो. : 9810053059
ई–मेल : chauhanjaspali@yahoo.com

हिन्दी : भारतीय अस्मिता की पहचान

बलवन्त

हिन्दी एक जीवंत भाषा है। हम हिन्दी का एक शब्द बोलते हैं तो उस शब्द की प्रकृति एवं संस्कृति का समन्वयात्मक रूप मन की आँखों के सामने साकार हो उठता है। वह शब्द अकेला नहीं अपितु अपनी अर्थ संस्कृति के समस्त अलंकरणों के साथ उपस्थित होता है। 'गाँव' शब्द को ही लीजिए। इसका अर्थ केवल उस जगह से तो नहीं है, जहाँ के अधिकांश लोग अशिक्षित और अभाव से भरा जीवन जी रहे होते हैं। बल्कि गाँव जीवन की जरूरतों के लिए ईमानदारी के साथ संघर्ष करने के जज्बे का नाम भी है। घर-आँगन, खेत-खलिहान एवं घर के आस-पास स्थित पेड़ की शाखाओं पर घोसले बनाकर रहनेवाले पक्षियों के कलरव 'गाँव' शब्द के अर्थ की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

किसी भी देश के निवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास और पारस्परिक सम्पर्क को बनाये रखने के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है, जिसका व्यवहार राष्ट्रीय स्तर पर किया जा सके। भारतीय जनमानस को जोड़कर रखने के लिए सम्पर्क भाषा के रूप में देश को जिस भाषा की आवश्यकता है, वह गुण हिन्दी में विद्यमान है। इसलिए कि हिन्दी किसी क्षेत्र, जाति-धर्म एवं सम्प्रदाय की भाषा न होकर भारतीय संरचना में व्याप्त राष्ट्रीय एकता की अद्भुत कड़ी के रूप में जानी जाती है।

सौभाग्य की बात है कि हिन्दी के लिए देवनागरी लिपि के रूप में एक वैज्ञानिक एवं ध्वनि प्रधान लिपि मिली है, जिसका उद्भव ब्राह्मी लिपि से हुआ है, जिससे भारत की प्रायः सभी भाषाओं की लिपियाँ विकसित हुई हैं। प्राचीन भारत में ब्राह्मी और खरोष्ठी नामक दो लिपियाँ प्रचलित थीं। ब्राह्मी लिपि बाईं ओर से दाहिनी ओर तथा खरोष्ठी (गधो के होंठवाली) लिपि फारसी लिपि की तरह दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती थी।

जिस प्रकार संस्कृत ने आस्ट्रिक, द्रविड़, ग्रीक, लैटिन, चीनी, तुर्की, अरबी आदि भाषाओं के अनेक शब्द आत्मसात कर अपने शब्द भण्डार को समृद्ध किया हैस उसी प्रकार हिन्दी ने भी अरबी, फारसी और अंग्रेजी से शब्द ग्रहणकर अपनी शब्द सम्पदा को बढ़ाया है। क्योंकि कोई भी जीवंत भाषा अन्य भाषाओं के शब्द ग्रहणकर अपने शब्द भण्डार को समृद्ध करती है। हिन्दी, हिन्दीभाषी प्रदेशों की

24 भाषाओं एवं अनेक बोलियों से मिलकर बनी है। बोलियों के विकास एवं परिमार्जन से ही भाषा समृद्ध होती है।

भाषा सामाजिकता एवं समस्त ज्ञान-विज्ञानं का आधार होती है। भारत बहुभाषी देश है। इसकी प्रादेशिक भाषाएँ हर दृष्टि से समर्थ हैं। हिन्दी समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़ने में संयोजक की भूमिका निभा रही है। बोलियाँ उसकी ताकत हैं। कहा भी गया है कि किसी भी जीवंत भाषा के प्राण उसकी बोलियों में ही बसते हैं। हिन्दी की बोलियों में रचा बसा साहित्य हिन्दी के लिए अजस्र स्रोत की भाँति है। हिन्दी के आँचल में 18 बोलियाँ (खड़ी बोली, ब्रजभाषा, बांगरू, बुन्देली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, मगही, भोजपुरी, सेवाती, मालवी, अहीरवाटी, जयपुरी-हड़ौती, मेवाड़ी, मारवाड़ी, पहाड़ी (पश्चिमी, मध्य एवं पूर्वी) पली-बढ़ी एवं विकसित हुई हैं।

हिन्दी एक जीवंत भाषा है। हम हिन्दी का एक शब्द बोलते हैं तो उस शब्द की प्रकृति एवं संस्कृति का समन्वयात्मक रूप मन की आँखों के सामने साकार हो उठता है। वह शब्द अकेला नहीं अपितु अपनी अर्थ संस्कृति के समस्त अलंकरणों के साथ उपस्थित होता है। 'गाँव' शब्द को ही लीजिए। इसका अर्थ केवल उस जगह से तो नहीं है, जहाँ के अधिकांश लोग अशिक्षित और अभाव से भरा जीवन जी रहे होते हैं। बल्कि गाँव जीवन की जरूरतों के लिए ईमानदारी के साथ संघर्ष करने के जज्बे का नाम भी है। घर-आँगन, खेत-खलिहान एवं घर के आस-पास स्थित पेड़ की शाखाओं पर घोसले बनाकर रहनेवाले पक्षियों के कलरव 'गाँव' शब्द के अर्थ की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

भारत की तरह चीन भी बहुभाषी देश है, किन्तु राष्ट्रीय भाषा का दर्जा उसने देश की सर्वमान्य भाषा मंदारिन (चीनी) को दी है। चीन में पढ़ाई-लिखाई का माध्यम भी यही भाषा है, जबकि चीनी चित्रलिपि से विकसित विश्व की सबसे कठिन लिपियों में एक है। एक लाख करोड़ रुपए की लागतवाली जापान की बुलेट ट्रेन की तकनीक जापानी भाषा के द्वारा ही खोजी गई है। 12 करोड़ की आबादीवाले जापान में 13 नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक हैंस रूस, चीन, जापान, अमेरिका, जर्मनी, "रांस और इजराइल जैसे दुनिया के सभी विकसित देश ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा अपनी भाषा में ही देते हैं।

भारत को अंग्रेजों से आजाद हुए 72 वर्ष से अधिक हो चुके हैं, किन्तु देश की सर्वमान्य भाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान अब तक नहीं प्राप्त हो सका है। अंग्रेजी मानसिकता से ग्रस्त एवं पाश्चात्य जीवन शैली से प्रभावित कुछ लोग हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की सामर्थ्य पर सवाल उठाते रहते हैं, जबकि हमने अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त कर विश्व को बुद्ध और महावीर दिए। चरक जैसे शरीर वैज्ञानिक और शुश्रुत जैसे शल्य चिकित्सक दिएस पाणिनि जैसा वैयाकरण, आर्यभट जैसा खगोलविद, पातंजलि जैसा योग गुरु और कौटिल्य जैसा अर्थशास्त्री दिए। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय भारतवर्ष में ही थे, जहाँ संसार के अन्य देशों के विद्यार्थी ज्ञान-विज्ञानं की शिक्षा ग्रहण करने आया करते थे।

भारतीय संविधान ने हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए उसके

विकास सम्बन्धी अनुच्छेद 351 में कहा है, 'संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक और वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।'

परन्तु अंग्रेजी, अंग्रेजों के शासन काल से अब तक देश के शासन की भाषा के रूप में भारतीय जनमानस पर अपना वर्चस्व बनाए हुए है, जबकि जनता के बोलचाल एवं व्यवहार की भाषाएँ भारतीय हैं। उच्च न्यायालय से लेकर उच्चतम न्यायालय की बहसें आज भी अंग्रेजी में होती हैं। फैसले भी अंग्रेजी में ही लिए जाते हैं। एक ऐसा देश जहाँ की बहुसंख्य जनता को न्यायालय के निर्णय को समझने के लिए वकीलों के पास जाना पड़ता है, जिसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

राजनीतिक लाभ के लिए भाषा को लेकर भड़काऊ बातें करना तमिलनाडु के नेताओं की प्रकृति रही है। इस अहिन्दीभाषी प्रदेश में पहले से हिन्दी विरोधी आवाजें उठती रही हैं। विरोध करनेवालों में प्रदेश के मुख्यमंत्री भक्त वत्सलम और करुणानिधि भी रहे हैं। 26 जनवरी, सन् 1965 को तत्कालीन मुख्यमंत्री भक्त वत्सलम ने हिन्दी विरोध में शोक दिवस मनाया था। हिन्दी विरोध के नाम पर यहाँ संविधान की प्रतियाँ भी जलाई गई थीं। आगे चलकर एक समय ऐसा भी आया जब सन् 1996 में तत्कालीन मुख्यमंत्री करुणानिधि ने विधानसभा के कामकाज से अंग्रेजी हटाने की घोषणा कर दी, जिसका देश भर में जोरदार स्वागत किया गयास बताते चलें कि तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमंत्री गोपालाचार्य ने सन् 1936 में तमिलनाडु में हिन्दी पढ़ना अनिवार्य कर दिया था।

इन दिनों भारत में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति पर आधारित विद्यालयों की बाढ़-सी आ गई है। इन अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की भूमिका के प्रति गहरा आक्रोश प्रकट करते हुए साहित्यकार निर्मल वर्मा जी ने कहा है- क्या हम अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी शिक्षा पद्धति में ढले विद्यालयों को भंग करने का साहस रखते हैं ताकि अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मनीषा के अनुरूप भारत की युवा पीढ़ी को नये सिरे से दीक्षित किया जा सके?' वर्मा जी ने राजनेताओं के द्वारा जाति और धर्म के नाम पर की जा रही सौदेबाजी से बचने के लिए जनता को सावधान भी किया है। उन्होंने धर्म को आस्था के स्तर पर भारतीयता की अवधारणा से जोड़ने की अपील की है, ताकि लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हो सकेस गुलामी के दिनों का स्मरण करते हुए वर्मा जी कहते हैं-, 'गुलामी में जीते हुए भी हमारे भीतर वे सभी शक्तियाँ विद्यमान थीं, जो हमें अतीत के प्रति आदर और भविष्य के प्रति आस्था से भर सकें।''

अंग्रेजों से स्वतंत्रता के बाद प्राथमिक शिक्षा को लेकर राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग एवं अन्य राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक महत्त्व की संस्थाओं ने सर्वसम्मति से यह सिफारिश की थी कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि बच्चे अपनी मातृभाषा के माध्यम से जो भी सीखते हैं, उनके

मन-मस्तिष्क पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। शोध से यह ज्ञात हुआ है कि किसी विद्यार्थी को विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाए जाने पर विषय को समझने के बजाय रटकर याद करना पड़ता है। मौलिक चिंतन तभी सम्भव है जब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

इंडियन एक्सप्रेस के अक्टूबर, 2017 के अंक में छपी खबर के अनुसार भारत सरकार ने दिल्ली कारपोरेशन के अन्तर्गत आनेवाले सभी 1700 से अधिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम से चलाने का निर्णय लिया है। इसी तरह का अलोकतांत्रिक निर्णय उत्तराखण्ड की सरकार ने अपने यहाँ के 18000 से भी अधिक विद्यालयों को अंग्रेजी माध्यम का बनाने की घोषणा करके लिया है। इन दिनों उत्तर प्रदेश सरकार भी प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अंग्रेजीकरण में लगी है। सरकारों के ऐसे फैसले संविधान की मूल भावना के विरूद्ध तो हैं ही, देश के 80 प्रतिशत प्रतिभावान विद्यार्थियों के मौलिक अधिकारों को छीनने जैसे हैंस देश के मुठ्ठीभर लोग सत्ता पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए अंग्रेजी को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते आ रहे हैं। जब तक हमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाएगी, तब तक गाँवों की दबी प्रतिभाओं के उभरने और विकास की मुख्य धारा में आने का अवसर उपलब्ध ही नहीं हो सकेगा।

आजादी के 72 वर्षों के बाद भी सरकारी कार्यालयों में हिन्दी में कार्य करने की संस्कृति का अपेक्षित विकास नहीं हो सका है। स्थिति यह है कि अंग्रेजी आज भी जन-सामान्य के मन-मस्तिष्क पर बोझ के रूप में विराजमान है। महात्मा गाँधी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को हमारी बौद्धिक चेतना के विकास में बाधक बताया था। उन्होंने हिन्दू स्वराज में लिखा था, 'अंग्रेजी शिक्षा से द्वेष और अत्याचार बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों ने जनता को ठगने और परेशान करने में कोई कसर नहीं रखी है। भारत को गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी जाननेवाले लोग ही हैं।' 5 फरवरी 1916 को नागरी प्रचारिणी सभा में भाषण देते हुए गाँधीजी ने अपने 36 समर्थकों के साथ जीवनपर्यंत हिन्दी के व्यवहार की शपथ ली थी। उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी के प्रचार-प्रसार को एक-दूसरे का पूरक बना दिया था।

गाँधीजी ने 27 दिसम्बर, सन् 1917 को कोलकाता में भाषा को जीवन से जोड़ने और जनता के निकटस्थ रहनेवाली चीज बताते हुए कहा था, 'यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गये होते तो यह समझने में देर नहीं लगती कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर दूर हो गई है।' गाँधीजी ने युवकों को हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएँ भी सीखने की सलाह दी थी। एक जगह उन्होंने कहा था, 'मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक हैं। प्रत्येक प्रान्त में उसी प्रान्त की भाषा तथा सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार होना चाहिए।''

गाँधीजी ने देश के आम आदमी की समझ में आनेवाली भाषा को अपनाने पर बल दिया और आम आदमी की समझ में आनेवाली उस भाषा को उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' नाम से संबोधित किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का संकल्प लिया और

सन् 1918 में उन्होंने अपने 18 वर्षीय पुत्र देवदास गाँधी और स्वामी सत्यदेव को हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए मद्रास भेज दियास हिन्दी के प्रचार के लिए एक कमेटी भी गठित की गयी थी, जिसके सभापति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी थे। गाँधीजी ने सन् 1930 में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वर्धा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की थी। उन्होंने भाषा के सवाल को बड़ी ही गंभीरता से लिया था। भाषा को लेकर हिन्दी भाषी प्रदेश के निवासियों की उदासीनता पर उन्होंने क्षुब्ध होकर कहा था, 'मुझे खेद है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ पर भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह नहीं दिखलाई देता है।'

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन मानसिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता को स्वाधीनता से अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। यह भी मानते थे कि मनुष्य की मानसिक वृत्तियों का विकास मातृभाषा के द्वारा ही सम्भव है। टंडन जी चाहते थे कि विधायिका और कार्यपालिका ही नहीं, अपितु समस्त विश्वविद्यालय एवं देश की न्यायपालिका के कामकाज भी हिन्दी में होंस हिन्दी-हिन्दुस्तानी एकता के पक्षधर जमनालाल बजाज ने मद्रास हिन्दी साहित्य सम्मलेन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था, 'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी ईमान की भाषा है, प्रेम की भाषा है, राष्ट्रीय एकता की भाषा है और आजादी की भाषा है।' हिन्दी और उर्दू भाषा की एकता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, 'हमें इस देश की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को एक करना है तो उसके लिए हिन्दी और उर्दू का ऐक्य होना चाहिए। इसलिए एक राष्ट्रभाषा का होना जरूरी है।' पूर्व राष्ट्रपति डॉक्टर ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने देश के लिए हिन्दी की आवश्यकता को इन शब्दों में व्यक्त किया है, 'मेरी राय है कि सभी राज्यों में बारहवीं कक्षा तक हिन्दी बोलना अनिवार्य कर दिया जाए, ताकि सारे लोग हिन्दी पढ़ना-लिखना सीख सकें।'

राष्ट्रीय एकता के लिए डॉ राममनोहर लोहिया का हिन्दी को अपनाने पर विशेष बल था। लोहियाजी कहा करते थे, 'हम समझते हैं कि अंग्रेजी के होते यहाँ ईमानदारी का आना असम्भव है।'' समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह यादव ने अंग्रेजी का खुलकर विरोध करते हुए राजनेताओ से अपील की थी कि जिस भाषा में वोट माँगते हो, उसी भाषा में प्रशासनिक काम-काज भी करोस कवि 'अज्ञेय' ने बड़े दु:ख के साथ कहा था,- 'जब हम राजनीतिक दृष्टि से पराधीन थे तब तो हमारे पास स्वाधीन भाषा थी। अब जब हम स्वाधीन हो गये तो हमारी भाषा पराधीन हो गई।' राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि जो सरकार जनता से उसकी भाषा में संवाद नहीं करती, वह सरकार अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन में अक्षम मानी जाती है।

आपको ज्ञात होगा कि संविधान लागू होने के मात्र 15 वर्षों तक देश का कामकाज अंग्रेजी में किए जाने का प्रावधान था। उसके बाद हिन्दी को राजभाषा के रूप में पूरे देश में लागू होना था, पर तमिलनाडु के हिन्दी विरोधियों के उग्र एवं अराजक रवैये के आगे झुककर सरकार ने सन् 1963 में ही राजभाषा विधेयक पारित कर दिया, जिससे सन् 1965 के बाद भी देश में अंग्रेजी का वर्चस्व बना ही रह गया। संवैधानिक दृष्टि से हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है किन्तु अंग्रेजी के वर्चस्व ने उसे उसके ही घर में परमुखापेक्षी बना दिया हैस केंद्रीय गृह मंत्रालय ने दो राजभाषा अधिनियम बनाये थे। अधिनियम की धारा 3/1 के अधीन हिन्दी के साथ अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में अपनाने का निश्चय किया गया था। इसके चलते यह स्थिति बन गई कि पहले हिन्दी के साथ अंग्रेजी को जारी

रखने की अवधि 15 वर्ष निश्चित की गई, किन्तु सहभाषा के रूप में इसके प्रयोग की अवधि अनिश्चितकालीन कर अंग्रेजी को अनंत काल तक बने रहने की खुली छूट दे दी गईस राजभाषा अधिनियम की धारा 3/2 के अन्तर्गत यह शर्त रख दी गई कि जब तक भारत के किसी एक भी राज्य की सरकार हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाने से इनकार कर देती है, तब तक हिन्दी संघ की राजभाषा का दर्जा नहीं प्राप्त कर सकतीस परन्तु लगता है भारत के लिए राजभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति वस्तुतः उसके समर्थकों और विरोधियों के बीच एक प्रकार के समझौते जैसी ही है।

एक स्वतंत्रता सेनानी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के समक्ष इस आशय का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, 'संघ का समूचा कामकाज हिन्दी के माध्यम से ही किये जाने की कोई अवधि निश्चित की जानी चाहिए, जिससे हमारी दीर्घकालीन दासता की द्योतिका विदेशी अंग्रेजी भाषा यहाँ अनंत काल तक अपना अस्तित्व न बनाये रख सके।'

उपरोक्त प्रतिवेदन के उत्तर में प्राप्त टिप्पणी इस प्रकार है- संविधान के अनुच्छेद 343/1 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी है तथा अनुच्छेद 343/2 के अन्तर्गत संविधान के आरम्भ से 15 वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखा गया है। राजभाषा अधिनियम 1983 की धारा 3/1 के अधीन हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी के प्रयोग को राजकीय प्रयोजनों के लिए जारी रखने का प्रावधान है तथा अधिनियम की धारा 315 में यह प्रावधान है कि अंग्रेजी का प्रयोग तब तक जारी रहेगा, जब तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए सभी राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा जिन्होंने हिन्दी भाषा को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प धारित नहीं कर लिए जाते, तब तक उन संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिये संसद के दोनों सदनों द्वारा संकल्प नहीं कर लिया जाता, इन व्यवस्थाओं के अन्तर्गत संघ का समूचा कामकाज हिन्दी के माध्यम से किये जाने की कोई निश्चित समय सीमा तय नहीं की जा सकती।

राजभाषा अधिनियम 1963 के अनुसार केन्द्रीय सरकार का कामकाज अंग्रेजी में किया जा सकता है। राजभाषा नियम 1976 बनने से 'क' क्षेत्र के केन्द्रीय कार्यालयों में कामकाज केवल हिन्दी में, 'ख' क्षेत्र में हिन्दी और अंग्रेजी में तथा 'ग' क्षेत्र के राज्यों की सरकारों को पत्रादि अंग्रेजी में लिखने का प्रावधान है।

संविधान लागू होने के समय अष्टम अनुसूची में हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, बंगाली, उड़िया, मलयालम, पंजाबी, असमिया, उर्दू एवं कश्मीरी सहित कुल 14 भाषाएँ थीं। सन् 1967 में सिंधी, सन् 1992 में कोंकणी, मणिपुरी एवं नेपाली सहित 18 हो गईं। सन् 2004 में मैथिली, बोडो, संथाली व डोगरी के सम्मिलित हो जाने से अष्टम अनुसूची में अब कुल 22 भाषाएँ हो गई हैं। राजनीतिक स्वार्थसिद्धि के लिए देश के कुछ राजनेता हिन्दी की बोलियों को संविधान की अष्टम अनुसूची में जगह दिलाने की कोशिश में लगे हैं। जबकि हिन्दी की किसी भी बोली को संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित करवाने की कोशिश या हिन्दी को बचाने के लिए देवनागरी लिपि के बजाय उसे रोमन लिपि में लिखने की कवायद अनुचित, अव्यवहारिक एवं हिन्दी को ही कमजोर करने जैसी है। भाषा और बोली के बीच के भेद को शब्दावली से नहीं,

बल्कि लिपि के आधार पर समझा जा सकता है। हिन्दी भाषा की इन बोलियों की लिपि भी देवनागरी है और बोलियों को भाषा मान लेने पर नुकसान हिन्दी का ही होता है।

हिन्दी की किसी बोली का अष्टम अनुसूची में सम्मिलित होने के पश्चात् उसका स्वतंत्र अस्तित्व बन जाता है। वह मूल भाषा से अलग समझी जाने लगती है। हिन्दी की बोलियाँ जब तक हिन्दी के साथ हैं, तब तक उसके बोलनेवालों की गणना हिन्दी के अन्तर्गत होगी। जिस दिन कोई बोली संविधान की अष्टम अनुसूची में शामिल हो जाएगी, उस दिन से उसे अपनी मातृभाषा लिखनेवाले संवैधानिक रूप से हिन्दीभाषी नहीं गिने जाएंगे। आज तक अपने बोलनेवालों की संख्या के बल पर ही हिन्दी राजभाषा के पद पर आरूढ़ है। भोजपुरी और राजस्थानी को संविधान की अष्टम अनुसूची शामिल करने की माँग एक दशक से उठ रही है। हिन्दी की कई बोलियों के संविधान की अष्टम अनुसूची में शामिल हो जाने से हिन्दी का संख्या बल घट रहा है। यदि यह सिलसिला यूँ ही चलता रहा तो संख्या बल की कमी के चलते एक दिन हिन्दी को देश की राजभाषा के पद से पद्च्युत होना भी पड़ सकता है। ये अंग्रेजीवाले 'बाँटो और राज करो' की आदत से बाज आनेवाले नहीं हैं।

भारतीय संविधान ने भाषा से संबंधित विषयों को संविधान के अनुच्छेद 120 व 210 तथा अनुच्छेद 343 से 351 तक में वर्णित किया है। इसमें भाषा से संबंधित कुल 11 अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 344(1) व 351 अष्टम अनुसूची की भाषाओं की मान्यता को दर्शाते हैं। यह सुनकर हिन्दी प्रेमी आहत होंगे कि अष्टम अनुसूची में जिन 38 भाषाओं को सम्मिलित किए जाने की बात इन दिनों जोरों पर चल रही है, उसमें एक भाषा अंग्रेजी भी है और जिस दिन अंग्रेजी अष्टम अनुसूची में जगह पा गई, उस दिन संविधान के अनुच्छेद 344 (1) व 351 के अनुसार भारत सरकार का संवैधानिक उत्तरदायित्व होगा कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह वह अंग्रेजी का भी ध्यान रखेस क्या अंग्रेजी को अष्टम अनुसूची में जगह दिलाने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगानेवालों को नहीं मालूम कि अंग्रेजी को संवैधानिक मान्यता दिलाना दासता की मानसिकता को दृढ़ करने जैसा है?

हिन्दी भारतीय अस्मिता की पहचान है। राजभाषा के रूप में देश के शासकीय प्रयोजनों को सिद्ध करने के साथ राष्ट्रभाषा के रूप में देश की एकता और अखण्डता को मजबूत बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी इसके कन्धों पर है। इसमें देश की परम्परा, विश्वास, धर्म, संस्कृति एवं लोकनीति के स्वर समाहित हैं। हिन्दी भारतीय जनमानस के हृदय की भाषा हैस भारत का सर्वांगीण विकास हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की उन्नति के द्वारा ही सम्भव है।

बलवन्त, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बंगलौर, ग्राम : जूड़ी, पोस्ट : तेन्दू, तहसील–राबर्टसगंज,
जनपद–सोनभद्र–231216 (उत्तर प्रदेश), मो. : 7337810240,
ई–मेल : balwant.acharya@gmail.com

✧ ✧ ✧

नागार्जुन के काव्य में कृषक-क्रांति के स्वर

विनय कुमार मिश्र

नागार्जुन साहित्य को जनता के जीवन-संघर्ष का अभिन्न अंग मानते हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, भुखमरी के शिकार हों और कवि उसे अपने साहित्य में स्थान न दे तो यह उनके प्रति अन्याय होगा। कवि का अपनी चेतना समाज के लिए अर्पित कर देना नितान्त स्वाभाविक है। स्पष्ट है कि कवि समाज से, समाज के संघर्ष से, उनके सुनहरे भविष्य के निर्माण के प्रयत्नों से प्रतिबद्ध हैं। प्रतिबद्धता उसका प्रातिक गुण है, जैसे कि- यथार्थ। नागार्जुन ने अपनी वेगवान् प्रतिभा 'लाल भवानी' कविता के माध्यम से प्रकट की है।

मिथिला की सोंधी मिट्टी में उत्पन्न धरतीपुत्र नागार्जुन षक-क्रान्ति के अग्रदूत माने जाते हैं। इनकी स्वयं की पारिवारिक पृष्ठभूमि निर्धन ब्राह्मण षक परिवार से सम्बद्ध है। अतएव इनके हृदय में शोशित किसानों एवं मजदूरों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। नागार्जुन सदैव शोषित वर्ग के पक्षधर एवं शोषण करने वालों के विरोधी रहे हैं। नागार्जुन ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में शोषित, दबे-कुचले लोगों की आवाज को उठाया है। विशेषकर उनकी कविताओं में क्रांति के स्वर अधिक मुखरित हुए हैं। इन्होंने 'बेकार' कविता के माध्यम से बेरोजगारी के भयावह श्य को चित्रंकन करते हुए बेकारी से त्रस्त मनुष्य की मनोदशा का वर्णन किया है।

मानव होकर मानव के ही चरणों में मैं रोया!
दिन बागों में बिता रात को पटरी पर मैं सोया!
राजकीय ये उच्च डिग्रियाँ ऐसा सुन्दर मुखड़ा!
तो भी नहीं किसी ने सुनना चाहा मेरा दुखड़ा!
कभी घुमक्कड़ यार-दोस्त से मिलकर कभी अकेले -
एक-एक दाने की खातिर सौ-सौ पापड़ बेले!

दीपक, अगस्त, 1937

इस कविता के द्वारा नागार्जुन ने मनुष्य का निष्ठुर बनने और मानव जाति के प्रति उसके क्रूर व्यवहार को प्रदर्शित किया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का खून चूस कर जोंक की तरह अपना पोषण करना चाहता है। नागार्जुन बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर सिंहलद्वीप में पालि भाषा

का अध्ययन कर रहे थे। उसी दौरान उन्हें बिहार में स्वामी सहजानन्द द्वारा चलाए जा रहे किसान आन्दोलन की सूचना प्राप्त हुई। वे श्रीलंका से स्वदेश लौटकर किसान आन्दोलन में कूद पड़े। षक आन्दोलन में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। फिर भी वे विचलित नहीं हुए। नागार्जुन ने अपनी कविता 'अकाल और उसके बाद' में मनुष्य के साथ-साथ अन्य जीवों की हृदय-विदारक घटना का वर्णन करके भुखमरी की समस्या को चित्रित किया है। इसका साक्षात् दर्शन निम्न पंक्तियों में किया जा सकता है-

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुत्तिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

नागार्जुन साहित्य को जनता के जीवन-संघर्ष का अभिन्न अंग मानते हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, भुखमरी के शिकार हों और कवि उसे अपने साहित्य में स्थान न दे तो यह उनके प्रति अन्याय होगा। कवि का अपनी चेतना समाज के लिए अर्पित कर देना नितान्त स्वाभाविक है। स्पष्ट है कि कवि समाज से, समाज के संघर्ष से, उनके सुनहरे भविष्य के निर्माण के प्रयत्नों से प्रतिबद्ध हैं। प्रतिबद्धता उसका प्रातिक गुण है, जैसे कि- यथार्थ। नागार्जुन ने अपनी वेगवान् प्रतिभा 'लाल भवानी' कविता के माध्यम से प्रकट की है। इनकी इस कविता में जमींदारी प्रथा के प्रति विद्रोह के तीव्र स्वर मुखरित हुए हैं। कवि का भाव है कि यदि किसान और मजदूर वर्ग को भरपेट भोजन नहीं मिलेगा तो उनके अन्दर जमीदारों के प्रति क्रांति के स्वर स्वयं ही प्रस्फुटित हो जाएंगे। शोषित षक और मजदूर जमीदारों और सरकार का खुलकर विरोध करेंगे। उनके अन्दर देशभक्ति की झूठी शान नहीं है। वे अपना हक किसी भी कीमत पर लेकर रहेंगे, क्योंकि किसान ही देश का भाग्य विधाता और सच्चा राष्ट्र प्रेमी है। 'लाल भवानी' कविता की क्रांतिकारी पंक्तियों में कवि ने अपनी भावनाओं को प्रकट किया है -

झूठ-मूठ सुजला-सुफला के गीत न हम अब गाएँगे,
भात-दाल-तरकारी जब तक नहीं पेट-भर पाएँग
सड़ी लाश हैं जमींदारियाँ, इनको हम दफ़नाएँगे,
गाँव-गाँव पाँतर-पाँतर को हम भू-स्वर्ग बनाएँगे
खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है
ज़मींदार हैं बदहवास, हमने उनको ललकारा है,
जिसका जाँगर उसकी धरती, यही एक बस नारा है

नाहक ही हम पिटते आए, व्यर्थ लाठियां खाई है,
पहचाना अब, चोर-चोर सब ये मौसेरे भाई हैं
होशियार, कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना की तैलंगाने में।

हजार-हजार बाहों वाली/हंस अप्रैल 1948

प्रत्येक साहित्यकार अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसी-न-किसी विचारधारा का आश्रय ग्रहण करता है, क्योंकि विचारविहीन अथवा उद्देश्यविहीन साहित्य को उत्ष्ट साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं, अपितु समाज कल्याण के लिए होना चाहिए। **मैथिलीशरण गुप्त** ने इस तथ्य का समर्थन अपनी निम्न पंक्तियों के द्वारा किया है –

केवल मनोरंजन न कवि कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

भारत-भारती 1912

वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध नागार्जुन की प्रतिबद्धता सर्वप्रथम निर्धन किसान-मजदूरों के प्रति है। तदुपरान्त किसी राजनीतिक अथवा दार्शनिक विचारधारा के प्रति। स्वयं बाबा (नागार्जुन) के शब्दों में- 'मैं अपनी रचना की ऊर्जा श्रमिक, षक, छात्र तथा तरुण वर्ग से ग्रहण करता हूँ। मैं ग्रामांचलों में जाकर खेत-मजदूरों के बीच मिल-बैठकर उनके सुख-दुख का निकट से अध्ययन करता हूँ, फिर उन्हें अपनी रचना का विषय बनाता हूँ। एक साथ रहने वाले बूढ़े और नौजवानों के दृष्टिकोण में मुझे फर्क मिलता है। नई पीढ़ी में प्रतिरोध की आवाज होती है। प्रतिरोध की यही आवाज मेरी रचनात्मक ऊर्जा का काम करती है।' बाबा ने अपनी प्रतिबद्धता को चन्द पंक्तियों के माध्यम से घोषित किया है –

'प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ-
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त।'

नागार्जुन ने उपर्युक्त पंक्तियों में बहुजन समाज (किसान और मजदूरों) के प्रति अपनी सहृदयता प्रकट की है। 'पूरी आजादी का संकल्प' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने षक-जनता की बदहाली और सरकार एवं साहूकार द्वारा किसानों के शोषण का चित्रण किया है। उनका कहना है कि सिर्फ देश के स्वतंत्र हो जाने से जनता खुशहाल नहीं है। किसानों के पास खेती करने के साधनों का अभाव है, किन्तु सरकार उनके प्रति उदासीन है। उनके पास बोने के लिए बीज और जोतने के लिए बैल नहीं है फिर भी सरकार ने नहर के पानी का दाम बढ़ा दिया है। मजबूरी में धरती का देवता कहलाने वाला किसान साहूकारों से ऊँची ब्याज दर पर कर्ज लेता है। कर्ज न चुकता कर पाने की स्थिति में सूदखोरों की डाँट-डपट सुननी पड़ती है। नागार्जुन ने अपनी इस कविता द्वारा सरकार को सचेत किया है कि देश की अस्सी प्रतिशत आबादी किसान और मजदूर वर्ग की है। इनकी आत्मनिर्भरता और खुशहाली में ही देश का विकास है। जब देश की जनता सुख-साधनों से परिपूर्ण होगी, तभी पूर्ण आजादी का संकल्प पूरा होगा। उनकी षक समस्या से प्रेरित कुछ पंक्तियां

विचारणीय है –

बीज नहीं है, बैल नहीं है, वर्षा बिन अकुलाते हैं,
नहर रेट बढ़ गया, खेत में पानी नहीं पटाते हैं,
नहीं भूमि में कनमा-भर भी दाना उपजा पाते हैं,
पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं।

देश में षकों एवं मजदूरों की वास्तविक स्थिति की सच्ची तस्वीर आंकने के लिए प्रत्येक सहृदय पाठक नागार्जुन को षक क्रांति का अग्रदूत ही मानेगा। स्वतंत्रता के बाद देश में अधिकांश जनता गरीबी-रेखा से नीचे जीवन-यापन करती थी, जो आधा पेट भोजन करके अपना निर्वाह करती थी। आजाद भारत में जनता भूख से मरती थी, अपितु कहना चाहिए कि आजादी के कई वर्षों तक यही स्थिति बनी रही। देश में अकाल पड़ना साधारण बात थी। अलग-अलग क्षेत्रों में अकाल पड़ता ही रहा। 1967 में दक्षिण बिहार में पड़े अकाल की भयावह स्थिति का चित्रण नागार्जुन ने अपनी अधोलिखित पंक्तियों में किया है–

भुक्खड़ के हाथों में यह बन्दूक कहां से आई-
एस.डी.ओ. की गुड़िया बीबी सपने में घिघियाई
बच्चे जागे, नौकर जागा, आया आई पास
साहेब थे बाहर, घर में बीमार पड़ी थी सास
नौकर ने समझाया- नाहक ही डर गई, हुजूर!
वह अकाल वाला थाना पड़ता है काफी दूर!

उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट है कि भूखी-बेहाल जनता सरकार एवं अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए विवश है। सरकार जो कुछ सहायता सामग्री अकाल पीड़ितों के लिए भेजती है, उसे अधिकारी-कर्मचारी हजम कर जाते हैं। अकाल पीड़ित जनता के विद्रोह से उठने वाली चिनगारी को सरकार पुलिस बल से दमन करने का प्रयास करती है। सरकार द्वारा पुलिस के इस अत्याचार को नागार्जुन ने अपने कविता में व्यक्त किया है। उन्होंने पुलिस पर तीखा व्यंग्य कसते हुए लिखा है–

'मालाबार के खेतिहरों को अन्न चाहिए खाने को
दण्डपाणि को लट्ठ चाहिए बिगड़ी बात बनाने को
जंगल में जाकर जो देखा नहीं एक भी बाँस बचा
सभी कट गए सुना देश को पुलिस रही है सबक सिखा।'

लोकतंत्र में जिस सरकार को जनता अपने सुख-दुःख का साथी मानती हुई चुनती है, वही सरकार भुखमरी से पीड़ित जनता का बड़ी निर्ममता से दमन करती है। यह लोकतंत्र के लिए बड़ी शर्म की बात है। पुलिस की नियुक्ति जनता की अराजक तत्वों से रक्षा के लिए होती है, किन्तु वही पुलिस उनकी जान की दुश्मन बनी है। चुनाव के समय नेताओं द्वारा बड़े-बड़े वादे करके किस प्रकार किसानों और मजदूरों को ठगा जाता है। इस तथ्य को नागार्जुन ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा

जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया। नेताओं के झूठे वादों और भ्रष्ट प्रशासन को नागार्जुन ने 'लाल भवानी' कविता में उजागर किया है। नागार्जुन की इन पंक्तियों में भ्रष्ट शासन के प्रति क्रान्ति के तीव्र स्वर प्रस्फुटित हुए हैं –

पुलिस और पल्टन के हाथी कितना चारा खाते हैं,
वही रंग है, वही ढंग है, फर्क नहीं कुछ पाते हैं,
ऊपर वाले बैठे-बैठे खाली बात बनाते हैं,
बाढ़-अकाल महामारी में काम नहीं कुछ आते हैं,
देशभक्ति की सनद मिल रही आए दिन शैतानों को,
डाँट-डपट उपदेश मिल रहे दु:खी मजूर किसानों को,
बात-बात में नाक रगड़ना पड़ता है इंसानों को,
हरी फ़सल चने को छुटा छोड़ दिया हैवानों को,
सड़ी गली नौकरशाही से पहले ही ऊबे थे हम,
इधर 'स्वराज' मिला है, तब से दूर हो गया सभी भरम,
नेता परेशान हैं जनता का तूफान दबाने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में!'

हजार-हजार बाहों वाली/हंस, अप्रैल 1948

नागार्जुन प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्तम्भ है। कवि की प्रगतिवादी चेतना का मुख्य आधार श्रमिक-किसान-मजदूर वर्ग है। नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होंने श्रमिक जनता की आधारभूमि से समाज के प्रत्येक वर्ग की प्रत्येक समस्या पर ष्टिपात किया है। नागार्जुन इन निर्धनों, शोशितों के दु:ख, कष्ट और संघर्ष को कभी विस्मृत नहीं कर पाते हैं। एक ओर उनके प्रति करुणा, सहानुभूति है तो दूसरी ओर उनकी सजगता बनाए रखने के लिए क्रान्ति का स्वर फूटते हैं। नागार्जुन यदि जनता की गरीबी का खाका खींचते हैं तो राजनीतिज्ञों की पोल भी खोलते हैं। जिसके परिणामस्वरूप निर्धनों और पूंजीपतियों के बीच का अन्तर बढ़ता ही जा रहा है। जनता के प्रति उनकी सहानुभूति में कोरी भावुकता का विलगन नहीं, वरन् निर्माण की आस्था का स्वर है। वे जनता को जागृत कर उसे स्वयं अपने मार्ग खोजने की प्रेरणा देते हैं। कवि जनता को उसके अधिकार दिलाने के लिए ज़मींदारी प्रथा को समाप्त करना आवश्यक मानता है। नागार्जुन का कहना है कि भूमि के वास्तविक हकदार किसान और खेत-मजदूर हैं। अतएवं उन्हें अपना अधिकार मिलना चाहिए। लाल भवानी कविता की निम्न पंक्तियों में उन्होंने अपनी भावनाओं को प्रकट किया है –

खेत-मजदूरों और किसानों में जमीन बँट जाएगी,
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडराएगी,
नहीं मिलेगा साज़िश करने का मौका गद्दारों को,
वतन फ़रोशी का न मिलेगा ठेका ठेकेदारों को।

देश की मिट्टी से ऐसा आत्मीय प्रेम ऐसी गहरी आसक्ति और उसके सम्पर्क में आने से ऐसी

आन्तरिक तृप्ति जितनी नागार्जुन के काव्य में मिलती है, उतनी किसी राष्ट्रीय कवि की कविता में नहीं मिलती है। नागार्जुन की कविताओं के विवेचन के प्रसंग में **डॉ. नामवर सिंह** का यह कथन ध्यान देने योग्य है– 'मिथिला के ठेठ गाँव की मिटी से लिपटा यह 'यात्री' देशदेशान्तरों के अनुभवों से इतना समपृक्त हो उठा है कि सामाजिक चेतना उसकी सरस्वती में शतधा स्थापित हो उठी, कहीं व्यंग की बौछार, तो कहीं करुणा के मार्मिक, उत्स, कहीं गँवई प्रति के यथार्थ चित्र, तो कहीं गहरी ढोंग का उद्‌घाटन। भाषा भी तदनुरूप, कहीं प्रांजलता तो कहीं ठेठ बोलचाल।

नागार्जुन के काव्य में शोषित जनता के स्वर गूँजते रहे हैं, क्योंकि शोषण के यथार्थ को बाबा ने अपनी प्रत्यक्ष आँखों से देखा है। भोजपुर की कविता में नागार्जुन प्रतिज्ञा करते हैं कि पटना और दिल्ली के प्रलोभनों से बचेंगे और महामुक्ति की अग्निगंध के निकट ही रहेंगे। मुन्ना मुझको पटना दिल्ली मत जाने दो/भूमि-पुत्र की संग्रामी तेवर लिखने दो/पुलिस दमन का स्वाद मुझे भी चखने दो/मुन्ना मुझे पास आने दो/पटना दिल्ली मत जाने दो।

नागार्जुन जनकवि को प्रेरित करते हैं कि संघर्षशील जनता का साथ देने वाली वाणी ही कवि का कल्याण करेगी –

यही तुम्हारी वाणी का कल्याण करेगी
यही पुस्तिका जनकवि में अब प्राण भरेगी
चमत्कार है इस माटी में.....
आओ, आओ, आओ, आओ।
तुम भी आओ, तुम भी आओ,
देखो जनकवि भाग न जाओ।

जनता की अदम्य संघर्ष की भावना देशभक्ति के पावन आदर्शों पर टिकी हुई है। गांधी के कल्पित 'रामराज' में जब षक-मजदूर, खेतिहर, मध्यम वर्ग और जनता के विभिन्न शोषित वर्गों की भागीदारी होगी, तभी जनता के लिए पूर्ण स्वतंत्रता होगी। इस आजादी में नौकरशाही का सड़ा-गला ढाँचा नष्ट हो जाएगा तथा षक-मजदूर और जनता के अन्य वर्ग प्रसन्नतापूर्वक राष्ट्रभक्ति के गीत झूमकर गाएंगे। जनता की प्रसन्नता के इन गीतों से कवि के कानों को भी तृप्त मिलेगी और क्रान्ति का उद्देश्य पूरा होगा –

नौकरशाही का यह रद्दी ढांचा होगा चूरम-चूर
सुजला-सुफला के गाएँगे गीत प्रसन्न किसान मजूर।

विनय कुमार मिश्र, शोध–छात्र–हिन्दी विभाग, राजा श्रीकृष्णदत्त, पी. जी. कॉलेज, जौनपुर
मो. : 9794246897, ई–मेल : vinaykumarmishra9794@gmail.com

✧ ✧ ✧

छायावादी चतुष्ट्य एवं आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के काव्य में बिम्ब-योजना

डॉ. आशुतोष मिश्र

'प्रत्येक सुंदर कविता चित्रों का अलबम अथवा स्वयं एक पूर्ण चित्र होती है..... चित्र कविता का एकमात्र शाश्वत गुण है, जो उससे कभी नहीं छूटता। कविता और कुछ चाहे करे या न करे, किन्तु चित्रों की रचना वह अवश्य करती हैं और जिस कविता के भीतर बनने वाले चित्र जितने ही स्वच्छ यानी विभन्न इन्द्रियों से स्पष्ट अनुभूत होने के योग्य होते हैं, वह कविता उतनी ही सफल और सुंदर होती है।'

सम्पूर्ण विश्व वांङगमय में संस्कृत साहित्य के कवि कालिदास ने अपने महाकाव्यों में सर्वप्रथम काव्यालंकारों के द्वारा बिम्ब-योजना का निरूपण किया है। हिन्दी साहित्य में वह परम्परा संस्कृत साहित्य की देन है जबकि कुछ आधुनिक समीक्षक इसे विदेशी साहित्य का अनुकरण मानते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न कलाएँ परस्पर इस प्रकार मिल गई कि उनकी सामर्थ्य शक्ति में अद्‌भुत प्रभाव आ गया। इन ललित कलाओं में वास्तु कला, स्थापत्य कला, काव्य कला तथा संगीत कला आदि कलाएँ आती है। जब समाज में सामाजिक और मानवीय मूल्यों में जैसे-जैसे स्थायित्व आता गया, वैसे-वैसे इन कलाओं की लालित्य योजना संकेन्द्रित होती गई और अन्ततः वह काव्य-कला में अन्तर्भुक्त हो गई। संभवतः इसीलिए विश्व के साथ आश्चर्य जनक धरोहरों में से एक 'ताजमहल' को किसी सहृदय ने 'पत्थरों में लिखी कविता' की संज्ञा दी हैं। यह वाक्य काव्य-कला की उत्कृष्टता का जीवंत प्रमाण है। संगीतात्मकता और चित्रात्मकता काव्य-कला के प्राण है, उसकी आत्मा है। चित्रा काव्य की घनिष्ठता के संबंध में फांसी सी चित्रकार अल्फोसं-टु-फ स्वास को यह विचार देना पड़ा कि। poem is like a picture; so a picture ought to try to be like a poem----------a picture is often called silent poetry; and poetry a speaking picture.

बहुमुखी कलात्मक अभिव्यक्ति आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री जी ने छायावादी काव्य शैली के रूप में अपनी रचनाओं में संगीतात्मक और चित्रात्मक योजना को रूपायति किया है। कविता की चित्रात्मकता से सम्बद्ध राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनंकर' की धारणा है:-

'प्रत्येक सुंदर कविता चित्रों का अलबम अथवा स्वयं एक पूर्ण चित्र होती है..... चित्र कविता का एकमात्र शाश्वत गुण है, जो उससे कभी नहीं छूटता। कविता और कुछ चाहे करे या न करे, किन्तु चित्रों की रचना वह अवश्य करती हैं और जिस कविता के भीतर बनने वाले चित्र जितने ही स्वच्छ यानी विभन्न इन्द्रियों से स्पष्ट अनुभूत होने के योग्य होते हैं, वह कविता उतनी ही सफल और सुंदर होती है'। -(चक्रवाल, पृ०-93)

आचार्य शास्त्री जी की काव्य-पंक्तियों में तो माने चित्र जीवंत हो उठे हैं। छाया का बहुरंगी चित्र भाव-प्रवाह में ऐसा घुला हुआ है मानों शब्द-चित्र में प्रकृति ने रंग बोल दिए हों।

'रूकने का अवकाश कि दाएँ-बाएँ
निरखे-परखे जब-जब उग आएँ छायाएँ
आम्र-बैर-सी स्वर्ण-ताम्र,
पिंगल बदली-सी दुपहर की
लाल-प्रवाल, बाल-सी
नीली- इन्दीवर-सी धानी औ' चम्पई, सुरमई,
चितकवरी, मटमैली, धुँधली' (उदय के पथ पर)

छायावादी कवयित्री महादेवी की चित्रयोजना, विश्वयोजना में भी कहीं अधिक आकर्षक है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे शब्दों में आकर्षक रंग भरे हुए हैं-

'गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
बिहँसती संध्या-भरी सुहाग,
दृगों से झरते स्वर्ण पराग'।-(सांध्यगीत)

लेकिन 'निराला' संध्या वर्णन में संध्या को युवती के रूप में मानवीकृत कर इतिश्री कर देते हैं उसमें रंगो का आधान नहीं करते-'दिवसावसान के समय,

आसमान से उतर रही है संध्या-सुंदरी चुपके से
धीरे! धीरे!! धीरे!!!..... ('संध्या-सुंदरी' कविता से)

यहाँ सब कुछ दृश्यमान है, शब्दों की कारीगरी से संध्या का शब्द-चित्र और विराम-चिह्नों के प्रयोग से एक गत्यात्मक बिम्ब योजना कितनी सार्थक और भावकारी है।

वस्तुत: काव्य चित्र और बिम्ब दोनों परस्पर पूरक है। काव्य-चित्र विम्ब दोनों परस्पर पूरक हैं। काव्य-चित्र बिम्ब योजना में ही विस्तार पाता है। काव्य में भाव चित्रण आलंकारिक विधानों द्वारा ही अपनी पूर्णता को प्राप्त होता है। बिना आलंकारिक विधाान के बिम्ब-विधान सफल नहीं हो

सके है। बिम्ब योजना में क्रियापद या विशेषणपद प्रमुख होते है। क्रियापदों में चाक्षुष बिम्ब के लिए दृश्यमूलक क्रियापदों की योजना होती है। पद-रचना में बिम्ब के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए श्री केदारनाथ सिंह ने लिखा है- संज्ञा, विशेषण और क्रिया। इनमें बिम्ब की स्थिति किस में होती हैं- यह विचारणीय है, सामान्यत: यह कहीं भी किसी भी रूप में हो सकता है। विशेष रूप से उसकी सत्ता विशेषण और क्रिया में ही मानी जाती है। कारण यह कि वाक्य के वैशिष्ट्य को जितनी विशेषण और क्रियाएँ व्यंजित करती हैं, उतना संज्ञा नहीं। संज्ञा पद तथ्य को एवं विशेषण तथा क्रियाएँ क्रमश: भावना तथा प्राकृतिक या मानवीय चेष्टा को व्यक्त करते हैं। क्रिया से बिम्ब की गत्यात्मकता स्फुट होती है और विशेषण से उसकी विलक्षणता तथा वैशिष्ट्य।' (कल्पना और छायावाद पृ०-28)

वस्तुत: बिम्ब योजना में विशेषण और क्रिया का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। छायावादी चतुष्ट्य में कवि 'पन्त' ने विशेषण और क्रिया का महत्वपूर्ण स्थान माना है। छायावादी चतुष्ट्य में कवि 'पन्त' ने विशेषण आश्रित बिम्वों का निर्माण अधिक किया है। उनके एक ही विशेषण सम्पूर्ण सन्दर्भ को अर्थ गर्भत्व में चमत्कृत कर देता है। जैसे:-

'दूर उन खेतों के उस पार
जहाँ तक गई 'जीवन झंकार'।

या

'स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान'

उक्त पंक्तियों में 'नील' शब्द दूर तक फैली नि:शब्दता को व्यंजित करने में समर्थ है तो 'स्तब्ध' शब्द पूनम की नीरव शांति को व्यंजित कर रहा है।

विशेषण आश्रित बिम्ब योजना आचार्यवार शास्त्री जी की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है।

'दौड़ती लाली कपोलो पर रहे अविराम,
एक दृग हो दिव्य गंगा एक यमुना श्याम
इन्द्रधनु चित्रित रहे गीले अधर पर नित्य
श्री-सदन अम्बुज वदन पर खेलता आदित्य
छूट रहा पीछे तिमिर-सा सधन श्यामल केश

रहे गीले आधार पर नित्य श्री-सदन अम्बुज बदन पर खेलते आदित्य छूट रहा पीछे तिमिर-सा सहान श्यामल केश और मुख-सम्मुख सुमुखि, आलोक का हो देश (**आत्मकला: कविता के प्रति**) इन पंक्तियों में 'दौड़ती लाली' दिव्य 'गीले' चित्रित तथा 'तिमिर-सा-श्यामल' आदि विशेषण शब्दों द्वारा चाक्षुष बिम्बों की योजना द्वारा 'भारतवर्ष' की भव्यता और आकर्षक व्यक्तित्व को चित्रांकित किया गया है। छायावादी चतुष्ट्य में महाकवि जयशंकर प्रसाद भारतवर्ष की गरिमा, महिमा एवं ऐश्वर्य को चित्रांकित करते हुए लिखते हैं-

'अरूण यह मधुमय देश हमारा जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।' यहाँ 'भारतवर्ष' को अरूण यह 'मधुमय' विशेष शब्दों द्वारा विश्व के आसमानी पूर्वी क्षितिज पर अरूणाभ स्वरूप वाला बताकर अपने राष्ट्र को शुचिता, सरलता एवं सहज दिव्यता से आवेष्टिय बताया है। छायावादी पौरूष के गायक कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने आध्यात्मिक अंतश्चेतना को उद्घाटित करने के लिए चाक्षुष बिम्बों का प्रयोग किया है। कवि 'निराला' लिखते हैं।

'आई भारती-रति कवि-कण्ठ में,
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट,
गया दिन, आई रात
गई रात, खुला दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास
वर्ष कितने ही हजार'.....(जागो फिर एक बार)

या

बता कहाँ अब वह वंशीवट?
कहाँ गये नटनागर श्याम?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट?
कहाँ आज वह वृन्दा धाम?.....(यमुना के प्रति)

उक्त पंक्तियों में महाप्राण 'निराला' ने आध्यात्मिक अंतश्चेतना को 'वंशीवट' 'नटनागर' जैसे विशेषण शब्दों द्वारा उद्घाटित किया है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री ने निम्नपंक्तियों में इसी आध्यात्मिक अन्तश्चेतना को विस्तार दिया है-

नील गगन से स्वर्ण किरण
उतरी हो गई कपूरी!
मन अछोर की ओर उड़ा।
है सिमट गई-सी दूरी!!..... (मदन-दहन)

इन पंक्तियों में कवि की लेखनी ने अरूपता को भी साकार रूप दे दिया है जो मानस विम्ब के द्वारा मन-प्राणों में समाहित हो जाता हैं। क्रियात्मक अभिव्यक्ति चाक्षुष बिम्ब के रूप में दृष्टि के समक्ष आकार ले लेता है। इन पंक्तियों के भाव ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो ब्रह्म रन्ध्र के आलोक लोक से आई कनक-किरणों की कपूरी गंध से मस्त मन अनन्त लोक की दिव्य यात्रा पर निकल चुका हो और अपने साध्य से साक्षात्कार में अब बिलम्ब नहीं है ऐसे स्थलों पर महादेवी की अन्तश्चेतना अपने अलौकिक प्रियतम की ओर जिज्ञासा भाव से भरकर अपनी भावना व्यक्त करती हैं-

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद, देख तारों के बुझते प्राण,

ना जाने क्या आ जाता याद?- पुनः वे उस अलौकिक सत्ता के प्रति अपना प्रणय-निवेदन प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से करती हुई कहती हैं-

'स्मित ले प्रभात आता नित,
दीपक दे संध्या जाती।
दिन ढलता सोना बरसा,
निशि मोती दे मुस्काती।'

छायावादी चतुष्ट्य में प्रकृति के उपादानों की जितनी संशलिष्ट बिम्ब योनजा बगैर रंगो और कूँची के कवि पन्त की पंक्तियों में द्रष्टव्य है उतनी अन्यत्र नहीं। जैसे:-'माँ के उर पर शिशु-सा, समीप सोया धारा में एक द्वीप उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप।..... (नौका बिहार) उपमा अलंकार द्वारा द्वीप का मानवीकरण शिशु के रूप में कितना सहज, स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है। पन्त जो ने मूर्ति-विधायिनी कल्पना-शक्ति के द्वारा विविध प्रकार के अनूठे और सजीव बिम्बो की सृष्टि की है। इसमें वस्तु और भाव का शब्द-चित्र मूर्तिमान हो उठा है।

पंत जी ने अपने काव्या में गति एवं क्रिया संबंधी शब्द-चित्र अंकत किए है। 'नौका विहार' कविता की इन पंक्तियों में क्रियापद की योजना द्वारा गत्यात्मक बिम्ब का विधान हुआ है। जहाँ संज्ञा और विशेषण स्थित्यात्मक बिम्व का विधान काव्य पंक्तियों में करते हैं वहीं क्रियापद द्वारा गत्यात्मक चाक्षुष बिम्व का आधान किया जाता है। निम्न उदाहरण में नौका के मंद-मंद मंथर गति से जल-धारा में तिरते नाव का सजीव चित्र-सा उपस्थित हो गया है-लो पालें चढ़ी, उठा लंगर! मृदु-मंद-मंद मन्थर-मन्थर, लघु तरणि हंसिनी-सी सुंदर तीर रही, खोल पालों के पर!..... (नौका विहार)

गत्यात्मक चाक्षुष बिम्ब के अतिरिक्त पन्तजी के काव्य में 'नाद बिम्ब' का बड़ा अनूठा प्रयोग मिलता है जिसमें कविता की पंक्तियों में ध्वनि-सौन्दर्य उपस्थित हो गया है। जैसे:-

'बज रहा ढोल धा धिन, धा तिन,
औ हुडुक घुड़कता ढिम-ढिम-ढिम,
मंजीर खनकते, खनकते खिन-खिन-खिन,
मदमस्त, रजक, होली का दिन,
लो छन-छन, छन-छन, छन-छन-छन,
छन-छन छन-छन
थिरक गुजरिया हरती मन।'

ऐसा ही नाद, सौन्दर्य छायावादी चतुष्ट्य में 'निराला' की कविताओं में ऐसा ही नाद सौंदर्य का विधान किया गया है:-

'घेर घेर घेर गगन,
धाराधर ओ!

छायावादी कवियों में महादेवी के बिम्ब-विधान पर मूर्तिकला एवं चित्रकला का विशेष प्रभाव है इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है-'व्यक्तिगत रूप से मूर्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योंकि उसमें कलाकर के अन्तर्गत का वैभव ही नहीं, बाध्य आभास भी अपेक्षित रहता है।,.....कुछ अजन्ता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नही बता सकती, पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।'' (दीपशिखा-पृ०-22)

महोदवी की शब्द-चित्र योजना असीम ईश्वर की उस विराट व्यवस्था को चिरंतन सत्य के रूप में नित्य बनते और मिटते देखती है। वह असीम सत्ता सम्पूर्ण विश्व को अद्‌भूत चित्रकारी से अपनी उपस्थिति का आभास करवाता है। वे लिखती हैं-

'कनक से दिन, मोती-सी रात
सुनहली शाम, गुलाबी प्रात,
मिटाता रचता बारंबार
कौन जग का वह चित्रधार?
'कनक से मोती-सी: सुनहली और 'गुलाबी'

विशेषण शब्दों द्वारा कवयित्री ने जो चित्र तैयार किया है वह रंगो के साथ प्रकृति की शाश्वत व्यवस्था को भी रूपायित करता है। इन पंक्तियों से कवयित्री के वर्ण परिज्ञान का भी पता चलता है। रंगो के महत्व और उसकी सार्थकता पर अँग्रेज समीक्षक वाल्टर सार्जेंट ने लिखा है-

"Party because of its direct emotional effect upon us and party because its associations with various experiences, each colour has acquired a symbolism or mystic significance. Therefore its proper symbolic use in ancient art became an important matter. Usually each colour had a wide range of significance, and frequently for everything good which it symbolized it had a corresponding sinister meaning" (Walter Sargent: The enjoyment and use of colour charies scriner's sons, Newyark, 1923, page-50.

छायावादी कवियों में पन्त और प्रसाद के लिए लाल रंग, निराला के लिए नीला रंग और महादेवी के लिए सफेद रंग उनके व्यक्तित्व का वाचक बन गया है। लाल रंग से अनुराग को, नीले रंग से सात्विक शांति की और सफेद से स्वच्छता की अभिव्यक्ति होती है।

आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री जी भी इन छायावादी कवियों की तरह अपनी कविताओं में रंगो के प्रयोग के हिमायती रहे हैं। निम्न पंक्तियों में शास्त्री जी ने रंगो के प्रयोग से आभ्यान्तर भक्ति भाव का एक भावमय चित्र उकेरा है:-

आँखे न उठीं तो झुकीं चरण-नख मणि पर
देखा सहस्रदल सद्य प्रफुल्ल धरणि पर!
उड़ता पराग मकरन्द-बिन्द हैं झरते, कुछ स्वर्ण वर्ण, कुछ केसर के स्वर भरते!
अंकाव असंभव रंग-तरंगों का था,
सुलगाव इन्द्रधनु-जड़े स्फुलिंगो का था,
इस ओर रंग, उस ओर रंग रंगो में-
कुंकुमी तड़ित कौंधी ज्यों जड़ अंगो में।
यह हरित और वह पीत-केतकी-गाभा,
फैली-सी बीचों बीच तरूण अरूणाभा!..... (प्रणय पर्व)

उपर्युक्त पंक्तियों में 'राधा की ध्यानावस्था का चित्रण है वह श्रीकृष्ण के नख-मणि पर ध्यान लगाए हुई हैं और देखती है हक इस लोकोत्तर मणि के मध्य भाग में बालायण की-सी रक्तिम आभा है, जिससे छिटकी रंग-बिरंगी झाँइयाँ उनके अन्तस्थल पर पड़कर चित्राकाश में फैल गई है। केन्द्रीय अरूणाभा के चारों ओर केतकी गाभ-सी हरित पीत की झाँइयाँ है और उसके बाद तो बस रंग-ही रंग दिखाई देते है। सभी ओर इन्द्रधनुषी चिंगारियाँ सुलग रही है और रंग-तरंगो से निकली कुकुमी बिजली जड़ी भू अंगो में कौंध गई है। श्री कृष्ण के चरण रूपी सहस्रदल में राधा पूर्णत: निमग्न हो रही है इन दोनों के मिलन से रंगों की कई छटाएँ एक साथ छिटक रही हैं। यहाँ चित्रपक्ष गौण हो गया है और रंगो की आभा अधिक मुखर हो रही है।

आचार्य जानकी वल्लभ और छायावादी कवियो की चित्रोपम वर्णन-शैली पर विचार करें तो ऐसा आभास होता है कि शास्त्री जी में किसी एक रंग विशेष के प्रति कोई आकर्षण नहीं था बल्कि प्रकृति की व्यापकता में इन्होंने एक साथ सभी रंगों को समान नजरों से देखा है।

छायावादी चतुष्ट्य में महाकवि जयशंकर प्रसाद और रहस्यवादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने एकल बिमबों की सृष्टि अपने गीतों में की है। महोदवी के गीत माप संक्षेप्य और 'रसांग भूत व्यापार प्रवणता' के कारण अत्यंत्र उत्कृष्ट बन सके है, जिनमें एक से अधिक बिम्ब-विधान के लिए प्रयोग नही किया गया है-

'जीवन विरह का जलजात!
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म करूणा में मिला आवास
खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात,
जीवन विरह का जलजात!'

इन पंक्तियों के केवल 'जलजात' का एकल बिम्ब प्रस्तुत है, जिसके चारों ओर एक अप्रस्तुत सारी छवियाँ मँडराती दिख पड़ती हैं। ऐसे गीतों में भावों का स्पन्दन एकल बिम्ब से और भी निखर जाता है। अँग्रेजी साहित्यकार विलियम ब्लेक के इस गीत में इसी केन्द्रित बिम्बों का विधान किया गया है -

'ओ रोज दाउ आई सिक:
द इन्विजिव्ल बर्म
दैट प्लाइज इन द नाइट
इन द हाउलिंग स्टॉर्म
हैज फाउण्ड आउट दाय बेड
ऑव क्रिम्सन ज्वॉय
एण्ड हिज डार्क सिकेट लव
इज द लाइफ डेस्ट्रॉय।.....(द सिकरोज)

सुहृदय भावुक कवि ने अपने भावों की प्रस्तुति गुलाब के एक चित्र से व्यक्त की गया है। वस्तुत: एक गीत के एक ही चित्र बिम्ब का प्रयोग नटकुण्डली में समाने की मंत्र सिद्ध प्रक्रिया है।

ऐसी विशेषताएँ आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री में नहीं मिलती है। शास्त्री जी के गीत, संगीत और चित्र समस्तरीय होकर इतने घुल-मिल जाते हैं कि दोनों को न तो अलग किया जा सकता है और न यह कहा जा सकता है कि कौन किससे आगे है। 'वासंती' काव्य-पुस्तक की ये पंक्तियाँ-

यह अरूणाई वन-वैभव की,
तरूणाई कलरव की,
यह किसलय-तूलिका उतारेगी
छवि किस नव भव की!!
केसर केश अभी उलझा
सुलझती मलय-बयार!
फाग-राग सुन-सुन गुमसुम
मदमाती मलय-बयार!

इस प्रसंग में यह कहना कितना कठिन हो जाता है कि वन-वैभव की अरूणाई किसलय-तूलिका से उतरनेवाली 'नव भव' की अनजान छवि और मदमस्त मलय-बयार में उलझते सुलझते 'केसर-केश के चित्र रंग-रेखाएँ अधिक मुखर है या 'कलख की तरूणाई' और 'फाग-राग' के मादक स्वर अधिक स्फुट है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि छायावादी चतुष्ट्य में जहाँ श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री जयशंकर प्रसाद तथा महोदवी वर्मा में काव्यात्मक बिम्बयोजना चाक्षुष, श्रव्य एवं स्पर्शिक तीनों रूपों में काव्यसौष्ठव की श्री वृद्धि कर रहे है वहाँ आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री में यह तीनों काव्य-बिम्ब भिन्न-भिन्न प्रसंगो अपनी उपादेयता सिद्ध करते हैं।

डॉ. आशुतोष मिश्र, ज्ञान निकेतन गर्ल्स स्कूल, दीघा, पटना
वीर कुँवर सिंह चौक, केसरी नगर, पटना-800024, मो. : 9931824865

क्या उत्तरकाण्ड रामचरितमानस में प्रक्षिप्तांश है?

कमलेश कमल

उत्तरकाण्ड में जो विषय हैं, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं- भरत विरह, राम जी का स्वागत, राज्याभिषेक, रामराज्य का वर्णन, पुत्रोत्पत्ति, श्रीराम जी का प्रजा को उपदेश, शिव-पार्वती संवाद, गरुड जी के सात प्रश्न तथा काक भुशुण्डि जी के उत्तर। ये वे प्रसंग हैं जो कि रामचरितमानस की प्रासंगिकता को सर्वयुगीन बनाते हैं। जिस रामराज्य की हम कल्पना आज भी करते हैं, वह उत्तरकाण्ड में ही है। इसके बिना रामचरितमानस का मन्तव्य ही अधूरा रह जाता है। ऐसे में यह असम्भव प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी से यह सब छूट गया जिसे किसी महान् पर अनाम कवि ने चुपके से जोड़ दिया, वह भी उनके लिखने के तुरंत बाद।

"शील-शक्ति-मर्यादा के प्रकृष्टतम प्रमाण हैं राम।

ऐसे ही नहीं घर-घर पूजे जाते हैं प्रभु राम।।"

श्रीरामचरितमानस केवल एक महाकाव्यात्मक ग्रंथ ही नहीं है जिसके साथ धार्मिक आस्था सन्नद्ध है वरन् यह तो मनुष्य जाति के आत्यन्तिक शुभ की सम्यक् परिकल्पना है।

युग-युगांतर के लिए मनुष्य की स्मृति में अत्युत्तम आदर्श का प्रकाशस्तंभ हैं राम। चारित्रिक औदात्य, पूर्ण-चेतना, आलोचनात्मक विवेक एवं दार्शनिक मूल्यानुभूति के पूर्ण-परिपाक हैं श्रीराम।

मानस का सातवाँ काण्ड, उत्तरकाण्ड तुलसी की सर्जनात्मक कल्पना का वैभव का-स्वर है। यह असाधारण अर्थ-गांभीर्य से युक्त है एवं लोकमंगल विधायिनी चेतना का ऊर्जस्वित् स्वर है।

यह विडम्बना ही है कि कतिपय विद्वान् इसे प्रक्षिप्तांश बता रहे हैं। यद्यपि तर्क के धरातल पर ऐसी निष्पत्ति निर्मूल ही प्रतीत होती है, प्रत्युत तथ्यात्मक और तर्कपरक निकष पर इसे कसने से पूर्व समीचीन होगा कि अभिव्यक्ति के अर्क रूप में श्रीरामचरितमानस एवं उत्तरकाण्ड के संज्ञा-वैशिष्ट्य को देखें!

रामचरितमानस है - राम के चरित को हर मानस में उद्भासित-अवस्थित करने का मानवता के इतिहास का सर्वोत्तम प्रयास! उत्तरकाण्ड है - राम के चरित स्थापन के

आलोक में समवर्ती-सह-परवर्ती कालीन अवस्था की उच्छ्वासित अभिव्यक्ति एवं समष्टिगत चेतना का अनुस्यूत स्वर।

अब बिंदुवार रीति से देखते हैं कि कैसे उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त नहीं है -

1. धयातव्य है कि रामचरितमानस 'श्रुति परम्परा' की कृति नहीं है। यह तो निर्विवाद है कि 16वीं सदी इस महान् ग्रंथ का रचनाकाल है। इसमें उत्तरकाण्ड के माध्यम से तुलसीदास ने राजनीतिक-पारिवारिक-सामाजिक-आध्यात्मिक जीवन के उच्च आदर्शों को प्रस्तुत कर विशृंखलित हिन्दू समाज को सूत्रबद्ध करने का महनीय प्रयास किया है। ऐसे में उस समय या उसके बाद की कोई विभूति इस महान् ग्रंथ में इसे जोड़ दे और उसकी कोई चर्चा, कोई नामोल्लेख कहीं न मिले- यह बात गले नहीं उतरती। उस समय के अनेकानेक विद्वानों की चर्चा लिखित में है, ऐसे में यह प्रक्षिप्तकार अनाम कैसे रह गया?

2. कहते हैं कि श्रीरामचरितमानस के एक दोहे या एक चौपाई की बराबरी कर लेना अगर असंभव नहीं तो अतिकठिन अवश्य है। ऐसे में इतनी चौपाई और इतने दोहे किसी और ने अज्ञात रहकर कैसे जोड़ दिया? पूर्वकालीन युग में यह संभव था, जबकि लेखन-परंपरा नहीं थी, लेकिन तुलसीदास के युग तक आते-आते परिस्थितियाँ बदल गई थीं।

3. उत्तरकाण्ड में जो विषय हैं, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं- भरत विरह, राम जी का स्वागत, राज्याभिषेक, रामराज्य का वर्णन, पुत्रोत्पत्ति, श्रीराम जी का प्रजा को उपदेश, शिव-पार्वती संवाद, गरुड जी के सात प्रश्न तथा काक भुशुण्डि जी के उत्तर। ये वे प्रसंग हैं जो कि रामचरितमानस की प्रासंगिकता को सर्वयुगीन बनाते हैं। जिस रामराज्य की हम कल्पना आज भी करते हैं, वह उत्तरकाण्ड में ही है। इसके बिना रामचरितमानस का मन्तव्य ही अधूरा रह जाता है। ऐसे में यह असम्भव प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी से यह सब छूट गया जिसे किसी महान् पर अनाम कवि ने चुपके से जोड़ दिया, वह भी उनके लिखने के तुरंत बाद।

4. उत्तरकाण्ड को पढ़ते समय प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती, काव्यात्मक औदात्य वही है, संवेदनात्मक अन्वेषण वही है, सब मौलिक है। सबसे बड़ी बात कि अभिव्यक्ति का कोई दुहराव नहीं है।

   हर दोहे, हर चौपाई में सरस्वती-तत्त्व है। विचारणीय है कि रचनाकार के बदल जाने से यह युति कदापि नहीं बनती, कोई-न-कोई कमी रह ही जाती। कुछ-न-कुछ फाँक रह ही जाता। मानस के सुधी अध्येता यह जानते और मानते हैं कि उत्तरकाण्ड में भी सबकुछ उतना ही समृद्ध, उतना ही श्रेष्ठ है, पूर्ववर्ती काण्डों से यह इनमें से किसी स्तर पर यह कमतर नहीं है।

5. वस्तुतः उत्तरकाण्ड में आकर तुलसी ने परम्परित युगधर्म को नवीन वैज्ञानिक संदर्भ एवं दर्शन दे दिया है।

   कलिवर्णन को देखें, तो यह बात स्फटिक की तरह स्पष्ट होती है। उस समय जो उन्होंने गर्हित सामाजिक मूल्यों का फैलाव देखा, उस पर उन्होंने लिखा और खूब लिखा। वे प्रतिपादित करते

हैं कि सभी कालखण्डों में चारों युगों के तत्त्व विद्यमान रहे हैं। किसी भी युग का सत्त्विक पुरुष सतयुग का है और कुत्सित व्यक्ति कलि का–

"सुद्ध तत्त्व समता विग्याना।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन माना।।
सत्त्व बहुत रज कछु रति कर्मा ।
सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।
बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तमसा।
द्वापर धर्म हरष भय मनसा।।
तामस बहुत रजोगुण थोरा।
कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ।।"

6. हम यहाँ देखते हैं कि यह कलिवर्णन मिथकीय या ऐतिहासिक कम है, वर्तमान कालिक अधिक है।

कहना चाहिए कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक घटनाओं और युगीन संस्कृतियों की जीवंत कथा है। यह तो तुलसीदास जी का वैचारिक गौरीशंकर है कि उन्होंने कराल कलिकाल के बारे में पहले ही लिख दिया। भूत और वर्तमान तो कोई भी लिख सकता है, जो भविष्य लिख दे, वही महान् ।

7. उत्तरकाण्ड में लेखकीय चिंतन का परिपाक किसी भी पूर्ववर्ती काण्ड से कम नहीं है। देखिए जब इसमें मनुष्य जीवन की गरिमा का सम्यक् महत्त्व बताया जाता है–

"बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथहिं गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न तेहिं परलोक सुधारा।।"

इसी को गरुड -भुशुण्डि संवाद से और अधिक स्पष्ट किया। गरुड जी प्रश्न करते हैं–

"प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा।
सबसे दुर्लभ कौन सरीरा।।"

अब भुशुण्डि जी कहते हैं–

"नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत सेही।।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।
ज्ञान विराग भगति सुख दैनी।।"

8. आगे लेखकीय दृष्टि देखिए कि इसमें न केवल मानव तन की महिमा का स्थापन हुआ है, अपितु इसके दु:ख सुख एवं कारणों का समीचीन मूल्यांकन हुआ है–

"नहिं दरिद्र सम दुःख जग माँही।
संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।"

अब इसी कड़ी में संत और असंत के लक्षण का निरूपण देखिए-

"संत सहहिं दुःख पर हित लागी।
पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूर्ज तरु सम संत कृपाला।
पर हित नित सह बिपति बिसाला।।
सन इव खल पर बंधन करई।
खल कढ़ाई बिपत्ति सहि मरई ।।"

इन चौपाइयों के आलोक में प्रश्न उठता है कि क्या मानस की किसी भी चौपाई से इसका भाव अथवा शिल्प सौष्ठव कमतर है? नहीं, कदापि नहीं!

9. कोई लेखक किसी कृति में युग धर्म का निर्वहन न करे, यह कम ही होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वस्तुतः इस काण्ड में वर्ण्य-विषय को युगबोध से जोड़ इसे विस्तृति दी है, उदाहरण के लिए इसी काण्ड में कलियुग का हाल देखिए-

"कलिमल ग्रसे ग्रंथ सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।।
भये लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ ग्रंथ।
सुन हरिजान ज्ञाननिधि कहौं कछुक कलि धर्म।।"

10. निश्चय ही तुलसीदास का उद्देश्य कलि की कुचालि को दूर करने हेतु श्रीराम के विशद यश का प्रभावोत्पादक वर्णन करना है। इसमें राम कोरे आदर्शवादी नहीं हैं, विलुब्ध व्यवहारवादी भी नहीं हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, उद्धारक रूप में हैं। यह राम उनके पूर्ववर्ती राम से भिन्न है। पूर्व में जिस राम को समन्वय के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में वर्णित किया - चौदह वर्षों तक वनवास, दलित-शोषित-वंचित के साथ खड़ा दिखाया, शबरी के जूठे बेर खाता दिखाया, वृद्ध पक्षी जटायु को पिता तुल्य दिखाया, वानरों से प्रेम करते दिखाया, इस काण्ड में आकर उन्हें प्रजापालक और कुशल प्रशासक के रूप में दिखाया। अगर इसे ही छोड़ देते, तो मानस के लोकग्रन्थ बनने का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता।

11. भाव वैविधय हो या शैली वैविधय-सब पूरे मानस की भाँति उत्तरकाण्ड में भी विद्यमान् हैं।

शैली-वैविधय को देखें, तो चरित्र-चित्रण, प्रबंध सौष्ठव, अलंकार-विधान, प्रकृति-वर्णन, दार्शनिकता, लाक्षणिकता, अवधी-ब्रज का प्रयोग, प्रसंगानुकूल संस्कृत का प्रयोग, अभिधा-लक्षण-व्यंजना का प्रयोग, सब कुछ उसी तरह चला है जैसे पूर्व के काण्डों में। अगर शैली में कुछ भिन्नता है भी तो सुंदरकाण्ड से कम! तो इसे प्रक्षिप्त मानने से पहले सुन्दरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा।

12. कोई भी रचना पूर्णत: निर्दोष नहीं होती, सर्वोत्तम रूप में भी कुछ-न-कुछ दोष रह ही जाता है।

    अगर किसी बिंदु पर उत्तरकाण्ड में कुछ कमी निकाली जा सकती है, तब हर काण्ड में निकाली जा सकती है। इससे बचने के लिए क्या कोई यह तर्क दे देगा कि मानस जो आज है वह तुलसीदास की मूलप्रति है ही नहीं-जो कमी है, किसी और ने प्रक्षिप्त कर दी है।

13. वस्तुत: उत्तरकाण्ड ने श्रीराम के चरित्र को महत्तम ऊँचाई दी है। इसने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के दिव्य उदात्त चरित्र की शाश्वत प्रतिष्ठा करते हुए उन्हें महत्तम मानवीय त्याग, अनुपम प्रजारंजन, प्रबल और प्रखर उद्धारक, भक्त वत्सल, दीन हितकारी के साथ ईश्वरत्व की गरिमा से पूर्ण आराधय रूप में प्रतिस्थापित किया। यही इसे चरित काव्य की दृष्टि से अत्युत्तम बनाता है तो यह प्रक्षिप्त कैसे हो सकता है? यह तो तुलसी के महनीय योगदान को कम कर आँकना होगा।

14. साहित्य मूल्यानूभूति की प्रक्रिया है और आलोचनात्मक विवेक इसकी व्यंजना को क्षिप्रता देता है। इस निकष पर युगीन मूल्यों की विस्तृत पड़ताल उत्तरकाण्ड में है जो इसे महान् बनाता है। राजा कैसा हो, संत कैसे हों यह सब यहीं मिलता है। 'पंडित सोई जो गाल बाजवा' जैसे चुटीले उधदरण हों, ज्ञान का संधान हो, या फिर सूक्तिपरकता की छटा और उद्धरणीयता की मोहक शैली - उत्तरकाण्ड में सब वैसा ही है जैसे अन्य काण्डों में।

15. आर्ष परंपरा में महानायकीय अथवा दैवीय चारित्र्य हेतु 14 गुण बताए गए हैं- सत्य, धर्म, प्रतिभा, कृतज्ञता, उदारता, चारित्र्य, अनसूया, सात्त्विक क्रोध, आत्मसम्मान, सर्वभूतहित, नीति अनुसरण, अक्रोध एवं वाग्मिता।

    अगर इस निकष पर भी देखें तो किसी भी अन्य काण्ड की तुलना में उत्तरकाण्ड में नरश्रेष्ठ श्रीराम के सर्वाधिक गुणों का प्राकट हुआ है। ऐसे में इसे प्रक्षिप्त कहना सर्वथा अनुचित है। हाँ यह संभव है कि कालक्रम में कुछ दोहे एवं प्रसंग जोड़ दिए गए हों। किन्तु सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मान लेना तर्क संगत नहीं लगता।

    उपर्युक्त बिंदुओं के आलोक में यह उद्‌भाषित होता है कि उत्तरकाण्ड श्रीरामचरितमानस का नवनीत है, इसकी मुकुट-मणि है। इसे प्रक्षिप्त कह देना कोई विवेकपूर्ण साहस नहीं, प्रत्युत इसकी गहराई से अपिरिचित हुए बिना विशुद्ध अटकलबाजी करना है।

कमलेश कमल, डिप्टी कमांडेंट, आईटीबीपी, जनपदय – पूर्णियाँ, राज्य – बिहार
मो. : 7051734688, 8989537649, ई–मेल : kamalkeekalam@gmail.com

✧ ✧ ✧

साहित्य और सत्ता : बनते-बिगड़ते रिश्ते

डॉ. अनिल कुमार सिंह

राजेंद्र यादव जी कहते हैं कि 'किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (1901) पर टेम्पेस्ट की छाप है, रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) और बंग महिला की 'दुलाईवाली' (1907) अपनी मौलिकता के बावजूद, कहानी होने की माँग पूरी नहीं करतीं। वे हिंदी की पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' को बताते हुए उससे ही आधुनिक कहानी का प्रारम्भ मानते हैं।

जब हम इस विषय पर बात कर रहे हैं तब हमें यह मानकर चलना चाहिए कि हम एक ऐसे विषय पर बात करने जा रहे हैं, जो दोनों एक-दूसरे के विरोधी रहे हैं। परन्तु एक अजीब बात यह रही है कि दोनों एक-दूसरे से दूर भी नहीं रह पाये। चाहे समर्थक के रूप में साथ रहे हों या विरोधी के रूप में, दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता पड़ी ही है, पर साहित्य का दुर्भाग्य यह रहा कि जब-जब यह सत्ता की समर्थक हुई है, एक-दो अपवादों को छोड़ दें तो इसने हमेशा नुकसान ही उठाया है और इसके विपरीत हम देखें तो पाते हैं कि साहित्य का समर्थन पाकर सत्ता हमेशा फली-फुली ही है चाहे वह राजतंत्र का दौर रहा है या लोक तंत्र का साहित्य और सत्ता की नूराकुश्ती चलती ही रही है और मुठभेड़ में जब-जब सत्ता मजबूत हुई है तब-तब उसने साहित्य को हासिए पर धकेला है। चूँकि सत्तायें अल्पकालिक होती हैं इसलिए वो कभी साहित्य को समाप्त नहीं कर पाईं और ऐसी विपरीत परिस्थितियों में साहित्य और भी मजबूत हो कर उभरा। अगर हम इस संघर्ष को हिन्दी साहित्य के संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि आदिकालीन साहित्य जो ज्यादातर सत्ता का समर्थन करती नजर आती है हम उसे 'चारण-काल' के तौर पर देखते हैं, और उसकी पूरी विश्वसनियता कोशक के घेरे में डाल देते हैं। वहीं हिन्दी साहित्य का मध्यकाल जिसे हमने हिन्दी का 'स्वर्ण-युग' माना, में साहित्य सीधे- सीधे सत्ता सेन सिर्फ टकराती है

बल्कि उसके सामने एक ऐसी चुनौती बनकर खड़ी होती है, जिसे 300 वर्षों तक किसी न किसी रूप में राज घरानों को टकराना ही पड़ता है। अब सवाल उठता है कि अगर साहित्य समाज का दर्पण है तो सत्ता से उसका विरोध हमें रुचिकर क्यों लगता है? जहाँ साहित्य ने सत्ता को चुनौती दी वहीं हम साहित्य के समर्थन में आन खड़े होते हैं जबकि सामान्य जन का फायदा हमेशा सत्ता के साथ खड़े होने में होता है।

इसका कारण ढूँढते हुए हम पाते है कि जहाँ साहित्य हमारे संवेदना से जुड़कर हमें अपना समर्थक बनाने में कामयाब होती है। वहीं सत्ता को संवेदना से ज्यादा सरोकार नहीं होता। सत्ताधारी किसी भी कीमत पर अपनी सत्ता को बनाये रखने की जुगत करता है। इसके लिए उसे किसी की संवेदना को कुचल कर भी सत्ता बचाने में मदद मिली है तो भी वह उससे परहेज नहीं करता है। सत्ता का चरित्र रावण जैसा है तो साहित्य का सीता जैसा है। जिसमें ताकतवर उस पर बलात कब्जा करना चाहता है तो दूसरा शक्तिहीन होने के बावजूद उसके समक्ष समर्पण करने को तैयार नहीं। वह मरने को तैयार है पर झुकना उसे मंजूर नहीं। मजे की बात यह है कि साहित्य और सत्ता की लड़ाई का हश्र भी वही होता है जो सीता-रावण की लड़ाई में रावण का हुआ था, कहने का आशय यह है कि फैसला वही होना है मामला सिर्फ अन्तराल का है। अगर हम हिन्दी साहित्य का सरसरी तौर से सिहावलोक न करें तो बहुत ही अजीब परिणाम हमारे सामने आते हैं। हिन्दी साहित्य का प्रथम ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में कवि राजसत्ता के साथ खड़ा नजर आता है और उसे यह विश्वास है कि राजा सत्य की लड़ाई लड़ रहा है तो कवि उसकी भूरी-भूरि प्रशंसा करने में जरा भी संकोच नहीं करता है-

अब बात करते हैं भक्तिकाल यानि हिन्दी के 'स्वर्ण-युग' की। इस काल के दोनों धाराओं के चारों शाखाओं के प्रमुख कवियों ने अपने-अपने दौर के राजाओं के विपक्ष में ही अपनी लेखनी चलाई किसी ने मुखरता से तो किसी ने सौम्यता से। इन कवियों का यही विपक्ष पूरे भक्तिकाल को 'स्वर्ण-युग' की पदवी प्रदान करने में सहायक साबित हुई। भक्तिकाल ने न सिर्फ लौकिक सत्ता का विरोध किया बल्कि उसने शास्त्र और आध्यात्म की सत्ता को उसी कलेवर में चुनौती दी।

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तिस॥
उटिठ राज प्रिथिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।

यहाँ साहित्य और सत्ता एक-दूसरे के समानांतर चलते हैं कहीं कोई बैर नजर नहीं आता। पर माना जाता है 'सत्ता-नायक' के बदलते ही समाज की प्रवृत्ति भी बदलने लगती है। आदिकालीन

साहित्य के साथ भी ऐसा ही हुआ। जब राजाओं ने सत्ता का इस्तेमाल जनता को सताने और अपने भोग-विलास को बढ़ाने के लिए करना प्रारम्भ कर दिया तब साहित्य धीरे- धीरे अपने मूल-चरित्र में वापस आने लगा उसके लिए अब सत्ता का समर्थक होना दम घोंटू प्रतीत होने लगा। वह राजाओं की अय्याशियों को खुली आँखो से देख कर चुप रह पाना उसके लिए अब संभव नहीं रह गया और फिर उसने राजा के चरित्र को सरेआम दिखाना प्रारम्भ कर दिया।

जाकि बिटिया सुन्दर देखी, तो घर जाए रख दीनी तलवार और साथ ही साथ उसने जनता को चेतावनी भी देना प्रारम्भ किया कि राजा नेतलवार सिर्फ तुम्हारी रक्षा के लिए नहीं उठा रखी वह इस तलवार की जोर पर तुम्हारी बहु-बेटियों का शिकार भी कर सकता है और फिर तलवार का एक ही धर्म होता है किसी भी कीमत पर अपने वर्चस्व को कायम रखना।

वैसे तो आदिकालीन साहित्य राजा के संरक्षण में पला-बढ़ा, परन्तु उसने राजा का समर्थन या महिमामंड न उसी सीमा तक किया जब कि उसको यह विश्वास रहा कि राजा सही मायनों में धर्म का संरक्षक है, जैसे ही उसको इस बात का भान होने लगा कि राजा सत्ता का इस्तेमाल धर्म की रक्षा के बजाय भोग-विलास के लिए करने लगा है तो उसने ऐसी प्रवृत्ति के विरुद्ध कलम उठाई और राजा का विरोध भी किया। धिग-धिग! ए एय संसार, धिग-धिग! राणिम राज रिद्धि एवडु ए जीव संहार, कीघउ गुण विरोधवसि।

अब बात करते हैं भक्तिकाल यानि हिन्दी के 'स्वर्ण-युग' की। इस काल के दोनों धाराओं के चारों शाखाओं के प्रमुख कवियों ने अपने-अपने दौर के राजाओं के विपक्ष में ही अपनी लेखनी चलाई किसी ने मुखरता से तो किसी ने सौम्यता से। इन कवियों का यही विपक्ष पूरे भक्तिकाल को 'स्वर्ण-युग' की पदवी प्रदान करने में सहायक साबित हुई। भक्तिकाल ने न सिर्फ लौकिक सत्ता का विरोध किया बल्कि उसने शास्त्र और आध्यात्म की सत्ता को उसी कलेवर में चुनौती दी। चूँ कि पूरे मध्यकाल में धर्म और शास्त्र ही सत्ता के केन्द्र में था इसलिए कोई भी शासक उसके दायरे से बाहर निकलने का साहस नहीं जुटा पाता था, इसलिए धर्म का प्रभाव हमेशा लौकिक सत्ता हावी दिखाई देता है और संत-कवियों ने इस मर्म को समझ लिया था इसलिए उन्होंने सत्ता को दोनों केन्द्रों पर एक-सा प्रहार किया, जिसका कुछ रूप उन्हें नाथ-सिद्ध पंथक संतों से विरासत में भी मिली थी। पांडे तुम्हारी गायत्री लोघे का खेत खाती थी। लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत लंगत आती थी। पांडे तुम्हारा महादेव धौल बलद चढ़ा आवत देखा था। पांडे तुम्हारा रामचंद सो भी आवत देखा था रावन सेंती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी। हिन्दू अंधा तुरुकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी समाना हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद। नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीद।

संत नामदेव द्वारा रचित यह पद सीधे-सीधे आध्यात्मिक सत्ता को चुनौती देता है चाहे वह सत्ता हिन्दू की हो या मुसलमान की। और ऐसी ही विरासत के साथ प्रकट होते हैं कबीर और उन्होंने दोनों ही समुदायों के आध्यात्मिक और लौकिक दोनों ही सत्ताओं की चूले हिला दी। पंडित

मिथ्या करहु विचारा। ना वह सृष्टि, न सिरजनहारा। जोति सरूप काल नहिं उहँवाँ, बचन न आहि सरीरा थूल अथूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा। दिन भर रोजा रहत है राति हनत हैं गाय यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय। कबीर ने कभी किसी सत्ता की परवाह नहीं की जोगलत लगा उसका जोरदार तरीके से विरोध किया और कभी उसके परिणाम की परवाह नहीं की। उन्होंने जन्म से मृत्यु पर्यन्त सभी प्रकार के कर्म काण्डों को निशाने पर लिया और यही कारण रहा कि सामान्य-जन का अपार समर्थन उनके साथ रहा। समाज केठेकेदारों ने कबीर का जितना विरोध किया कबीर का स्वर उतना ही मुखर होता गया।

निर्गुण धारा के प्रेम मार्गी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत में खिलजी के नायकत्व को नहीं स्वीकारा है बल्कि उसे चुनौती और चेतावनी देते ही नजर आते हैं। और उसे यह अहसास कराते हैं कि सत्ता से सब कुछ पाया जा सकता है परन्तु प्रेम नहीं। प्रेम की चाहे वह प्रेम किसी स्त्री का हो या सामान्य-जन का, तलवार की धार दोनों के आगे भोथरी ही साबित हो जाती है। खिलजी इस मर्म को नहीं समझ पाता और तलवार की जोर पर जब पद्यमिनी को पाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देता है तब भी उसे सिर्फ पद्यमिनी की राख ही मिलती है - धार उठाइ लीन्ह एक मूँठी। दीन्हीं उड़ाइ पिथिथमी झुठी। जौ लागि ऊपर छार न परई। तब जगिन नाहिं जो तिस्ना मरई। जायसी ने जिस बेबाकी और निडरता सेखिलजी की सत्ता को चुनौती दी यह निश्चित तौर पर काबिले- तारीफ है और यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि सत्ता कितनी भी ताकतवर या अत्याचारी क्यों न हो साहित्य को अपनी बात कहने सेरोक नहीं सकती।

मध्ययुग के कवियों ने तुलसी का यूटोपियन प्रतिरोध सबसे आकर्षक एवं लोक प्रिय है। राम कृषि-सभ्यता को केन्द्र में रखकर रची गई जीवन और समाज की आचार-संहिता एवं नैतिक मूल्यों के महानायक हैं। तुलसी ने राम द्वारा एकल दाम्पत्य की मर्यादा का पालन करवा कर तत्कालीन समाज में प्रचलित बहु विवाह प्रथा को चुनौती दी है। आज भलेहम तुलसी को ब्राह्मणवादी खेमेका प्रचारक घोषित कर रहे हैं, परन्तु तुलसी ने तत्कालीन समाज की बुराईयों को मिटाने के उद्देश्य से 'रामचरितमानस' के रूप में एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की जोकि आज तक समाज में 'रुल-बुक' की तरह रास्ता दिखा रही है। यह पुस्तक अपने-आप में शास्त्रिय परम्पराओं का सीधे- सीधे विरोध करती है। पहले तो भाषाई स्तर पर, जहाँ संस्कृत का विरोध कर लोक भाषा को स्थापित करती है, वहीं राम के नायकत्व में ऐसी मर्यादाओं का संचार करती है जिससे तुलसी कर्म कांडी ब्राह्मणों के निशाने पर भी आ जाते हैं। पर उन्होंने अपने विरोध के स्वर को कभी दबने नहीं दिया इन्होंने भी लोक और शास्त्र दोनों की सत्ताओं को चुनौती दी- खेती न किसान को भिखारी को न भीख, बलि वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी। उन्होंने तत्कालीन राजा को चोर और लुटेरा भी कहा -

गोड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

इसका परिणाम यह हुआ कि शास्त्र और लोक दोनों ही सत्ता में एक साथ तुलसी पर हमलावर हो गये लेकिन तुलसी ने कभी उनकी परवाह नहीं कि उनके जाति-धर्म आदि के बारे में तरह-तरह की बातें कही गई ताकि उनको कुमार्गी घोषित कर दिया जाये और उनकी बातों का समाज पर असर कम हो जाये पर इन सबसे बेपरवाह तुलसी निरन्तर अपनी रचनाकर्म मेंरत रहे।

धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहो कोऊ।
काहूकी बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलामु है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि के खैबो, मसीत में सोइबो, लैबोको एकु न दैबेको दोऊ॥
मेरी जाति-पाँति न चहौ काहूकी जाति-पाँति
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूको कामको।
लोकु-परलोकु रघुनाथ ही के हाथ सब
भारी है भरोसो तुलसी के एक नामको॥

विरोध का यह खेल दोनों ओर से चलता रहा पर अन्तर नहीं कि यहाँ साहित्य के पक्ष से तुलसी अकेले लड़ते रहे और सत्ता पक्ष ने शासन और शास्त्र को अपने पक्ष में कर रखा था, परन्तु देर से ही सही विजयी साहित्य ही रही। कृष्ण भक्ति धारा के अदना से समझे जाने वाले संत कवि कुम्भनदास ने सीधे-सीधे शब्दों में सबसे ताकतवर साम्राज्य कोचुनौती देकर सबको चौका दिया।

संतन को कहा सीकरी सों काम?
आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।
कुमंनदास लाल गिरिधन बिनु और सबै बेकाम॥

एक साधारण सा दीखने वाला संत -कवि इतनी मुखरता से चुनौती दे रहा है तो स्वाभाविक है इससे आम-आदमी की पूरी संवेद ना उसके साथ जुड़ जाती है।

मीरा ने भी अपने काव्यों में तत्कालीन शासन का पूरजोर विरोध किया। उन्होंने शासन की हर चुनौती को स्वीकारा और जान और सम्मान की परवाह न करते हुए हमेशा सत्ता के विपक्ष में खड़ी रही। मीरा की रचनाएँ और जीवन हमेशा सत्ता की मुखर विरोधी रहीं। उन्होंने कभी अपने जीवन की परवाह कर सत्ता के सामने झुकना स्वीकार नहीं किया।

पूरे तीन सौ वर्षों तक सत्ता के समझ चुनौती के रूप खड़ा रहने वाला भक्तिकाल रीतिकाल तक आते-आते सत्ता से परास्त हो जाती है और उसे सत्ता के समक्ष नतमस्तक होना

पड़ता है और वह ऐसे नतमस्तक होती है कि उसने सत्ता को खुश करने और उसमें बने रहने के लिए सारी मर्यादाओं को तोड़ डाला। मनुष्य तो मनुष्य उसने ईश्वर तक को भी नहीं छोड़ा। पूरा रीतिकालीन साहित्य भूषण, छत्रसाल गुरु गोविन्द सिंह जैसे कुछ कवियों की रचनाओं को छोड़कर, सत्ता-संदर्भ से निर्धारित साहित्य है। अपने अधिकांश में यह सत्ता पारिवारिक चिन्ताओं का भी साहित्य नहीं है। जिस राम को तुलसीदास ने मर्यादाओं का पूंज बताया, उसे भी रीतिकाल ने छलिया बनाकर रख दिया।

रस रंगन धूम मचाये रसिया।
तेरे रे अवध में सरयू बहति हैं, उमगि उमगि सब आई नदिमा।
राम सरन धन धन पुरवासी, पिया प्यारी जहँ करै केलिया॥
''रामतत्व सिद्धान्त संग्रह''

भगवान कृष्ण से तो सारी सीमायें लंघवा दी और अपने आश्रयदाता राजाओं को ईश्वरत्व प्रदान करवा दी। सत्ता और साहित्य का ऐसा गठजोड़ हुआ कि सारी सामाजिक मर्यादायें और व्यवस्था तार-तार होकर रह गई और आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस घिनौने खेल में दोनों को मजा आने लगा। सत्ता के शासक बाहरी हो गये थे उन्हें तो भारतीय संस्कृति और देवी-दवताओं का ऐसा हाल सुनकर मजा आ ही रहा था और अपनी तुच्छ लोभ के कारण कवियों को भी राजाओं को खुश करने में अपनी भलाई नजर आ रही थी। चारों ओर भोग-विलास का ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया कि सत्ता और दरबारों को बाहरी दुनिया से कोई सरोकार ही न रह गया था। जब देवताओं को ही बहु-पत्नी और बहु-प्रेमिकामय घोषित कर दिया गया तो राजाओं के लिए तो अपने को बहु-पत्नीमय होना तर्कसंगत ही हो गया था। गुलगुली गिलमें गलीचा है गुनीजन है। चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला है। कह पद्यमाकर त्यों गजक गिजा हैं सजी सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है सिसिर के पला को न प्यापत कसाला तिन्हैं, जिनके अधीन एते उदित मसाला है, तान तुक ताला है, बिनोद के रसाला है, सुबाला है, दुसाला है, बिसाल चित्रसाला है। ऐसा वातावरण दो सौ वर्षों तक चलता रहा। इन दो सौ सालों में अगर थोड़ी-बहुत सामग्री जिसे पठनीय मानी गई वह है दरबारों से बाहर या दरबारों के विपक्ष में लिखा गया साहित्य, जिसे हिन्दी साहित्य 'रीतिमुक्त' की संज्ञा देता है। आश्चर्य और खुशी की बात यह है कि यह साहित्य परिमाण में तो अल्प है लेकिन यह पूरे रीतिकालीन साहित्य पर भारी पड़ता दिखलाई पड़ता है। इसमें अश्लीलता का लेशमात्र भी नहीं है और साथ ही साथ तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को भी अपने काव्य में दर्शाया है और मजेकी बात यह कि आदिकाल के बाद पूरे भक्तिकाल में जो तलवारें म्यानों में सोईं रही उसे इन रीतिमुक्त कवियोंम्यानों से बाहर भी निकलवाया और निस्कंट क हो चुके मुगल साम्राज्य के सामने चुनौती भी खड़ी कर दी। यह रीतिमुक्त कवियों की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

चकित चकता चौंकि चौंकि उठे बार बार, दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है। बिलखि बदन बिलखत बिजैपुर पति, फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है। थर थर काँपत कुतुब

साहि गोलकुंडा, हहरि हबस भूप भीर भरकति है। राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि, केते बादसाहन की छाती धरकति है। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त के समानांतर कवि बिहारी हैं जिनको रीति सिद्ध धारा का एकलौता कवि माना गया है जो राजाश्रय पा लेने के बाद भी राजा की झूठी प्रशंसा में विश्वास नहीं करते और सही को सही और गलत को गलत कहने का साहस दिखाते हैं–

नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास ऐही काल।
अली-कली ही सो बंधयौ, आगे कौन हवाल।

बिहारी और रीतिमुक्त कवियों के कुछ अपवादों को छोड़ कर साहित्य और सत्ता का यह गठजोड़ टूटता है जब मुगल सम्राट को अंग्रेजों की खुली चुनौती मिलती है और वे जब तक सचेत हो कर कुछ कर पातेया दरबारों के बाहर की दुनिया से अपना सामंज स्य पुनः स्थापित कर पाते जब तक देर हो चुकी थी और उनके दरबारों पर किसी और अधिकार जमा लिया था। भोग-विलास और अय्याशी की दुनिया देखते-देखते लूट पिट चुकी थी। अब निजाम बदल गये थे तो स्वाभाविक था लोगों की प्रवृत्तियाँ भी बदलने लगी थी। और सब परिस्थितियों के बीच साहित्य अपने स्वरूप का विस्तार कर रहा था और हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल की उत्पत्ति हो रही थी। आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही साहित्य और सत्ता का लगाव-अलगाव प्रारम्भ हो गया था। साहित्यकारों या हिन्दुस्तानियों के उस पीढ़ी ने जिसने अंतिम मुगल सम्राट के जंर्जर दौर को देखा था, वह अंग्रेजी हुकूमत के पक्ष में आन खड़ी होती है, पर धीरे-धीरे जैसे-जैसे अंग्रेजी सरकार की नीतियों का खुलासा होने लगता है वह असमंजस्य में भी पड़ी दिखाई देने लगती है। इसका संकेत हमें भारतेन्दु की रचनाओं में भी दिखाई पड़ता है –

अंग्रेजराज सुख साज सजे सब मारी।
पर धन विदेस चलि जात, ऐहि अति ख्वारी॥

इस दोहे की पहली पंक्ति जहाँ अंग्रेजी हुकूमत में समृद्धि की ओर संकेत करती है, वहीं बहादुरशाह जफर के शासन की जर्जरता भी बयान करती है और धन के विदेश जाने की चिन्ता सत्ता के विपक्ष में होने का उद्घोष भी करती है।

सुजस मिलै अंग्रेज को, होय रूस की रोक।
बढ़ै बृटिश वाणिज्य पै हमको केवल सोक॥
भारत राज मंझार जौ कहँ काबुल मिलि जाई।
जज्ज कलक्टर होइ है हिन्दू नहिं तित धाई॥

अंग्रेजी नीतियों का विरोध –

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिम तमाशा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिल दीजै आसा॥

भारतेन्दु ने उस युग में जिस साहस का परिचय दिया यह बहुत आश्चर्य की बात थी, जहाँ पूरे देश का मनोबल 1857 की हार ने तोड़ कर रख दिया था, वैसी विकट परिस्थिति एक आशा की दीप अवश्य जला दी थी और शासन के विरोध का यह सिलसिला चल निकला। भारतेन्दु मंडल के अन्य कवियों ने भी इसे आगे बढ़ाया। देस नगर बानक बनो सब अंग्रेजी चाल हाटन में देखह भरो बस अंग्रेजी माल (प्रेमधन) सबसु लिए जात अंगरेज, हम केवल ल्यकयर के तेज। श्रम बिन बातें का करती हैं, कहुँ टेंटकन गाजें टरती हैं। (मिश्र) सत्ता के विरोध का यह तेवर बंग –भंग के बाद जोर पकड़ता है और तब साहित्य और सत्ता आमने- सामने आ खड़े होते हैं –

घूम रहा है कैसा चक्र
वह नवनीत कहाँ जाता है
रह जाता है तक्र।

देश की राजनीतिक फलक पर गांधी के पर्दापण के बाद यह विरोध और जोर पकड़ता है और साहित्य ने मनुष्य की मुक्ति के साथ छंद–मुक्ति का स्वर भी बुलन्द कर दिया। साहित्य अब अनेक रूपों से सत्ता का पूरजोर विरोध करता रहा और इन सब के बीच 1936 में कथा सम्राट प्रेमचंद का वह प्रसिद्ध बयान सामने आया जो उन्होंने प्रगतिशील लेखन संघ के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दी –

''साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।''

प्रेमचंद के इस बयान नेमानोभावी साहित्यकारों की दिशा तय कर दी थी और देश की आजादी के बाद भी जैसे ही मोह भंग का दौर शुरू होता है और साठ के दशक के बाद फिर एक बार कविता सत्ता में प्रवेश पाती है मगर विपक्ष के दरवाजे से ही। रघुवीर सहाय, दिनकर, धूमिल, दुष्यंत कुमार, नागार्जुन आदि अनेकों कवियों तत्कालीन शासन के खिलाफ जमकर कलम चलाई और आम आदमी की पीड़ा के सीधे शब्दों को प्रकट किया। हिन्दी साहित्य में जो साहित्य और सत्ता का खेल प्रारम्भ हुआ था वह आज भी अनवरत जारी है। पूरे इतिहास का पूर्नावलोकन करने के बाद हम पाते हैं कि साहित्य का सत्ता के साथ ज्यादा संबंध विरोध का ही रहा है और वही विरोध साहित्य के लिए संजीवनी का काम करती रही है और जब कभी साहित्य के सत्ता का दामन थामने की कोशिश की है उसे मुँह की ही खानी पड़ी है।

डॉ अनिल कुमार सिंह, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। मो. – 9868081451

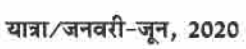

खंडिता

डॉ. हरीश नवल

''नहीं बेटा, विजय जी बहुत मदद कर रहे हैं- तुम तो अपने हो, तुमसे क्या छिपाना, विजय जी के पास सरकारी फोन है ना, सो शादी में न्यौतन के सन्देश उनके फोन द्वारा शहर में और बाहर देने के पैसे नहीं लगेंगे-सो रोज शाम दो घण्टे आचार्य जी लिस्ट लेकर वहीं फोन करने जाते हैं। क्या करें बेटा एस हो समझदारी से काम करना पड़ता है।'' तभी कुछ टूटने की आवाज़ हुई, मैं समझ गया हृदय में स्थापित कोई मूर्ति गिर चुकी है।

''विजय जी आप इतनी बार मुझे फोन कर लेते हैं- मुझे संकोच होता है, मैं कर नहीं पाता और आप?'' आचार्य जी द्वारा प्रकट की गई कृतज्ञता के समय मैं भी उनके साथ विजय जी के घर में उपस्थित था। विजय जी बोले, ''आचार्य जी आप संकोच न करें, आपका तो अपना फोन है- मेरा सरकारी है, मेरा बिल तो सरकार भरती है।''

मैंने महसूस किया कि आचार्य जी को अच्छा नहीं लगा। वे पुरानी गुरूकुल परम्परा के वाहक सिद्धान्तवादी थे, उन्होंने प्रत्युत्तर में कुछ न कहा पर मेरे साथ वापिस लौटते हुए बाले, ''बेटा यह कितनी गलत बात है कि सरकारी तन्त्र का दुरूपयोग उसके अधिकारी करते हैं जिन्हें जनता के सामने आदर्श प्रस्तुत करने होते हैं ईश्वर उसे सुबुद्धि दे तुम भी सरकारी अधिकारी हो, तुम तो ऐसा नहीं करते होगे?''

मैं लज्जा में गड़ गया, मैंने निवेदन किया, आचार्य जी मैं भी कार का दुरूपयोग करता हूँ- बिना सरकारी काम के भी उसे-ले जाता हूँ, पर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब ऐसा नहीं करूंगा बस आपका आशीर्वाद होगा तो इच्छा भी शक्ति बना लूंगा ''अवश्य, तुम सच्चे और नेक हो, ऐसे व्यक्तियों की मदद ईश्वर भी करता है- मैं प्रसन्न हूँ कि तुमने ऐसी शपथ ली। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

विजय जी वाली घटना को बीते छह

माह हो चुके थे, उस मध्य में एक अच्छा व्यक्ति बनने लगा था। मैंने आचार्य जी की मूर्ति हृदय में स्थापित कर सरकारी तन्त्र का दुरूपयोग बन्द कर दिया, ''ऐसा करने से मुझे कष्ट तो हुआ पर सन्तोष बेहद था। मुझे लगता कि अब मैं आचार्य जी के अधिक निकट हो सकता हूँ।

एक दिन उनका आशीर्वाद लेने मैं आचार्य जी के निवास पर गया। श्रीमती आचाचर्य ने स्वागत किया। आचार्य जी नहीं थे- पर घर में हलचल थी। उत्सव जैसा लगा रहा था- श्रीमती आचार्य ने बताया कि दो सप्ताह बाद उनकी बेटी का विवाह है, उसी की तैयारी है- आचार्य जी भी इस काम के लिए विजय जी के पास जाते हैं।

विजय जी के पास? वे तो स्वयं यहाँ आ जाते, ऐसी क्या बात थी।

''नहीं बेटा, विजय जी बहुत मदद कर रहे हैं- तुम तो अपने हो, तुमसे क्या छिपाना, विजय जी के पास सरकारी फोन है ना, सो शादी में न्यौतन के सन्दश उनके फोन द्वारा शहर में और बाहर देने के पैसे नहीं लगेंगे-सो रोज शाम दो घण्टे आचार्य जी लिस्ट लेकर वहीं फोन करने जाते हैं। क्या करें बेटा एस हो समझदारी से काम करना पड़ता है।'' तभी कुछ टूटने की आवाज़ हुई, मैं समझ गया हृदय में स्थापित कोई मूर्ति गिर चुकी है।

संस्कार

''हम सांस्कृतिक कविता के पोषक हैं, हमने एक दल ऐसे नये प्रतिभाशाली कवियों का बनाया है जिनका लेखन बहुत श्रेष्ठ है और उनकी कविता छिछले कवि सम्मेलनों की छवि को सुधारने की क्षमता रखती है,'' कहकर प्रोफेसर महेश्वर ने उस बड़े संस्थान के सम्मेलन आयोजक की निगाहों में झांककर अपने प्रति बने विश्वास को पहचान लिया और सन्तोष की सांस ली।

आयोजक ने कहा, ''आप ही क्यों न इस बार हमारे लिए कवियों को तय कर लें और हमें दस ऐसे आदर्श कवि दिला दें जो आपके जैसे संस्कारी और निष्ठावान हों।''

''अवश्य मुझे प्रसन्नता होगी तभी माहौल बदल सकेगा,'' प्रोफेसर महेश्वर ने सुसांस्कृतिक मुस्कान बिखरते हुए कहा।

कवि सम्मेलन का समय समीप आया, सम्मेलन आयोजक श्री मनोज जी ने प्रोफेसर महेश्वर को बुलाया और उन्हें पचास हजार रूपये से भरा लिफाफा सौंपते हुए निवेदित यिका कि वे उपयुक्त कार्य समय से सम्पन्न करा दें।

घर लौटकर प्रोफेसर महेश्वर ने लिफाफे में से आधे रूपये निकालकर अपनी सेफ में रखे और शेष आधे लेकर अपने जैसे दस संस्कारी कवियों की खोज में निकल गए।

सैम्पल

मनोहर एक बड़े दफ्तर में छोटा कर्मचारी था। हिन्दी कार्यशाला में उसकी रूचि रजिस्टर में उपस्थिति दर्ज करने और बेहतर नाश्ता मिलने के कारण थी।

इस बार भी नाश्ते का डिब्बा राजधानी के सबसे प्रसिद्ध हलवाई की दुकान से आया था। दो तरह की रसीली मिठाई, पनीर का पकौड़ा, खस्ता कचौड़ी, चिप्स और सॉस के पैकेट थे।

सब नाश्ते का आनन्द ले रहे थे। अचानक मनोहर की आवाज गूंजी ''कौन लाया था यह मिठाई, इसमें बाल है हमें नहीं खानी।'' संयोजिका ने विशिष्ट अतिथियों के समक्ष संयत स्वर में कहा, ''कहीं से बाल गिर गया होगा आप कृपया दूसरा डिब्बा ले लें'' और उन्होंने मनोहर को दूसरा डिब्बा दे दिया।

गम्भीरता से डिब्बा उपयोग करने के बाद मनोहर ने ऊंचे स्वर से संयोजिका से कहा, ''मैडम! बाल वाला डिब्बा मुझे दे दीजिए इसका सैम्पल चैक करवाऊँगा स्वास्थ्य विभाग तक शिकायत पहुंचाऊँगा, देख लूँगा हलवाई को जिसने ऐसा गलत कार्य किया। क्या समझ रखा है हमारे स्वास्थ्य को?''

विशिष्ट अतिथि के साथ था, लौटते हुए कार पार्किंग से कार निकाल रहा था। मैंने साफ-साफ देखा साथ के साईकिल स्टैण्ड पर अपनी साइकिल के कैरियर पर बाल वाला डिब्बा रख मनोहर लाल बहुत ही मनोयोग से उसका उपभोग कर रहा था।

डॉ. हरीश नवल, 65, साक्षरा अपर्टमेंट्स, ए–3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063

✧ ✧ ✧

लॉकडाउन के साइड इफेक्ट

मदन गुप्ता सपाटु

कर्फ्यू और कोरोना से साहित्य सेवा में भी एकाएक बाढ़ सी आ गई है। जिन्हें अच्छे भले चुटकलों पर कई हफ्ते बाद हँसी आती थी, वे व्हाट्स एप्प पर चुटकला मास्टर बन गए हैं। नए नए एपीसोड, मीम, टिक टॉक, कार्टून आदि मैन्यूफैक्चर कर के फटाफट एक्सपोर्ट कर रहे हैं। बाजार में नया है का लेबल लगा रहे हैं। कुछ जरुरत से ज्यादा क्रियेटिव महारथियों का कोरोना चुटकलों के कारण थानों में क्वारंनटाइन भी हो चुका है।

आज सुबह जैसे ही हम विशुद्ध वायु ग्रहण करने अपनी छत पर चढ़े तो देखा हमारे पड़ोसी भी शोले के सांभा की तरह टंकी की चोंच पर विराजमान होकर मुँह पर मास्क चढ़ाए, उगते सूर्य के समय, बुझते हुए गुलाबी चांद तारों को विदा होते निहार रहे हैं। हमने पूछा जनाब ये आसमान की तरफ 180 डिग्री पर मुंडी घुमा घुमा कर लॉकडाउन में किसे ताकना चाहते हो? वे बोले-भाई साहब सुना है जालन्धर से हिमालय दिख रहा है..... तो वह दिन भी दूर नहीं जब लुधियाना से लंदन भी दिख जाएगा।

आशावान और आशावादी होना भी जरुरी है। लोग पूछ रहे थे कि अच्छे दिन कब आएंगे? सब कहते थे कि एक न एक दिन जरुर आएंगे। बच्चे चाहते थे स्कूल में छुट्टी हो, हो गई। कुछ बच्चे ईश्वर से मन ही मन प्रार्थना करते थे कि काश इम्तिहान मार्च में न हों..... बड़ा डर लगता है। डर एक दम दूर। टीचर्स पढ़ाने के अलावा दूसरी सरकारी बेगारें करते करते थक गए थे, सब फिजूल की सिरदर्दी खटाक् से गायब। कुछ सॉफ्टवेयर वाले ब्रेक चाहते थे, मिल गया। कुछ बाबुओं का आफिस जाने का मन ही नहीं करता था। घर बैठ गए। कई सोचते थे आफिस न जाना पड़े..... नही जाना पड़ा, वर्क फ्रॉम होम हो गया। रेल इंजन दौड़ दौड़ कर हॉफ चुके थे, व्योम बालाओं के हाथ हर समय नमस्ते के मोड में रहने लगे थे, औरतें अपने-अपने टुन्न

खाविंदों से परेशान थीं, खाविंद उनकी कहाँ हो, कब आओगे, किसके साथ हो? घर में टिकते क्यों नहीं जैसे उल जलूल सवालों से परेशान थे। वे अब बंधुआ मजदूर की तरह घर के सारे काम कर रहे हैं।

जल थल चांद तारे साफ-साफ देखे हुए मुदद्त हो गई थी। अब बिना ऐनक साफ-साफ दिख रहा है। बच्चों को बार-बार किताब में पढ़ाना नहीं पड़ेगा कि लक्ष्मण जी के लिए संजीवनी बूटी कौन लेकर आया था? अब यह बताना होगा कि ब्राजील को संजीवनी बूटी किसने भेजी? कर्ण रामायण में नहीं महाभारत में था। बच्चे पढ़ना नहीं चाहते थे टीचर पढ़ाना नहीं चाहते थे, कामवाली काम नहीं करना चाहती थी, बिना काम करे सेलरी घर पर ....पगार पहली को.....सब तथास्तु हो गया। अब काम आप ही करेंगे और तन्खाह भी उसे ही देंगे। झाड़ू पोछे लगाने से जिम का खर्चा बचा।

कर्फ्यू और कोरोना से साहित्य सेवा में भी एकाएक बाढ़ सी आ गई है। जिन्हें अच्छे भले चुटकलों पर कई हफ्ते बाद हँसी आती थी, वे व्हाट्स एप्प पर चुटकला मास्टर बन गए हैं। नए-नए एपीसोड, मीम, टिक टॉक, कार्टून आदि मैन्यूफैक्चर कर के फटाफट एक्सपोर्ट कर रहे हैं। बाजार में नया है का लेबल लगा रहे हैं। कुछ जरुरत से ज्यादा क्रियेटिव महारथियों का कोरोना चुटकलों के कारण थानों में क्वारंनटाइन भी हो चुका है।

जिन्हें कभी कबीर के दोहे नहीं समझ आए, वो भी 21 दिनों का क्रैश कोर्स करके अचानक सृजनात्मक कवि बन गए हैं। या तो वे पड़ोसनों पर शायरी आजमा रहे हैं या जवानी की दुर्घटना का विरह गान कर रहे हैं। जनता एक दम सतयुग में पहुंच गई है। कोई चोरी, चकारी, छीना झपटी, सेंधमारी, छेड़खानी की घटना नहीं.... सब एकदम खल्लास! रामराज्य रामायण के पुनर्प्रसारण में ही नजर नहीं आ रहा अपितु घरों में भी दिख रहा है। बहुएं सीता, उर्मिला की तरह बिहेव कर रही हैं और सासें कौशल्या बन गई हैं। बच्चे हे माते! और तात्श्री कह कर बुला रहें हैं। पति सीते-सीते चिल्ला रहे हैं। सुबह रामायण, शाम रामायण, दिन में महाभारत, रात हंसी खुशी वाले सीरियल। पूरा घर रामायण काल में चला गया है।

एक वक्त था जब बस में सवारियाँ चवन्नी या अठन्नी लौटाने में आनाकानी करने वाले कंडक्टर का सिर फोड़ देती थी। आज वही लोग सड़क पर गिरा 2000 का नोट देख कर ऐसे भाग रहें हैं जैसे बम रखा हो। पुलिस जिस नोट को चुपचाप जेब में सरका लेती थी, वो भी उसे शक की निगाह से देख रही है।

पंडित और प्रचारक अपने यू टॅयूब चैनल पर ही चौकियाँ लगा कर बता रहे हैं कि हमने तो पहले ही कह दिया था कि समय बहुत खराब आने वाला है, ऐसा समय न पहले कभी आया है न कभी आएगा।

नेता और अभिनेता परिवार के साथ क्वालिटी टाइम बिता रहे हैं। बिजली पानी की बचत, नो पेट्रोल, सब पर कंट्रोल। ऐसे कलयुग में सतयुग और कब आएगा?

स्टे होम से नाई का खर्चा बचा। कुछ साइड इफैक्ट हो गए। पत्नी बालकनी से ही चिल्लाई-सुनते हो? हम घबराए। न तो 8 तारीख थी और न ही रात के 8 बजे थे। उन्होंने अधिकारवश आहवान किया- बाथरुम में चलो। हमने उनका रोमांटिक मूड नापने की दूर से कोशिश की जैसे आजकल डाक्टर संदिग्धों का बुखार देख रहे हैं। उन्होंने डाँटा- ये दाढ़ी कब बनवाओगे? सिर के बाल इतने लंबे हो गए हैं। कब कटवाओगे? हमने कहा- लॉकडाउन के बाद। उनके हाथ में कैंची थी। ''नहीं अभी कटेंगे'' कहते हुए उन्होंने बाल पकड़ लिए। हमने बार-बार पूछा कि क्या कोई सरकारी आदेश जारी हुआ है? वे बोलीं- सरकारी नहीं, मेरा आदेश है। पड़ोसन पूछ रही थी कि ये जो दाढ़ी वाले बाबा तुम्हारे यहाँ ठहरे हुए हैं, क्या कोरोना का धागा भी देते हैं?

पार्कों में लाफ्टर कल्बों का बनावटी हा हा.. ही ही.. हू हू.. गायब है। बस कोयल की कू कू.. है। पक्षियों की चहचहाहट है। सड़कों पर वाहनों की जगह मोर नाच रहे हैं। गंगा-यमुना सफाई अभियान प्रकृति ने स्वयं कर दिया। इटली लड़खड़ा रहा है, अमरीका भारत के आगे दवा की पर्ची लेकर गिड़गिड़ा रहा है। जो मातृभूमि को धिक्कारते थे, लौटने को तरस रहे हैं। अब सब को यही देश सेफ लगने लगा है। हैंडशेक 'नमस्ते' में बदल गया है। हाथ धोना राष्ट्रीय कार्यक्रम बन गया है। बड़े-बूढ़ों की बहुओं को अपनी उपस्थिति का आभास करवाने वाली खांसी कहीं राष्ट्रीय कॉलर टयनू नहीं न बन जाए? भविष्य में हो सकता है हर धर्मस्थान पर पुजारी के साथ-साथ एक डाक्टर साहब भी दवा देते नजर आएँ।

जिन लोगों को कसरत भूल गई थी, कर्फ्यू के दौरान गलियों चौराहों पर प्रैक्टिस हो गई। पुलिस वालों को हाथ साफ करने डंडों को तेल पिलानें के अलावा सेनेटाइज करने का भी मौका मिला। कुछ परिवारों को नए आधुनिक नाम रखने का मौका मिला। हमारे एक मित्र 1971 में फौज में थे। उन्होंने अपने पुत्र का नाम रखा था- ढाका जीत सिंह। अब उनके यहाँ एक पोता एक पोती का नाम रखा गया है- कोरोना कुमार और कोरोना कुमारी।

कुछ बैठे ठाले चाहते हैं कि बस यूँ ही चलता रहे फुर्सत का लॉकडाउन.....

मदन गुप्ता सपाटू, 458, सैक्टर 10, पंचकूला।
मो. : 9815619620

क्या करती रहती हो सारा दिन?

डॉ. विभा रंजन (कनक)

''माँजी की कीर्तन मंडली की कुछ औरते आ गई थी.. माँ जी ने खाना खिलाने को कहा.. खाना नहीं था.. तब माँ जी ने कहा.. पराठा सब्जी बना लो.. वही बनाने खिलाने में समय नहीं मिला..!'' बस फिर क्या था।

''क्या बात करती हो यार... पराठा सब्जी बनाने में कितना समय लगता है.. हर बात का बहाना तुम्हारे पास रेडी रहता है..?''

यह प्रश्न हम औरतों के जीवन के प्रतिदिन का एक प्रश्न बन गया है। इस वाक्य ने पूरे परिवार के साथ मानों सांठ-गांठ कर ली हो। आज इसने पूछा, तो कल उसकी बारी है। अर्थ यह कि, यह एक वाक्य हमारे संपूर्ण अस्तित्व को प्रभावित करता है। यदि भूले से कभी माँ जी के पूजा का बर्तन नहीं धुला तब, ''क्या करती रहती हो घर में रह कर.. एक बर्तन नहीं धो पाती..?''

मुझे समझ में नहीं आता माँजी क्यों नहीं समझती? वह भी तो इस दौर से गुजरी होगीं? उनको भी तो कभी रजस्वला होता होगा? इन दिनों औरतों को पूजन कार्य वर्जित है! फिर भी, माँ जी सबके सामने टोकने में कभी नहीं हिचकिचाती, मुझे कुछ बोलते भी नहीं बनता!

क्या बताऊं? कैसे बताऊँ?

पतिदेव यदि कभी ऑफिस से जल्दी आ जाते हैं, मैं सोचने लगती हूँ आज थोड़ा बाहर जाने को बोलती हूँ, नई साड़ियों के ब्लाउज और फॉल लाने थे। वह आते पहले टाई ढ़ीली करते और लपेट कर मारते।

''मैडम जी.. पति थका हारा आया है.. भूखा भी है.. थोड़ा गरमा-गरम पकौड़ा हो जाए..।'' महिने के आखिरी दिन है, पहले पूछ तो लो बेसन है? तेल है या नहीं? उनको क्या मतलब? पत्नी नामक जी व है वह सब संभाल लेगी!

''हां जी.. अभी लाती हूँ..!''

मुझे बस यही बोलना है। पकौड़ी बन गई, लेकर आई। लेकिन तब तक एक नई शिकायत तैयार थी।

''तुमने आज भी.. मेरी आलमारी ठीक नहीं की... मैने बोला था.. आज ठीक कर देना..!'' मैंने सोचा सब सच बात देती हूँ तब समझ जाएगें गुस्सा नहीं करेगें, मेरी विवशता समझेगें।''

''माँजी की कीर्तन मंडली की कुछ औरते आ गई थी.. माँ जी ने खाना खिलाने को कहा.. खाना नहीं था.. तब माँ जी ने कहा.. पराठा सब्जी बना लो.. वही बनाने खिलाने में समय नहीं मिला..!'' बस फिर क्या था।

''क्या बात करती हो यार... पराठा सब्जी बनाने में कितना समय लगता है.. हर बात का बहाना तुम्हारे पास रेडी रहता है..?''

मैं चुप! क्या बोलूं? ''आज मैं ठीक कर दूँगी..!'' ''नहीं छोडो.. मैं खुद कर लूंगा.. पता नहीं दिन भर.. घर में रह कर क्या करती हो..?'' अब मैं क्या बताऊँ? क्या करती रहती हूँ, दिन भर? चैन से दो घड़ी बैठ भी नहीं पाती? कितने छोटे-बड़े कामों का हिसाब दूँ? चाय पकौड़ी देने ससुर के पास गई। उन्होंने कहा,

''तुमने खाया बेटा जी..?''

मैने तो दोपहर में खा लिया!''

''अरे.. मैं पकौड़े की बात कर रहा हूँ.. लो.. तुम भी खाओ..!

मैं खा लूँगी पापाजी..!

नहीं.. मेरे सामने खाओ.. मैं जानता हूँ.. हमारे देश में अभी तक गृहिणी को.. वह मान नहीं मिला.. जो मिलना चाहिए.. मैं देखता हूँ.. तुम सारा दिन दौड़ती रहती हो.. एक दिन अपना काम छोड़ दो.. तब.. सबके होश ठिकाने आ जायेगें विदेशों और बड़े-बड़े शहरों में.. ऐसी औरतों को.. आज कल होममेकर कहने लगे हैं होममेकर का मतलब समझती हो न... घर बनाने वाला..!''

बस, आज मैं जीत गई। पापा जी ने मुझे समझ लिया। मेरे लिए यह बहुत बड़ा इनाम है, उनकी प्रशंसा, मेरे दुखते हृदय पर दवा का काम तो कर ही गयी।

डॉ. विभा रंजन (कनक), बी/37, ग्राउंड फ्लोर, सोमी नगर, दक्षिणी दिल्ली,
न्यू दिल्ली–110017, मो. : 9911809003

✧ ✧ ✧

हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी : पुनः विचार

डॉ. सुलोचना कुमारी

राजेंद्र यादव जी कहते हैं कि 'किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (1901) पर टेम्पेस्ट की छाप है, रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) और बंग महिला की 'दुलाईवाली' (1907) अपनी मौलिकता के बावजूद, कहानी होने की माँग पूरी नहीं करतीं। वे हिंदी की पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' को बताते हुए उससे ही आधुनिक कहानी का प्रारम्भ मानते हैं।

साहित्य की सरस, लोकप्रिय एवम् प्राचीन विधा है, जिसका अर्थ किस्सा, काल्पनिक बात, वृतांत, लिखित या मौखिक गद्य रूप में प्रस्तुत कोई वास्तविक या काल्पनिक घटना है, जिसका उद्देश्य पाठकों या श्रोताओं का मनोरंजन करना, कोई शिक्षा देना और किसी वस्तुस्थिति से अवगत कराना होता है। खोजी प्रवृत्ति मनुष्य अपने आस-पास के छोटे-छोटे अनुभवों, सुख-दुख के क्षणों, अनुमानों, संघर्षों आदि का आश्रय लेकर जाने-अनजाने में छोटी-छोटी कहानियाँ रचता चला आ रहा है, जिसके लिखित व मौखिक रूप पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होते आ रहे हैं। अतः प्रत्येक मानव जाति का कथासाहित्य मौखिक या लिखित रूप में सभ्यता के आदिम चरण से ही मिलता है। 'कहानी' का मानव सभ्यता के विकास में अमूल्य योगदान है। विश्व की समस्त प्राचीन, नवीन, लुप्त-विलुप्त सभ्यताओं के आधार स्तम्भ कहानी ही है। इसके बिना बड़ी-सी-बड़ी मानव सभ्यता के इतिहास के आरम्भ को नहीं जाना जा सकता है। संसार के आदि ग्रंथों की सारी संरचना कहानियों पर ही टिकी हुई हैं।

'कहानी' कहने-सुनने की प्रक्रिया का आधुनिक नाम है। कथा, गाथा, आख्या, आख्यायिका, गल्प, लघु कथा, शार्ट-स्टोरी आदि कहानी के अन्य नाम हैं, परंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में 'कहानी' नाम ही ज्यादा प्रचलित है। भारत में कहानी का प्राचीनतम रूप

कथा है। आदिकाल से रीतिकाल तक कथा ने हिंदी के प्रबंध-काव्यों, नीति-काव्यों, गीतिकाव्यों, मुक्तकों में स्थान बनाया। भक्तिकाल के प्रेममार्गी एवं ज्ञानमार्गी कवियों के प्रबंधों, मुक्तकों, नीति-काव्यों में कथा विद्यमान है। रीतिकालीन काव्यों में राधा-कृष्ण की कथाओं को कवियों ने स्थान दिया है।

साहित्य की एक विधा के रूप में 'हिंदी कहानी' का जन्म 1900 ई० के आस-पास माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, राजेन्द्रबाला घोष, कार्तिक प्रसाद खत्री, जयशंकर प्रसाद, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, ज्वाला दत्त शर्मा, गिरिजादत्त वाजपेयी, किशोरीलाल गोस्वामी, मास्टर भगवानदीन, वृन्दावनलाल वर्मा, चंद्रधरशर्मा गुलेरी, राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह, विश्वर नाथ जिज्जा, विश्वम्भर नाथ कौशिक, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, मुंशी प्रेमचंद, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जवालादत्त शर्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीनसुदर्शन आदि अनेक कहानीकारों ने 1900 ई० के बाद कहानियाँ लिखीं। इनमें हिन्दी की प्रथम एवं मौलिक कहानी किसे माना जाय, इस सम्बन्ध में विद्वानों में एक मत नहीं दिखायी पड़ता है। विभिन्न विद्वानों के विचारों पर एक नजर :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल आदि विद्वान सरस्वती में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' (1901) को हिंदी की प्रथम एवं मौलिक कहानी मानते हैं, लेकिन डॉ० हरदयाल का कहना है कि 'इसके घटना क्रम और पात्रों में 'टेम्पेस्ट' के घटना क्रम और पात्रों से बहुत साम्य है। इतना ही नहीं, बल्कि इसका वक्तव्य विषय भी वही है जो 'टेम्पेस्ट' का है।'

देवीप्रसाद वर्मा माधवराव सप्रे द्वारा रचित कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901ई०) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। डॉ० हरदयाल कहते हैं कि 'यह कहानी फिरदौसी के 'शाहनामा' की एक कथा 'नौशेरवां का इंसाफ' पर आधारित है। वे रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई०) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। वे कहते हैं कि इसकी मौलिकता और आधुनिकता के सम्बन्ध में किसी को संदेह नहीं है।'

राजेंद्र यादव जी कहते हैं कि 'किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (1901) पर टेम्पेस्ट की छाप है, रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) और बंग महिला की 'दुलाईवाली' (1907) अपनी मौलिकता के बावजूद, कहानी होने की माँग पूरी नहीं करतीं। वे हिंदी की पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' को बताते हुए उससे ही आधुनिक कहानी का प्रारम्भ मानते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' (1915) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं।

प्रथम एवं मुख्य मार्क्सवादी आलोचक शिवदान सिंह चौहान जी जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' को हिन्दी की पहली और मौलिक कहानी मानते हैं। वे कहते हैं कि 'प्रेमचन्द और

प्रसाद पूर्व के किसी कहानीकार की कहानियों में आधुनिक कहानी के तत्व मौजूद नहीं हैं।'

प्रो० डॉ० गणेश प्रसाद जी (पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य, हिंदी विभाग बी० आर० ए० बिहार वि०वि० मुजफ्फरपुर) 1911 में 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। वे कहते हैं कि 'कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानियों से एकदम भिन्न है। विरल घटना के आधार पर जीवन के विस्तार को छूनेवाली यह कहानी सांकेतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती है।' वे कहते हैं कि 'ग्राम' कहानी में जिस वातावरण सघनता की सृष्टि की गयी है, वही विकसित होकर 'उसने कहा था' कहानी में आई है। कहानी का अंत मोहनलाल के विषाद और लज्जा से होता है, जिसमें 'संयोग' की चमत्कृति है। विषाद के साथ लज्जा का होना जागरण की प्रक्रिया का एक हिस्सा होता है। विषाद और लज्जा से अधिकृत मोहनलाल के चारित्रिक परिष्कार की संभावना एक नीरवता में घटित होती है। यह स्थिति कहानी को हठात आदर्शोन्मुख बनने से रोकती है और विषाद की धूमछाया में कहानी के कथ्य को उद्‌घाटित करती है।'

प्रो० डॉ० गणेश प्रसाद जी के विचार में मेरी भी सहमति है। जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' कहानी एक साथ अनेक सरोकारों की कहानी है। कहानी में आये सारे प्रसंग कहानी को प्रासंगिक और अर्थवान बनाते हैं। राजनीतिक दासता, मानसिक परतंत्रता, शोषणवृत्ति, धूर्तता आदि विभिन्न प्रसंगों द्वारा खुलकर हमारे सामने आती हैं। पूरी की पूरी कहानी में उभरे संकेतों से यह एक विशेष कहानी बन जाती है। इस कहानी में 'कथा' कहानी में रूपांतरित होती है और समानांतर उभरे हुए संकेत उसके आधार हैं। कहानी में ग्रामीण-संस्कृति भी उभर रही है। कहानी में आए पात्रों की भाषा उसके व्यक्तित्व के अनुसार है, जो प्रभाव उत्पादिका है। 'ग्राम' कहानी में तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि स्थितियों की सांकेतिक अर्थवत्ता देकर कहानीकार एक वृहत्तर प्रयोजन सिद्ध करता है। यह कहानी कर्ज के दुष्परिणाम पर टिकी नहीं है, यदि रहती तो यह एक स्त्री की कथा बनकर रह जाती। रेलगाड़ी में दूसरे दर्जे का स्थान बाबुओं और धनी व्यक्तियों के लिए सुरक्षित होना सामाजिक विषमता का प्रतीक है। धूर्ततापूर्वक कुसुमपुर की नीलामी कर उसे हथियाने वाला कुंदनलाल एक व्यक्ति नहीं य एक धूर्त जाति का प्रतीक है। उसकी धूर्तता अर्थ विस्तार के साथ क्रूर अंग्रेजों का प्रतीक है। मोहनलाल का हंटर शोषण और विषमता का प्रतीक है। स्त्री की व्यथा-कथा पूरे देश की व्यथा-कथा का प्रतीक है। मोहनलाल की लज्जा और ग्लानि में उसकी सामाजिक चेतना जगी है। प्रसाद जी ने अपनी इस प्रारंभिक कहानी में जिस अर्थपूर्ण सघन वातावरण की सृष्टि की है, वह कहानी को जीवंत बना देती है ।

जयशंकर प्रसाद के पूर्व की कहानियों के कथानक सामान्यत: स्थूल तथा वर्णन प्रधान हैं। कहानियों में रचनात्मक सघनता, कहानी के विभिन्न तत्वों में सामंजस्य आदि का आभाव है। कहानियों के पात्र अभिनयशील और भावुक हैं। अधिकांश कहानियाँ बंगला और अंग्रेजी की छाया ली हुई हैं। इस परिस्थिति में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' का प्रकाशित होना एक महत्वपूर्ण

ऐतिहासिक घटना है। 'छाया' की कहानी 'ग्राम' प्रेमचन्द पूर्व युग की पहली कहानी है, जिसमें कहानी के सभी तत्वों में सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित हुआ है। यह हिन्दी की पहली कहानी है, जो वर्णनात्मकता से कथानात्मकता की ओर आती है। कथन ही अनुभूति से परिष्कृत होकर कहानी में परिवर्तित होती है। इस कहानी में प्रभाव और प्रवाह दोनों हैं। यह कहानी मनोरंजक गुणों से भी पूर्ण है। वातावरण की चित्रात्मकता कहानी को सघन और उसके कथ्य को संवेद्य बनाती है। भाषा, शिल्प, अभिव्यक्ति, परिपूर्णता आदि सभी दृष्टिकोणों से विचार करने पर जयशंकर प्रसाद जी की 'ग्राम' कहानी निःसंदेह ही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानने योग्य है। प्रसाद की कहानियों में प्रेम भावुकता से नहीं, भावात्मक संवेदना के संस्पर्श से चित्रित हुआ है, अतः उसमें पाठकीय आस्था और विश्वास की सुरक्षा होती है।

समय और संख्या पर यदि विचार करते हैं तो 'उसने कहा था' कहानी 1915 ई० में प्रकाशित होती है और 'ग्राम' कहानी 1911 ईव में। जयशंकर प्रसाद की 'छाया' नामक कहानी संग्रह 1913 ई० में प्रकाशित होता है, जिसमें ग्यारह कहानियाँ हैं। समय और संख्या के आधार पर जयशंकर प्रसाद की कहानी संग्रह 'छाया' की सभी कहानियाँ 'उसने कहा था' कहानी से पहले लिखी गयी हैं। गुलेरी जी ने 'उसने कहा था' की भास्वरता के बाद चुप्पी साध ली। प्रेम के औदात्य और शिल्प की गरिमा को प्रतिष्ठित करने के बाद गुलेरी जी ने वैसी ही दूसरी कहानियाँ नहीं लिखीं, लेकिन प्रसाद जी ने भावना के स्तर पर अनेक ऐसी कहानियाँ रचीं जिनमें भावना के विस्तार को विभिन्न दिशाओं में विकीर्ण अरुणोदयकालीन किरणों की तरह देखा जा सकता है। 'गुंडा', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'देवरथ' आदि कहानियों में प्रेम लगातार अनेक छवियों में प्रकट होकर आकृष्ट करता है।

जयशंकर प्रसाद जी की 'ग्राम' कहानी वर्तमान में भी प्रासंगिक है। आज भी छल, प्रपंच, धूर्तता, चतुराई आदि से स्वार्थ सिद्धि ही सर्वत्र दृष्टिगोचर है। आदर्श प्रेम, त्याग और बलिदान की बात अब गले नहीं उतरती। 'उसने कहा था' कहानी में नायक–नायिका के क्षण मात्र के मिलन और बातचीत में नायक का प्रेम–बलिदान हवा में लग रहा है। नायिका अपनी गृहस्थी को ही बचाने का प्रयत्न करती है, प्रेम के प्रति वह उदासीन है। इस कहानी में भावुक आत्मोत्सर्ग है, लेकिन प्रसाद की कहानियों में भावात्मक आत्मोत्सर्ग है। 'उसने कहा था' में लहना सिंह मरता है, मरने के लिए पर 'गुंडा' कहानी में गुंडा लड़कर मरने के लिए विवश है, क्योंकि वह प्रेम करता हैय जिससे प्रेम करता है, उसकी रक्षा उसका कर्तव्य बन जाता है।

डॉ. सुलोचना कुमारी, प्रध्यापिका, पटेल त्रिमूर्ति महाविद्यालय, इस्लामपुर, पटना
तृतीय तल, विधा निलय, रामप्रसाद लेन, बेनी बगीचा, राजेन्द्र पथ, पटना–800001
मो. : 9801970949

अपभ्रंश भाषा और साहित्य का विकास

आलोक सिंह

हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आदि में तो समाज में प्रचलित बोली का एक ही रूप होती है। किन्तु जहाँ उसमें विद्वानों के द्वारा संस्कार किये जाने लगते हैं, और वह व्याकरणादि के नियमों से निबद्ध होने लगती है, जहाँ उसका स्वरुप जन-साधारण की बोली से भिन्न होता जाता है। वही बोली और भाषा के बीच का अन्तर है। प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाएँ कुछ कालतक एक साथ चलती हैं। प्राकृत बोलने वालों को संस्कृत भाषा भी समझ में आती है, और संस्कृत-वाले तो अपनी मातृभाषा प्राकृत को समझते ही हैं।

भाषा मानव जीवन के अस्तित्व और विकास की आधारशिला है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का भाषा विहीन होकर रहना सम्भव नहीं है। मनुष्य के भावों और विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही होती है। इन भाव-विचार राशियों का संरक्षण भी भाषा ही करती है। यह मानव जीवन का मूल है। इसलिए भाषा का विकास मानव-विकास है, और मानव का विकास भाषा-विकास है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में वाक् तत्व (भाषा) को जीव-जगत का मूल कारण बताया है। यही मनुष्य की मूल चेतना है।

मानवीय भाषा या भाषाओं की उत्पत्ति कब, कहाँ और कैसे हुई, इसका पता लगाना कठिन है। किन्तु इतना स्पष्ट है कि भाषात्मक ध्वनियों की योग्यता प्रकृति की एक देन है। पशु-पक्षियों में भी विविध ध्वनियों द्वारा अपनी मौलिक चेतनाओं जैसे भूख-प्यास, वेदना, वात्सल्यादि को प्रकट करने की क्षमता पायी जाती है। मनुष्य के मुख के भीतर कण्ठ, तालु, जिह्वा, दन्त, ओष्ठादि अवयवों की रचना इस प्रकार की है कि उनके द्वारा थोड़ी-बहुत नहीं असंख्य प्रकार की ध्वनियाँ प्रकट की जा सकती हैं। इन्हीं के प्रयोगों द्वारा मनुष्य ने नाना वस्तुओं के लिए पृथक्-पृथक् ध्वनियों का उपयोग किया होगा तथा अपनी भावनाओं व आवश्यकताओं को व्यक्त करने के लिए भी नाना प्रकार के उच्चारण किये होंगे। बस, यही मनुष्य की बोली की उत्पत्ति के

विषय में कहा जा सकता है। भाषा-शास्त्र के विद्वानों ने यह जानने का भी प्रयत्न किया है कि क्या मनुष्य-जातिकी आदिम बोली एक सी रही है? इसके लिए उन्होंने प्रचलित बोलियों और भाषाओं के स्वरुप को लेकर पूर्वकाल की दिशा में क्रमशः एकत्व की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया है। किन्तु यह प्रयास उन्हें संसार की समस्त भाषाओं के एक ही आदि स्रोत पर पहुँचाने में तो सफल नहीं हुआ, तथापि इसके द्वारा यह सुनिश्चित हो गया कि वर्तमान में प्रचलित समस्त भाषाओं के अपने-अपने परिवार थे (जैसे योरोपीय परिवार, द्राविड परिवार, सामी परिवार, हामीपरिवार, चीनी, तिब्बती व मंगोलो परिवार आदि। इन परिवारों की भाषाओं में कुछ ऐसी मौलिक विलक्षणताएँ हैं, जिनके एक ही स्रोत से विकसित होने की सम्भावना प्रमाणित नहीं होती। यहाँ हमारा प्रयोजन विशेष रूप से भारोपीय भाषा परिवार से है जो अपनी शाखा-प्रशाखाओं, उनके बोलने वालों की संख्या, उनका संसार में विस्तार एवं साहित्यिक विकास और उत्कर्ष की दृष्टि से सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण है। भाषा-शास्त्रियों की नवीनतम स्थापना यह है कि आजकल जितनी भाषाएँ यूरोप, ईरान और उत्तर भारत में प्रचलित हैं उन सबका विकास उस एक भारोपीय भाषा से हुआ है जो अनुमानतः आज से लगभग पाँच-सात सहस्त्र वर्ष पूर्व यूराल पर्वत की तराई के निवासियों में प्रचलित थी। उनकी संख्या-वृद्धि से उत्पन्न जीवन के साधनों की खोज की आवश्यकता के कारण वे वहाँ से चारों ओर फैलने लगे। उनका एक दल यूरोप के नाना देश-विदेशों में फैला एवं काल व परिस्थितियों के अनुसार अनिवार्य परिवर्तनों के द्वारा उनकी बोलियों ने बदलते-बदलते योरोप की विविध भाषाओं जैसे ग्रीक, लैटिन आदि और फिर अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी आदि का रुप धारण किया। एक दूसरा दल पूर्व की ओर बढ़ा और उसने ईरान में पहुँचकर हिन्द-ईरानी परिवार की भाषाओं को जन्म दिया जिससे प्राचीन फारसी तथा वैदिक भाशा की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार भारत की भूमि पर हमें सर्वप्राचीन साहित्यिक भाषा ऋग्वेद आदि वैदिक रचनाओं में प्राप्त होती है, जिसे हम आदिकालीन हिन्द-आर्य भाषा कहते हैं। इस प्रकार भारोपीय भाषा व हिन्द-ईरानी भाषा के अनुक्रम से उत्पन्न हुई इस हिन्द-आर्य भाषा के विकास का काल ई0 पू0 2000 अनुमानित किया जाता है। वैदिक भाषा के क्रमशः संस्कार होते-होते वह व्याकरण शुद्ध संस्कृत भाषा विकसित हुई, जो समस्त भारत में विद्वानों के बीच विचार-विनियम का माध्यम बनी और उसमें वह उत्कृष्ट साहित्य निर्मित हुआ, जिसकी आज भी भारत में ही नहीं, किन्तु समस्त संसार की विद्वत्-समाज में भारी प्रतिष्ठा है।

हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आदि में तो समाज में प्रचलित बोली एक ही रूप होती है। किन्तु जहाँ उसमें विद्वानों के द्वारा संस्कार किये जाने लगते हैं, और वह व्याकरणादि के नियमों से निबद्ध होने लगती है जहाँ उसका स्वरुप जन-साधारण की बोली से भिन्न होता जाता है। यही बोली और भाषा के बीच का अन्तर है। और इन्हें ही सामान्यतः प्राकृत और संस्कृत भाषाएँ कहा जाता है। ये दोनों भाषाएँ कुछ कालतक एक साथ चलती हैं। प्राकृत बोलने वालों को संस्कृत भाषा भी समझ में आती है, और संस्कृत-वाले तो अपनी मातृभाषा प्राकृत को समझते ही है। किन्तु आगे इनका विकासक्रम बदल जाता है। संस्कृत क्रमशः व्याकरण के नियमों और शिष्ट प्रयोगों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों से जकड़ जाती है, जबकि प्राकृत प्रकृति के नियमानुसार सुबोधता व सरल उच्चारण की प्रवृत्तियों द्वारा बदलती है। कबीरदास ने ठीक ही कहा है-

''संसकिरत है कूल जल
भाषा बहता नीर।''

इस प्रकार स्वच्छन्द-विहारिणी जनवाणी अर्थात् प्राकृत तथा अनुशासन से अवरुद्ध संस्कृत के बीच उत्तरोत्तर भेद उत्पन्न होने से एक-दूसरे के बहुत दूर पड़ जाती है और संस्कृत की रचनाएँ प्राकृत जनों के लिए दुर्बोध हो जाती हैं। तब जो समाज हितैशी विद्वान् और सन्त अपने साहित्य द्वारा जनता को सम्बोधित करना चाहते हैं वे संस्कृत को छोड़ लोकप्रिय प्राकृतों में ग्रन्थ-रचना करने लगते हैं। और इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत साहित्य एक-दूसरे से भिन्न प्रकट होने लगते हैं। कालिदासादि महाकवियों द्वरा रचित नाटक उस परिस्थिति के प्रमाण हैं जब स्त्रियाँ, बालक व सेवक-सेविकाएँ तथा धन्वा-रोजगार करने वाले अशिक्षित व्यक्ति अपनी प्राकृत बोली बोलते हैं, जबकि राजा, धनी व विशेष विद्वान् सुशिक्षित व्यक्ति संस्कृत बोलते हैं और उनके परस्पर वार्तालाप में कोई बाधा नहीं पड़ती। भारतीय आर्यभाषा का यह बिखराव वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो गया था। ऋग्वेद के वाक्सूक्त तथा अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि लोग देश के नाना क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं। अशोक के शिलालेखों से भी प्रमाणित होता है कि एक ही प्राकृत भाषा उत्तर-पश्चिम और पूर्व के प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोली-समझी जाती थी।

प्राप्त साहित्य के प्रमाणानुसार प्राकृत भाषा को विशेष प्रोत्साहन तब मिला जब ई0 पू0 छठी शती में महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुषों का अवतार हुआ और उन्होंने अपने-अपने धर्मप्रचार सम्बन्धी उपदेशों के लिए उस समय उनकी विहारभूमि में सुप्रचलित जनभाषा प्राकृत को अपनाया। उन्होंने अपने शिष्यों को भी आदेश दिया कि वे उसी भाषा में उनके उपदेशों की ग्रन्थ-रचना करें। यह भाषा मगध देश की होने से 'मागधी' तथा उसके सीमासे लगे हुए शूरसेनादि प्रदेशों के सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रचलित बोलियों से भी प्रभावित होने के कारण 'अर्द्ध-मागधी' कहलायी। दुर्भाग्यत: जिस रुप में उक्त उपदेशों को प्रथम ग्रन्थ-रचना हुई होगी वह रूप हमें अब उपलब्ध नहीं है। बुद्ध के उपदेज़ों पर आधारित पालि साहित्य का वर्तमान स्वरुप उसे बुद्ध से शतियों पश्चात् लंका में प्राप्त हुआ था, तथा महावीर के उपदेशों पर आधारित द्वादशांग आगम आज जिस रूप में उपलब्ध है, वह रूप ई0 पाँचवीं शती में हुई वल्लभीपुर की वाचना द्वारा प्राप्त हुआ है। इस कारण ये रचनाएँ अपने लिखे जाने के देश और काल के प्रभाव से बच नहीं सकीं। तथापि उनमें हमें प्राकृत भाषा का जो स्वरुप प्राप्त होता है वह प्राकृत का आदिमकाल तथा हिन्द-आर्य भाषा का द्वितीय या मध्यम स्तर माना जाता है। यह मध्यमस्तर अपने आदि रूप में यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत भाषा की अपेक्षा बहुत भिन्न और सुगम है, तथापि उसमें संस्कृति की ध्वनियाँ बहुत-कुछ समान पायी जाती हैं। यह स्तर हमें ई0 की द्वितीय-तृतीय शती तक रचे गये ग्रन्थों, जैसे पालि त्रिपिटक, अश्वघोश के नाटक तथा राजा अशोक, खारवेल व आन्ध्र नरेशों के शिलालेखों में प्राप्त होता है। इसके पश्चात् मध्ययुगीन भाषा का द्वितीय स्तर प्रारम्भ हुआ। इसकी क्रान्तिकालीन परिस्थिति महाकवि भास के नाटकों में देखी जा सकती है। इसका विशेष लक्षण यह है कि शब्दों

के क, ग, त, द आदि अल्पप्राण वर्गों का लोप होकर उनके स्थान में मात्र अ, इ आदि स्वर शुद्ध अथवा उच्चारण सौकर्य हेतु य से मिश्रित पाये जाते हैं तथा ख, घ, थ, ध आदि महाप्राणों के स्थान में ह का आदेश कर दिया जाता है। इस प्रवृत्ति से प्रभावित वह समस्त प्राकृत साहित्य है जो विशेष रूप से तीसरी-चौथी शती से लेकर छठी-सातवीं शती तक रचा गया। यह मध्य व्यंजनों के लोप की प्रक्रिया महाराष्ट्री प्राकृत का विशेष लक्षण है, और उसकी प्रतिनिधि रचनाएँ कालिदासकृत नाटकों के प्राकृत अंश, सेतुबन्ध, गाथा-सप्तशती, गउडवहो आदि हैं।

हिन्द-आर्य भाषा के मध्यकाल का तृतीय स्तर प्रस्तुत विषय के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस स्तर का ही प्रतिनिधित्व करने वाली अपभ्रंश भाषा और उसका साहित्य है। अपभ्रंश का अर्थ है भ्रष्ट अथवा विकृत और इस सम्बन्ध में इस शब्द का सबसे प्रथम प्रयोग ई0 पू0 द्वितीय शती में रचित पतंजलिकृत महाभाष्य में पाया जाता है। वहाँ उन्होंने कहा है कि एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश होते हैं, जैसे शुद्ध संस्कृत शब्द 'गौ' के लोक प्रचलित अपभ्रंश रुप है गावी, गोणो, तोता, गोपोतलिका इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि उक्त काल में संस्कृत के विकृत व लोकप्रचलित शब्दों को अपभ्रंश कहा जाता था। किसी भाषा की अपभ्रंश कहने वाले प्रथम साहित्य-शास्त्री दण्डी हैं जो लगभग पाँचवी-छठीं शती में हुए। उन्होंने अपने 'काव्यादर्श' नामक ग्रन्थ में वा्मय को चार प्रकार का बतलाया है- संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्रित। इससे प्रतीत होता है कि दण्डी के समय अपभ्रंश भाषा में इतनी काव्य रचना हो चुकी थी कि उसे उन्होंने प्राकृत से भिन्न तथा संस्कृत के भी समकक्ष स्थान प्रदान करना आवश्यक समझा। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी कह दी है कि आभीरादि लोगों की भाषा अपभ्रंश कही जाती है। और इसके साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि शास्त्र में संस्कृत से भिन्न शब्द अपभ्रंश माने गये हैं। यहाँ उनका अभिप्राय स्पष्टत: पूर्वोक्त महाभाष्य के उल्लेख से है।

दण्डी ने जो अपभ्रंश आभीरों की भाषा कही है वह उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। आभीरोंका उल्लेख हमें ई0 की दूसरी शताब्दी में पश्चिम भारत में राज्य करने वाले शक जातीय महाक्षत्रपों के शिलालेखों में प्राप्त होता है। रुद्रसिंह प्रथम का एक आभीर सेनापति रुद्रभूति था जिसने उत्तर सौराष्ट्र में एक तालाब खुदवाया था। तीसरी शती में हमें आभीर जातीय राजा-महाराजाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। नासिक से प्राप्त एक शिलालेख में आभीर शिवदत्त के पुत्र राजा ईश्वर सिंह का उल्लेख आया है इसे इतिहासकारों ने आभीर राजवंश का स्थापक माना है और यह भी अनुमान किया है कि ई0 248-49 से प्रारम्भ होने वाले जिस संवत्सर को कलचुरि या चेदि संवत् कहा जाता है वह इसी ईश्वरसिंह के राज्याभिषेक से प्रारम्भ हुआ हो तो आश्चर्य नहीं। इस बात के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि इसी शती में आभीरों का प्रभाव पंजाब, राजपूताना व गुजरात से लेकर कोंकण तक फैल गया था। एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इतिहासज्ञों के मत से आभीर पूर्व ईरान से आये होंगे। हिरात और कन्धार के बीच जो आबीरवान नामक क्षेत्र है वह भी इन आभीरों का निवास स्थान रहा होगा। जिसे हम आज हरियाणा प्रदेश कहते हैं उसका यह नाम 'आभीरकानाम्' से प्राकृत रुपान्तर अहीरयाण होकर अन्तत: हरयाणा के रूप में प्रकट हुआ है। अपभ्रंश भाषा की एक विशेषता यह है कि उसकी समस्त पद्यात्मक रचनाओं में ऐसा पादान्त यमक

अर्थात् तुकबन्दी पायी जाती है जो पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत काव्यों में अप्राप्य है। यह तुकबन्दीपन भी आभीरों की भाषा पर ईरानी का प्रभाव व्यक्त करता है, क्योंकि उस काल की ईरानी में और उसके पश्चात् की फारसी में तुकबन्द कविता शैली पायी जाती है। तुकबन्दी के साथ-साथ पद्धडिया, रड्डा आदि अनेक नये छन्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश काव्य की विशेषता है। इस छन्द-वैचित्रय को समझने के लिए स्वयंभूकृत छन्दः शास्त्र तथा नायनन्दीकृत सुदंसणचरिउ (वि0 सं0 1100) देखने योग्य है, क्योंकि उसमें 92 वे भिन्न-भिन्न वृद्धों का प्रयोग किया गया पाया जाता है।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अपभ्रंशका उल्लेख उसे उकार-बहुल भाषा कहकर किया है। यह लक्षण उसके व्याकरण व रचना को देखने से पूर्णतः यथार्थ सिद्ध होता है। अपभ्रंश में अकारान्त संज्ञाओं के एकवचन कर्त्ता व कर्म कारक का प्रत्यय 'उ' है। उनके पंचमी व शष्ठी रूप भी हु या हुँ लगाकर बनते हैं। अकारान्त व इकारान्त स्त्रीलिंग बहुवचन भी उकारान्त पाये जाते हैं। सर्वनामों में उत्तमपुरुष एकवचन-का रुप 'हउँ' है और उसका सम्बन्ध कारक मध्यमपुरुष रूप तुहुँ, तुम्हारउ या तुहारउ व तुम्हासु और अन्य पुरुष सम्बन्धकरक में तासु व ताहु रुप बनते हैं। क्रियाओं में भी वर्तमानकाल में उत्तमपुरुष एकवचन व बहुवचन में ऊँ व हुँ लगते हैं। भविष्यकाल ईसु व ईहु तथा आज्ञार्थकरुप धातु में हु लगाकर बनाया जाता है। ये ही तो वे रुप है जिनका भाषा में बाहुल्य पाया जाता है और ये ही अपभ्रंश को प्रधान विशेषताएँ हैं, जिनके द्वारा इस भाषा की सरलता से पहचान होती है।

प्राकृत-अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त शब्दों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- तत्सम, तद्भव व देशी। संस्कृत के अविकल शब्द तत्सम कहलाते हैं जिनमें संस्कृत से कुछ वर्ण-विकृति पायी जाती है वे तद्भव हैं। तथा जो शब्द संस्कृत से इतने अधिक भिन्न हैं या विकृत हो गये हैं कि प्राकृत व्याकरण के नियमों से उनकी व्युत्पत्ति सिद्ध नहीं होती और न अर्थ की सुसंगति बैठती एवं सामान्यतः उनका प्रयोग भी बहुलता से नहीं पाया जाता उन्हें देशी शब्द कहा गया है। भाषाशास्त्रियों का अनुमान है कि वे आर्येतर द्राविड़-आदि भाषाओं से आये होंगे जिनका प्रचार लोकवाणी में हो गया होगा। यहाँ उदाहरण के लिए केवल प्रथम कडवक की शब्दालिका उक्त तीन वर्गों में विभाजन किया जाता है।

1. तत्सम शब्द-भाव, पंचगुरु, कलि, मल, गुण, फल, कुमार, चारु, अलंकार, लीला, कोमल, बहु, हाव, भाव, छन्द, रस, अंग, भंगि, देवी, कर, असि, जल, धवल।
2. तद्भव शब्द- वज्जिअ, भरिअ, सुय, णाय, चरिअ, दुविह, पय, महकव्व, विब्भम, सुपसत्थ, अत्थ, सव्व, विणाण, णीसेस, देसभास, लक्खण, विसिट्ठ, मग्ग, पाण, दह, णव, विग्गह, तअ, चउदह, पुव्विल्ल, दुवालस, जिण, वयण, विणिग्गय, सत्त, वायरण, वित्ति, पायडिय, णाम, महु, मणोहिराम, सिरि, कण्हराय, यल, णिहिय, बाहिणि, दुग्गयरि, हर, सिहर, तय, मेहउल, पविउल, मण्णखेड, णयरि।

3. देशोंशब्द- णिहेलण, दिहि, रुन्द, णिरु।

इस वर्गीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि शब्दावलि की दृष्टि से अपभ्रंश में तद्भव शब्दों की बहुलता पायी जाती है, किन्तु तत्सम शब्दों की भी कमी नहीं है, तथा देशीशब्द यत्र-तत्र ही आते हैं। तद्भव शब्दों में जो विकृति पायी जाती है वह प्रायः चार-छह नियमों को ध्यान में रखने से ही सरलता से समझ में आ जाती है। वे नियम हैं-

1. 'न' का 'ण' में मूर्धन्यीकरण।
2. संयुक्त व्यंजनों का समीकरण। जैसे वर्जित-वज्जिय, काव्य-काव्व, विभ्रम-विब्भम आदि।
3. शब्द के मध्यवर्ती अल्पप्राण वर्गों जैसे क, ग, च, ज, त, द, प ,ब , का लोप व उनके स्थान पर य का आदेश। जैसे- पद-पय, वदन-वयण, व्याकरण-वायरण, प्रसीदतु-पसियउ आदि।
4. शब्द के मध्यवर्ती महाप्राण वर्गों जैसै- ख, घ, थ, ध, फ, भ, श के स्थान पर 'ह' का आदेश। जैसे द्विविध - दुविह, आभाश - आहास, दश - दह, शोभमान - सोहमाण, मनोभिराम - मणोहिराम, मेघ - मेह आदि।
5. स्वरों में; ऐ, औ व विसर्ग का प्रयोग यहाँ नहीं होता।; के स्थान में अ इ या उ, ऐ के स्थान में ए या अइ और औ के स्थान में ओ या अउ हो जाता है। संयुक्त व्यंजन से पूर्व दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है तथा उच्चारण-सौकर्य हेतु स्वर-परिवर्तन भी हो जाता है। यह भी ध्यान रहे कि अपभ्रंश में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व ए, ओ भी होते हैं।
6. व्यंजनों में पंचम वर्ण के स्थान में प्रायः अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है तथा ष और श के स्थान में स आदेश हो जाता है।

इन नियमों तथा व्याकरणात्मक संज्ञा व क्रियाओं के सरलीकृत रुपों पर ध्यान देने से अपभ्रंश भाषा का प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं के बीच का क्रान्तिकारक स्वरुप समझ में आने लगता है।

आलोक सिंह, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय–793022
मो0 नं0 : 7308473440

वृंदावन में ज्ञान हारा और भक्ति जीती

आचार्या रेखा कल्पदेव

वृंदावन में एक स्थान ऐसा है, जहाँ ज्ञान हारा और भक्ति जीती। इस प्रसंग ने लोक मानस में यह बैठाया कि ज्ञानार्जन से अधिक ज्ञानानुभव महत्वपूर्ण होता है। बुद्धि से ज्यादा भावनाएं प्रमुख होती हैं। मस्तिष्क से अधिक दिल की बात सुननी चाहिए। इस स्थान को ज्ञान गूदड़ी कहते हैं। लोक में यह प्रसंग उद्धव–गोपी संवाद के रूप में जाना जाता है। भक्तिकालीन कवियों ने इस प्रसंग से यह स्थापित किया कि भगवान को पाने का सबसे सहज और सरल मार्ग भक्ति का है। शास्त्रों–पुराणों में यह प्रसंग नाम मात्र है। महाकवि सूरदास ने इस प्रसंग को विस्तार दिया।

अनेक वर्षों बाद जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी भज गोविंद, भज गोविंद मूढ़मते, गाकर स्थापित किया कि भगवान को पाने का ज्ञानमार्ग से ज्यादा सहज भक्तिमार्ग है।

बात उस समय की है जब– कृष्ण गुरु संदीपन के यहाँ ज्ञानार्जन के लिए गये थे तब उन्हें ब्रज की याद सताती थी। वहाँ उनका एक ही मित्र था उद्धव, वह सदैव ज्ञान–नीति की, निर्गुण ब्रह्म और योग की बातें करता था। श्रीकृष्ण का उद्धव से परिचय मथुरा में हुआ। उद्धव हर संदर्भ में नीतियों का सहारा लेते। परिणामस्वरूप उनसे बात करने वाला निरुत्तर रह जाता। उनके गहन अध्ययन और विषद ज्ञान प्रभावित लोग उन्हें देवताओं के गुरु बृहस्पति

श्रीकृष्ण की बात सुनकर उद्धव के भीतर ज्ञानजन्य गर्व हिलोरें लेने लगा। उन्होंने ब्रज जाकर गोपियों को समझाने की बात मान ली। उन्होंने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया कि वे गोपियों को समझाकर कुछ दिन में ही लौट आएंगे। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर उद्धव वृंदावन पहुंचे। उद्धव के आगमन का समाचार पूरे ब्रज में फैल गया। नंद बाबा के घर कुछ समय बिताने के बाद उद्धव गोपियों से मिलने पहुंचे। उद्धव ने देखा गोपियां बेहाल हैं। उद्धव को यह सब विचित्र लगा गोपियों की दशा पर वे मन ही मन मुस्कुरा उठे।

का शिष्य मानते। पहले परिचय में ही उद्धव ने अपनी ज्ञानपूर्ण बातों से श्रीकृष्ण को प्रभावित किया। श्रीकृष्ण को यह अनुभूति थी कि उद्धव को ज्ञान का गर्व है।

शंका निवारण के लिए श्रीकृष्ण ने युक्ति निकाली। एक दिन उन्होंने उद्धव से बात करते हुए कहा कि मैं मानता हूँ कि ज्ञान का मार्ग सर्वोम है। ज्ञान से व्यक्ति के मोहपाश खुल जाते हैं। माया के बंधनों से उसे मुक्ति मिल जाती है। इस तरह मोह-माया उसे दुख नहीं पहुंचाते। उद्धव को अपनी बात गंभीरता से सुनते देख गंभीर लंबी सांस लेकर श्रीकृष्ण ने कहा- उद्धव जी, क्या यह संभव है कि आप ब्रज जाकर गोपियों को समझाएँ। उन्हें बताएँ कि दुनिया का सार ज्ञान है, प्रेम नहीं। ज्ञान से प्राप्ति होती है, भावनाओं से नहीं। ज्ञान से शांति मिलती है, जबकि प्रेम अशांत करता है। ज्ञान दुखों से ऊपर उठाता है और प्रेम दुखों में डुबोता है। ज्ञान समस्याओं का अंत है और प्रेम दुखों का आरंभ। ज्ञान और नीतियों के सहारे आप गोपियों को समझा सकते हैं कि प्रेम निरा पागलपन है।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर उद्धव के भीतर ज्ञानजन्य गर्व हिलोरें लेने लगा। उन्होंने ब्रज जाकर गोपियों को समझाने की बात मान ली। उन्होंने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया कि वे गोपियों को समझाकर कुछ दिन में ही लौट आएंगे। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर उद्धव वृंदावन पहुंचे। उद्धव के आगमन का समाचार पूरे ब्रज में फैल गया। नंद बाबा के घर कुछ समय बिताने के बाद उद्धव गोपियों से मिलने पहुंचे। उद्धव ने देखा गोपियां बेहाल हैं। उद्धव को यह सब विचित्र लगा। गोपियों की दशा पर वे मन ही मन मुस्कुरा उठे। ज्ञान गर्व पीड़ित हो उन्होंने आंखें मूँद लीं। आगे बढ़ने पर उन्हें सखियाँ से घिरी राधा दिखीं। अपूर्व सौंदर्य, सौंदर्य से अभिभूत उद्धव ने अपने को कृष्ण सखा बताकर राधा को प्रणाम किया। उद्धव ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा कि मैं आपके लिए उनका संदेश लाया हूँ। वह सोच रहे थे कि श्रीकृष्ण का संदेश सुनते ही गोपियाँ, माँ यशोदा और नंदबाबा की तरह आनंद से भर उठेंगी। लेकिन राधा तो लगता है मद में हैं। उन्हें किसी की चिंता ही नहीं। उद्धव के अभिमान ने करवट ली। उनके मन ने कहा-अपने ज्ञान से वे कितने मूर्खों का जीवन बदल चुके हैं। फिर ये गोपियाँ क्या हैं? आखिर हैं तो स्त्रियाँ ही। प्रेम ने इनका मस्तिष्क दूषित कर दिया है। इनसे हार मानकर लौटना उचित नहीं।

उद्धव ने एक बार फिर बात शुरू करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि आपको श्रीकृष्ण के पास मथुरा कोई संदेश भेजना हो तो बताइए। इस पर राधा बोल पड़ीं- उद्धव जी हमारे हृदय प्रेम से भरे हैं। इसलिए हमें किसी संदेश या संदेशवाहक की आवश्यकता नहीं। प्रेम संदेश तो हृदय सुन लेता है। हम तो नित्य अपने मनमोहन को अपना संदेश सुनाती और उनका सुनती हैं। उद्धव को लगा राधा विक्षिप्त हो चुकी हैं। इसीलिए ऐसी निरर्थक बातें कर रही हैं। उद्धव की खीझ बढ़ गई। उन्होंने कहा जितना प्रेम तुम श्रीकृष्ण से करती हो, उतना परम ब्रह्म से करतीं तो तुम्हारा कल्याण हो जाता। तुम्हें दुख नहीं भुगतना पड़ता। परम ब्रह्म निर्गुण निराकार हैं। वह अपने भक्तों के

साथ सदैव रहते हैं।

मानवीय प्रेम दुख देता है जबकि ईश्वरीय प्रेम आनंद। विवेक की आंखें खोलो। परम ब्रह्म सृष्टि का नियंता है। उसका निर्माता और पालक भी। आनंद ही नहीं, वह परमानंद प्रदाता है। वह स्थान पर उपस्थित है। यहाँ तक कि हमारे और तुम्हारे भीतर भी वह उपस्थित है। उसे पाने के लिए बस शांतचित्त आंख मूंदकर बैठने, ध्यान लगाने की जरूरत है। उद्धव ने गोपियों को समझाने की दृष्टि से कहा–तुम्हारा मन चंचल और सांसारिक है। माया के अधीन है, इसलिए तुम अपने को कृष्ण से अलग मान रही हो। चंचल मन शारीरिक और मानसिक विकार उत्पन्न करता है। मन की चंचलता तनाव का कारण होती है। तन एवं मन को दुर्बल करती है। मन को एकाग्र करो। उसे निर्गुण निराकार ब्रह्म में लगाओ। इससे मन:स्थिति ठीक होगी। ऋषि मुनि इसे योग कहते हैं।

योग मानसिक शांति देता है। इसी से ध्यान लगता है। योगीजन ध्यान के माध्यम से ही ईश्वर की प्राप्ति करके परमानंद पाते हैं। मोक्ष और स्वर्ग पाते हैं। उद्धव आगे कुछ कहते तभी एक गोपी बोल पड़ी उद्धव जी, हम समझ नहीं पा रहे हैं कि आप हमें क्या समझा रहे हैं। प्यारे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए हम अपनी आंखें रात दिन खोले रहते हैं और तुम हमें आंख मूंदकर ध्यान लगाने की सीख दे रहे हो। हमें मानसिक शांति का पाठ पढ़ा रहे हो। उद्धव निरुत्तर हो गये। गोपियों के आगे वह ठगे से खड़े रहे। जीवन में अब तक उनसे इस तरह की बातें किसी ने नहीं की थीं। वे सोचने लगे श्रीकृष्ण के प्रेम में गोपियाँ इस तरह बंधी हैं जैसे कांटे में मछली। गोपियों को श्रीकृष्ण के प्रेम से निकालना कठिन है। समझाने की दृष्टि से उन्होंने अंतिम प्रयास करते हुए कहा–ईश्वर की ओर मन लगाने से धन, रूप, ईश्वर और मुक्ति, तुम जो चाहोगी, तुम्हें मिल जायेगा। उद्धव आगे कुछ बोलते कि गोपियां बोल पड़ीं–उद्धव जी, हमें ना तो धन संपदा चाहिए और ना ही मुक्ति।

हम स्वर्ग भी नहीं चाहते और ना ही हमें भोग विलास चाहिए। हम तो चाहते हैं कि जन्म जन्मांतर तक मनमोहन के प्रति हमारा प्रेम इसी तरह बना रहे। हम तो बार–बार जन्म लेकर भी उनके प्रेम में ही डूबना चाहते हैं। उद्धव को लगा कि गोपियों की प्रेम बयार में उनका ज्ञान तिनके की तरह उड़ रहा है। तर्क शक्ति जवाब देने लगी है। उद्धव ने सोचा– श्रीकृष्ण के प्रेम में गोपियाँ इस तरह डूबी हैं कि इन्हें संसार का ज्ञान ही नहीं रह गया। सांसारिक आचरण से यह ऊपर हो गई हैं। गोपियों के प्रेम के प्रति उद्धव के मन में आदरभाव पनप उठा। ज्ञान से बंजर हुए मस्तिष्क में प्रेम का अंकुर फूट पड़ा। ज्ञान की गूदड़ी में उन्हें प्रेम का हीरा मिल गया। उद्धव शांत हो गये। उन्हें लगा कि उन्होंने ज्ञानार्जन तो बहुत किया, लेकिन ज्ञानानुभव आज ही हुआ। उनका मन श्रद्धा से भर उठा।

मस्तक वृंदावन की प्रेम भूमि पर नत हो गया। श्रद्धावनत उद्धव के हाथ राधा के पैरों पर जा टिके। राधा के पैरों पर उद्धव के हाथ देख गोपियां हतप्रभ रह गईं। गोपियाँ आश्चर्य से भर उठीं। उद्धव प्रेम में डूबे थे। उनका हृदय प्रेमसागर में गोते लगा रहा था। उन्हें अपनी दशा का ज्ञान नहीं रह

गया। बुदबुदाते हुए उद्धव ने कहा जन्म-जन्मांतर वृंदावन में ही मेरा जन्म हो। कृष्ण के प्रति मेरा प्रेम भी गोपियों जैसा ही रहे। मानव रूप में जन्म न मिले तो भी वृंदावन के पशु-पक्षी, लता-वृक्षके रूप में जन्म लेता रहूँ। मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। राधा ने उन्हें उठाया। उद्धव की आंखों से प्रेम के अश्रु बह रहे थे। वे वृंदावन की धूल में लौट गये। भक्त कवि सूरदास जी ने कहा है कि –

उधो, मन न भए दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस॥
सिथिल भईं सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस॥

आचार्या रेखा कल्पदेव, विशेषज्ञ : ज्योतिष, प्रश्न शास्त्र
मो. : 8178677715, 9811598848, ई–मेल : rekhakalpdev@gmail.com

✧ ✧ ✧

रचनाकारों से अनुरोध

- प्रेषित रचनाएँ मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
- रचनाएँ ए-4 आकार के पेज पर टंकित होना चाहिए।
- रचना क्रुतिदेव 010 फॉन्ट में ही भेजें।
- रचना वर्ड फॉर्मेट में ही भेजें।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय तथा अपना एक पासपोर्ट आकार का फोटो भी भेजें।
- रचना के साथ अपना फोन नं. अवश्य दें।
- रचनाएँ किसी भी स्थिति में लौटाना संभव नहीं है। अत: रचनाकार रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।
- रचनाएँ sahityayatra@gmail.com पर ही भेजें।
- ई-मेल भेजने के क्रम में विषय अवश्य लिखें।

एक राष्ट्र-एक भाषा का समाधान गाँधी दर्शन में

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को इस बात का अत्यधिक सदमा था कि भारत जैसे बड़े और महान राष्ट्र की कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। अतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने विखंडित पड़े संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बांधने के लिए, उसे संगठित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अहसास करते हुए कहा था- 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।' उन्होंने भारत वर्ष के इस गूंगेपन को दूर करने के लिए भारत के अधिकतम राज्यों में बोली एवं समझी जाने वाली हिन्दी भाषा को उपयुक्त पाकर संपूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित, स्थापित किया।

भारत विभिन्नताओं में एक एकता के सूत्र से संचालित राष्ट्र है, जहाँ बोली, खानपान, संस्कृति, समाज एवं जातिगत व्यवस्थाओं का जो ताना-बाना बना हुआ है वह अनेकता में एकता के दर्शन करवाता हैं। ऐसे में हिंदी दिवस के दिन विज्ञान भवन से भारत के वर्तमान गृहमंत्री अमित शाह द्वारा एक राष्ट्र-एक भाषा के महत्व को दर्शाते हुए एक राय रखी जिसकी आज आवश्यकता भी है और अनिवार्यता भी। क्योंकि आज विश्व में भारत एक ऐसा देश है जिसकी एक प्रतिनिधि भाषा नहीं हैं। और भाषा के रूप में हिन्दी जनमानस की स्वीकार्य भाषा है यह भी कटु सत्य हैं। एक देश - एक भाषा की मांग एक लम्बे समय से इस भारत भूमि पर उठाई जा रही है किन्तु तथाकथित राजनैतिक कारणों के चलते हमेशा ही ठन्डे बस्ते में इस मांग को डाल दिया जाता रहा है। जबकि भाषा के समावेशी संघर्ष को अपना स्थान दिलाने के लिए प्रतिबद्धता से यदि किसी लड़ाई की शुरुआत हुई तो वह सन 1918 के मार्च की 28 तारीख थी। जब मोहनदास करमचंद गाँधी यानी महात्मा गाँधी ने मध्यप्रदेश के इंदौर में हिंदी साहित्य समिति भवन की नींव रखते हुए इसे राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प लिया था।

स्वाधीनता संघर्ष के दौरान ही भारतीय जनता यह चाहने लगी थी कि हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो और हमारा अपना, खुद का शासन हो। तब उसके साथ-साथ अपनी भाषा को उचित स्थान देने के लिए भी वह जागृत

होने लगी। उसे यह विदित होने लगा कि शारीरिक दासता की अपेक्षा मानसिक गुलामी अधिक भयंकर एवं घातक होती है। इस अनुभूति के कारण ही आधुनिक काल में अहिन्दी-भाषियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने में अपना जीवन स्वाहाकर दिया। क्या इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि बह्म समाज के नेता बंगला-भाषी केशवचंद्र सेन से लेकर गुजराती भाषा-भाषी स्वामी दयानंद सरस्वती ने जनता के बीच जाने के लिए 'जन-भाषा', 'लोक- भाषा' हिन्दी सीखने का आग्रह किया और गुजराती भाषा-भाषी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मराठी-भाषा-भाषी चाचा कालेलकर जी को सारे भारत में घूम-घूमकर हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने का आदेश दिया। सुभाषचंद्र बोस की 'आजाद हिन्द फौज' की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही थी। श्री अरविंद घोष हिन्दी-प्रचार को स्वाधीनता-संग्राम का एक अंग मानते थे। नागरी लिपि के प्रबल समर्थक न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र ने तो ई. सन् 1910 में यहाँ तक कहा था - यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ, 'साधु हिन्दी' में वार्तालाप करूंगा। बंकिमचंद्र चटोपाध्याय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने भी हिन्दी का समर्थन किया था। इन अहिन्दी-भाषी-मनीषियों में राष्ट्रभाषा के एक सच्चे एवं सबल समर्थक हमारे पोरबंदर के निवासी साबरमती के संत राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी थे।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को इस बात का अत्यधिक सदमा था कि भारत जैसे बड़े और महान राष्ट्र की कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। अतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने विखंडित पड़े संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बांधने के लिए, उसे संगठित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अहसास करते हुए कहा था- 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।' उन्होंने भारत वर्ष के इस गूंगेपन को दूर करने के लिए भारत के अधिकतम राज्यों में बोली एवं समझी जाने वाली हिन्दी भाषा को उपयुक्त पाकर संपूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित, स्थापित किया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के समान बंगाल के चिंतक आचार्य श्री केशवचंद्र सेन ने भी 'सुलभ-समाचार' पत्रिका में लिखा था- 'अगर हिन्दी को भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज में ही यह एकता सम्पन्न हो सकती है।' अर्थात् हिन्दी ही खंडित भारत को अखंडित बना सकती है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विखंडित भारत राष्ट्र को अखंडित बनाने के लिए राष्ट्रभाषा के सच्चे एवं प्रबल समर्थक तो थे लेकिन पराधीनता के समय में, अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के युग में उनके दिमाग में राष्ट्रभाषा की संकल्पना निश्चित थी। अपने इसी दर्शन के कारण ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गुजरात-शिक्षा-सम्मेलन के अध्यक्षीय-पद से राष्ट्रभाषा के प्रसंग में प्रवचन देते हुए राष्ट्रभाषा की व्याख्या स्पष्ट की थी। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रभाषा का लक्षण स्पष्ट किया था। राष्ट्रपिता गांधीजी के शब्दों में देखिए - 'राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो। जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम भाषा बनने की शक्ति रखती हो। जिसको बोलने वाला बहुसंख्यक समाज हो, जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो। अंग्रेजी किसी तरह से इस कसौटी पर खरी नहीं उतर पाती।' इस प्रकार राष्ट्रपिता

महात्मा गांधी ने तत्कालीन अंग्रेजी-शासनकाल की अंग्रेजी-भाषा की तुलना में एकमात्र हिन्दी-भाषा में ही राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा (लिंक लेंगवेज) एवं राजभाषा होने के सामर्थ्य का दर्शन किया था।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के इस सामर्थ्य- राष्ट्र के जन-जन को एक करने की शक्ति, बहुजन समाज की 'जनभाषा' होने के कारण ही दक्षिण अफ्रिका के प्रवास दौरान ही राष्ट्रभाषा-समस्या पर व्यवस्थित रूप से सोच लिया था और उन्होंने घोषणा भी कर दी थी- स्वराज करोड़ों भूखे मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों और दलितों और अन्त्यजों का हो और उनके लिए तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है, करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली थी वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी।

गाँधी जी के अनुसार राष्ट्रभाषा राष्ट्र की अखंडितता की तो नींव है लेकिन वे उसे स्वतंत्रता प्राप्ति का माध्यम भी समझते थे। मैकाले ने ही अंग्रेजी-शिक्षा के प्रचार के द्वारा भारतीयों को मानसिक स्तर पर परतंत्र बनाने का श्री गणेश किया था। भारतीयों को इस वैचारिक परतंत्रता में से बाहर निकालने के लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ई. सनें 1918 में हिन्दी

हिन्दी के सवाल को गांधी जी केवल भावनात्मक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं मानते थे, अपितु उसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप में भी देखने पर जोर देते थे। 10 नवम्बर, 1921 के 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा हिन्दी के भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्व की बात छोड़ दें तो भी यह दिन प्रतिदिन अधिकाधिक आवश्यक मालूम होता जा रहा है कि तमाम राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को हिन्दी सीख लेनी चाहिए और राष्ट्र की तमाम कार्यवाही हिन्दी में ही की जानी चाहिए।

साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बनकर ही अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी-भाषा के प्रचार-प्रसार की एक विस्तृत आयोजना की। जिसके कार्यान्वय की शुरुआत उन्होंने अपने घर से करते हुए बेटे देवदास को ई.सन् 1918 में शिक्षकों के एक दल के साथ दक्षिण भारत भेजा था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वयं दक्षिण-भारत का प्रवास करके, वहां के लोगों में राष्ट्रभाषा के प्रति जागृति लाने के अनेक प्रयत्न किये थे। दूसरे शब्दों में कहें तो संपूर्ण दक्षिण-भारत प्रदेश में राष्ट्रभाषा-आंदोलन चलाया था। इस राष्ट्रभाषा-आंदोलन में सफलता की कम संभावना देखते हुए उन्होंने खुद अपने प्रचारक को ढाढ़स बंधाते हुए एक पत्र में लिखा था- 'जब तक तमिल प्रदेश के प्रतिनिधि सचमुच हिन्दी के बारे में सख्त नहीं बनेंगे, तब तक महासभा में से अंग्रेजी का बहिष्कार नहीं होगा। मैं

देखता हूँ कि हिन्दी के बारे में करीब-करीब खादी के जैसा हो रहा है। वहां जितना संभव हो, आंदोलन किया करो। आखिर में तो हम लोगों की तपस्या और भगवान की जैसी मरजी होगी वैसा ही होगा।' इस प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का दक्षिण भारत के राज्यों में राष्ट्रभाषा के आंदोलन में सफलता की कम संभावना रहने पर वे निरुत्साहित नहीं हुए। लेकिन उन्होंने बड़े उत्साह, आदर और गौरव से ई. सन 1920 में 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना अहमदाबाद में की थी। इस राष्ट्रीय संस्था द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए अनेक रचनात्मक कार्य किये गये थे। संपूर्ण भारत में स्नातक-स्तर पर अनिवार्य विषय हिन्दी का प्रारंभ इस राष्ट्रीय विश्वविद्यालय से हुआ था। आज भी यह विश्वविद्यालय हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएं, बी.ए., एम. ए., बी.एड., एम.फील., पीएच.डी. के शोधकार्य के द्वारा गुजरात जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रहा है। इतना ही नहीं, यहां डॉ. अम्बाशंकर नागरजी की अध्यक्षता में हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय-भाषाओं के विषय में अध्ययन-अध्यापन-शोध-कार्य हो रहा है। लगता है कि अकेली राष्ट्रभाषा सभी भारतीय भाषाओं को यहां खींचकर लायी है। इस प्रकार कह सकते हैं कि गुजरात विद्यापीठ के स्थापक के रूप में एवं उसमें वर्तमान में हो रहे राष्ट्रभाषा के कार्य को लेकर कुलपति महात्मा गांधीजी आज भी हमारे मध्य विद्यमान, प्रस्तुत हैं।

गाँधी जी ने पराधीन भारत में हिन्दू-मुस्लिम में भाषा-भेद (हिन्दी-उर्दू) मिटाकर ऐक्य स्थापित करने के लिए 'राष्ट्रभाषा' के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया था। आपका 'हिन्दुस्तानी' शब्द-प्रयोग से अभिप्राय हिन्दुस्तान के जन-जन को जोड़ने वाली भाषा से ही था। इस 'हिन्दुस्तानी' के द्वारा ही उन्होंने जातिगत समन्वय का, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का जबरदस्त प्रयत्न किया था। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में, राष्ट्रभाषा की राष्ट्रीय समस्या के समाधान में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अपूर्व योगदान रहा है। वे हमेशा राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीय-गौरव, सांस्कृतिक समन्वय, राष्ट्रीय-अखंडितता की परिचायक मानते थे।

हिन्दी के सवाल को गांधी जी केवल भावनात्मक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं मानते थे, अपितु उसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप में भी देखने पर जोर देते थे। 10 नवम्बर, 1921 के 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा हिन्दी के भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्व की बात छोड़ दें तो भी यह दिन प्रतिदिन अधिकाधिक आवश्यक मालूम होता जा रहा है कि तमाम राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को हिन्दी सीख लेनी चाहिए और राष्ट्र की तमाम कार्यवाही हिन्दी में ही की जानी चाहिए। इस प्रकार असहयोग आंदोलन के दौरान गांधी जी ने पूरे देश में हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार काफी जोरदार ढंग से किया और उसे राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, स्वाभिमान का पर्याय-सा बना दिया।

उन्होंने अपने पुत्र देवदास गांधी को हिन्दी-प्रचार के लिए दक्षिण भारत भेजा था। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना उन्हीं की परिकल्पना का परिणाम है। उन्होंने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हिन्दी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से ही की थी तथा जन-नेताओं को भी हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया था। उनकी प्रेरणा के ही परिणाम स्वरूप

हिन्दीतर भाषा-भाषी प्रदेशों के स्वतंत्रता संग्राम के ने हिन्दी को सीख लिया था और उसे व्यापक जन-सम्पर्क का माध्यम बनाया था।

जब भारत को स्वतंत्रता मिली ही थी। देश-विदेश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पत्रकार इस महत्वपूर्ण घटना के प्रकाशन हेतु भारतीय नेताओं के वक्तव्य, संदेश आदि के लिए आ रहे थे। ऐसे माहौल में एक विदेशी पत्रकार महात्मा गांधी से मिला। उसने बापू से अपना संदेश देने को कहा। किंतु वह इस बात पर अड़ रहा था कि बापू अपना संदेश अंग्रेजी में दें। गांधीजी इसके लिए सहमत नहीं हो रहे थे। मगर पत्रकार था कि लगातार जिद कर रहा था। उसका कहना था कि संदेश भारतीयों के लिए नहीं, पूरी दुनिया के लिए है, इसलिए वह अंग्रेजी में ही बात कहें। उन दिनों बापू हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार भी कर रहे थे। थोड़ी देर तक वह शांत बने रहे, मगर अंततः पत्रकार की बात पर महात्मा गांधी ने उसे दो टूक उत्तर देते हुए कहा- दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।

गांधी के अभियान का नतीजा यह हुआ कि उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य क्षेत्रों के साहित्यकार जनपदीय भाषा को भूलकर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास में अपनी कलम चलायी। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रनंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने हिन्दी को राष्ट्रीय धर्म के रूप में अपनाया। बिहार में भी आचार्य शिवपूजन सहाय, राधिकारमण सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मी नारायण सुधांशु, नार्गाजुन, फणीश्वरनाथ रेणु आदि ने भी अपनी क्षेत्रीय बोलियों के मोह से उपर उठकर हिन्दी के विकास मौ योगदान देना अपना राष्ट्रीय धर्म समझा।

वर्तमान युग के राष्ट्रीय जनजीवन के व्यावहारिक एवं शैक्षिक स्तर के संदर्भ में सोचा जाय कि - क्या हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है? इस प्रश्न के उत्तर के रूप में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा दिये गये राष्ट्रभाषा के लक्षण के संदर्भ में कह सकता हूं कि इसे बोलने वाले लोग भारत के एक तिहाई हिस्से में बसते हैं। लेकिन हर प्रदेश के लोग अपनी प्रादेशिक-भाषा में व्यवहार करते हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा के स्थान पर उसी समय आसीन होगी जब जनता के स्तर पर वह सम्पर्क, व्यावहारिक भाषा बन जाय। अर्थात् एक प्रदेश का निवासी दूसरे प्रदेश से मिले तो वह अंग्रेजी आदि का प्रयोग न कर हिन्दी का प्रयोग करे। तामिल-भाषी बंगाली से मिलने पर या पंजाबी मलयाली से मिलने पर या मराठी गुजराती से मिलने पर आपसी व्यवहार, विचार-विनिमय हिन्दी में करे। इस प्रकार राष्ट्रीय जीवन में हिन्दी व्यावहारिक-संपर्क की महत्त्वपूर्ण कड़ी बनने पर ही राष्ट्रभाषा बन सकती है और इससे ही राष्ट्रपिता को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित हो सकती है।

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल', पत्रकार एवं स्तंभकार, सम्पर्क : 07067455455, एस-207, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, म. गा. मार्ग, इंदौर (मध्यप्रदेश)-452001
ई-मेल : arpan455@gmail.com

✧ ✧ ✧

स्वस्तिक

शंकर लाल महेश्वरी

सोना, चाँदी, तांबा अथवा पंचधातु से बना स्वस्तिक चौखट पर लगाने पर सुखद परिणाम मिलते हैं। आत्मतुष्टि के लिए रोली सिन्दूर तथा हल्दी से बनाये स्वस्तिक प्रभाव पूर्ण होते हैं। पारिवारिक कलह, शमन तथा अशान्ति निवारण के लिए स्वस्तिक यंत्र रवि-पुष्य, गुरू-पुष्य तथा दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी संयंत्र के साथ लगाना अधिक लाभप्रद हैं। गाय के दूध और गाय के दूध से बने हुए दही, घी, गोमूत्र, गोबर, पंचगव्य को समान अनुपात में गंगा जल में मिलाकर आम या अशोक के पत्तों से व्यापारिक केन्द्रों तथा औद्योगिक संस्थानों पर प्रतिदिन छिड़काव करने से विशेष ऊर्जा का संचार होता है।

भारतीय संस्कृति के मांगलिक प्रतीकों में स्वस्तिक का महत्वपूर्ण स्थान हैं। विशेष मांगलिक शुभ अवसरों पर इस प्रतीक का प्रयोग अवश्य ही किया जाता हैं। भारतीय धर्म ग्रन्थों तथा वैदिक साहित्य में इस प्रतीक का विशिष्ट प्रयोग हुआ हैं। शादी-विवाह, गृह प्रवेश, जन्मदिन, देवपूजन, व्यापार, बही खाता पूजन, शिक्षा का शुभारम्भ एवं मुण्डन संस्कार आदि में स्वस्तिक पूजन अनिवार्य समझा जाता हैं। किसी भी प्रकार के शुभ कार्य का प्रारम्भ स्वस्तिक पूजन से ही सम्पादित होता हैं। महिलाएं हाथों में मेहँदी से स्वस्तिक चिन्ह बनाती हैं तथा यह प्रतीक दुष्टात्माओं व दैविक कोप से मुक्ति प्रदान करने वाला माना जाता हैं।

''स्वस्तिक'' शब्द का निर्माण ''सुअसक'' से हुआ हैं सु का अर्थ अच्छा अस का अर्थ सत्ता या अस्तित्व और क का अर्थ कृर्तता या करने वाले से है। इस प्रकार स्वस्तिक शब्द का आशय हुआ अच्छा या मंगल करने वाला। इसमें विश्व कल्याण की भावना सन्निहित हैं तथा ''वसुधैव कुटुम्बकम'' का परिचायक हैं। पतंजलि योग में भी इस प्रतीक का विशेष विश्लेषण हुआ हैं।

प्राचीन मूर्तियों, मन्दिरों, शिलालेखों आदि में यह चिन्ह अँकित हैं। अमर कोश में स्वस्तिक शब्द की व्याख्या विशेष रूप से की गई हैं। ''स्वस्तिक, सर्वतोऋद्ध'' अर्थात सभी दिशाओं में सबका कल्याण हो। स्वस्तिक शब्द की निरूक्ति है --- स्वस्तिक क्षेमकायति,

इति स्वस्तिकः अर्थात कुशलक्षेम या कल्याण का प्रतीक स्वस्तिक ही हैं। हिन्दु परम्परा में स्वस्तिक को सर्वमंगल, कल्याणकारी सर्वव्यापक स्वीकारा हैं। असीम शक्ति, सौन्दर्य चेतना तथा सर्व सुखकारी प्रतीक स्वस्तिक को माना गया हैं।

स्वस्तिक चिह्न की बनावट ऐसी होती हैं कि वह दसों दिशाओं से विशेष ऊर्जा को अपनी ओर खींचता है इसीलिए सर्वप्रथम शुभकार्यों के लिए स्वस्तिक चिह्न बनाया जाता हैं। कहा गया हैं कि आम की लकड़ी और स्वस्तिक दोनों का संगम एवं आम की लकड़ी का स्वस्तिक उपयोग किया जाए तो इसका सुप्रभाव पड़ता हैं। यह प्रयोग जिस घर में वास्तु दोश होतो जिस कोण में वास्तु दोष हैं उसमें उक्त लकड़ी का बना स्वस्तिक दोष हरण करता है। घर के प्रवेश द्वार तथा पूजा स्थल पर भी स्वस्तिक का अंकन प्रभावकारी होता है।

सोना, चाँदी, तांबा अथवा पंचधातु से बना स्वस्तिक चौखट पर लगाने पर सुखद परिणाम मिलते हैं। आत्मतुष्टि के लिए रोली सिन्दूर तथा हल्दी से बनाये स्वस्तिक प्रभाव पूण होते हैं। पारिवारिक कलह, शमन तथा अशान्ति निवारण के लिए स्वस्तिक यंत्र रवि-पुश्य, गुरू-पुश्य तथा दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी संयंत्र के साथ लगाना अधिक लाभप्रद हैं। गाय के दूध और गाय के दूध से बने हुए दही, घी, गोमूत्र, गोबर, पंचगव्य को समान अनुपात में गंगा जल में मिलाकर आम या अशोक के पत्तों से व्यापारिक केन्द्रो तथा औद्योगिक संस्थानों पर प्रतिदिन छिड़काव करने से विशेष ऊर्जा का संघार होता हैं।

प्राचीनकाल में किसी भी श्रेष्ठ कार्य का शुभारम्भ मंगलाचरण लिखकर किया जाता था चूंकि सामान्य जन के लिए मंगलाचरण लिखना संभव नहीं था अतः ऋषियों ने स्वस्तिक चिन्ह का निर्माण किया। जो सुविधा पूर्वक अंकित किया जा सके और कार्य सानन्द सम्पन्न हो। मान्यता हैं कि ईसाई धर्म का प्रतीक क्रॉस का भी प्राचीन स्वरूप स्वस्तिक ही हैं। छठीं सदी में चीन के राजा ''वू'' ने सूर्य के प्रतीक के रूप में स्वस्तिक को मान्यता प्रदान की थी, मान्यता हैं कि व्यापारियों यात्रियों तथा पर्यटकों के माध्यम से ही हमारा ये प्रतीक चिह्न विश्व के समस्त देशों में प्रसारित हुआ। चीन के तांग वंश के इतिहासकार कुंगत्से ने लिखा हैं प्रतिवर्ष सातवें महीने के सातवें दिन मकड़ियों को लाकर उनके जाले में स्वस्तिक चिह्न बनवाते हैं अगर किसी को जाले में पहले ही यह चिह्न बना हुआ मिल जाये तो उसे सौभाग्य सूचक माना जाता हैं। तिब्बत में मृतकों के साथ स्वस्तिक प्रतीक को रखने की परम्परा रही हैं। रेड इण्डियनन्स इस प्रतीक को सौभाग्य सूचक मानते हैं। तथा इसका प्रयोग आभूषणों में भी किया जाता हैं।

जापान में प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्तियों पर भी यह चिह्न उकेरा गया हैं। आस्ट्रिया के संग्रहालय में ''अपोलो'' देवता के मस्तक पर स्वस्तिक का चिन्ह्न हैं। प्राचीन शास्त्रगारों के सामने तथा अस्थि कलशों और मिऋी के बर्तनों पर यह चिह्न अंकित हैं। 2200 वर्ष पुराने ध्वज पताकाओं पर यह चिन्ह्न मिले हैं संसार के प्रचीनतम देश आस्ट्रिया, जापान, स्कॉटलैण्ड, यूरोप तथा मैक्सिको में भी खुदाई में प्राप्त मिट्टी के बर्तनों पर स्वस्तिक चिन्ह्न अंकित हैं। सिन्धु घाटी से मुद्राओं, बर्तनों आदि में स्वस्तिक चिन्ह्न उपलब्ध हुए है। उस समय लोग सूर्य पूजक थे और इस प्रतीक को सूर्य का

प्रतीक माना गया था। पाणिनी के व्याकरण मत्स्य पूराण आदि ग्रन्थों में भी इस चिह्न का विशद विवेचन हुआ है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि की खण्डगिरि और उदयगिरि की रानी की गुफाओं में स्वस्तिक चिह्न मिले हैं। पाणिनी की व्याकरण में भी इसका उल्लेख है।

पाली भाषा में स्वस्तिक को साक्षियों के नाम से पुकारा गया है जो बाद मे साखी या साकी प्रचलित हो गये। जैन परम्परा के मांगलिक प्रतीक ''अस्तमंगल'' दृव्यों में स्वस्तिक का सर्वोपरि स्थान हैं। स्वस्तिक की चार रेखाओं को चार प्रकार से मंगल प्रतीक माना गया हैं वे हैं अरहंत-मंगल, सिद्ध-मंगल,साहू-मंगल और केवलि पण्णतो धम्मो मंगल।

स्वस्तिक में एक दूसरे को काटती हुई दो सीधी रेखाएं होती हैं जो आगे चलकर मुड़ जाती हैं इसके बाद में भी अपने सिरों पर और आगे की तरफ मुड़ी रहती हैं। स्वस्तिक की आकृति दो प्रकार की होती हैं जिसमें पहला स्वस्तिक जिसमें रेखाएं आगे की और संकेत करती हुई हमारे दांयी और मुड़ जाती हैं। इसे दक्षिणावर्त स्वस्तिक कहते हैं, जो हमारी प्रगति का सूचक है। दूसरी आकृति में रेखाएं पीछे की और संकेत करती हुई हमारे बांयी और मुड़ती हैं इसे वामावर्त स्वस्तिक कहते है। इसे अशुभ माना गया हैं। जर्मन के तानाशाह हिटलर की पताका में वामावर्त स्वस्तिक अंकित था इसीलिए उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा।

स्वस्तिक की दो रेखाएं पुरूष और प्रकृति की परिचायक है। भारतीय धर्मग्रन्थों में इस चिह्न को विष्णु, सूर्य, सृश्टिचक्र तथा ब्रह्मांड का प्रतीक माना गया हैं। कुछ सन्तो ने इसे गणेश का प्रतीक मानकर वन्दना के लिए प्राथमिकता दी है। इसे ही सुदर्शन चक्र का प्रतीक भी माना गया है। यास्काचार्य ने इसे ब्रह्मा का रूप माना है। इसकी चार भुजाओं को चार वर्णों की एकता का प्रतीक माना गया है तथा इन रेखाओं को ब्रह्मा के चार मुख, चार हाथ और चार वेदों के रूप में भी अंगिकार किया गया है। यह चिह्न धनात्मक चिह्न या प्लस को प्रकट करता हैं जो हमारी समृद्धि का प्रतीक है। स्वस्तिक की खड़ी रेखा को ज्योर्तिलिंग तथा आड़ी रेखा को विश्व के विस्तार का सूचक माना जाता है। यह चारो भुजाएं चारों दिशाओं के कल्याण की भावना को व्यक्त करती हैं। इसीलिए रेड क्रॉस सोसायटी ने इसे अपनाया विद्युत सिद्धान्त के अनुसार इन दो भुजाओं को नेगेटिव और पॉजीटिव की संज्ञा दी गई है। जिनके मिलने से विशेष ऊर्जा अर्जित होती है। स्वस्तिक के चारों ओर लगाए जाने वाले बिन्दुओं को चार दिशाओं के रूप में माना गया है। कहा गया है कि चर्तुमास में स्वस्तिक व्रत करने तथा मन्दिर में अष्टदल से स्वस्तिक बनाकर पूजन करने से महिलाओं के सौभाग्य में वृद्धि होती है।

इस प्रकार यह मांगलिक चिह्न देश विदेश में सदैव पूजनीय रहा है।

शंकर लाल माहेश्वरी, पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी, ग्राम+पोस्ट : आँगूचा,
जिला : भीलवाड़ा (राजस्थान), पिन– 311029, फोन : 09413781610

✧ ✧ ✧

बसेरे से बिछड़ कर

डॉ. यदुनन्दन प्रसाद उपाध्याय

मनोहर ने बात पलटते हुए कहा, ''तुम ही तो उसे विदेश भेजने के लिए आमादा रहती थीं? और अब खुद ही उसे इंडिया बुलाने की बात कर रही हो? देखती नहीं, लोगों में कितना रौब है हमारा! आखिर हमारे बेटा-बहू विदेश में नौकरी जो करते हैं! पूरे आठ सौ डालर कमाता है एक सप्ताह में हमारा ऋतुराज!'' शारदा को मनोहर की ये शीतल बातें किसी उल्कापिंड की भाँति दाहक लगीं।

रात के सपने से डरी हुई शारदा आज सुबह से ही अपने मोबाइल पर ऋतुराज की बाट जोह रही थी। पर उसके पास अपनी माँ से बात करने की फुर्सत नहीं, क्योंकि नई-नई नौकरी होने के कारण उसने अपने माता-पिता को पहले ही बोल दिया है, ''आप लोग मुझे बार-बार फोन मत किया करो, समय मिलने पर मैं खुद ही बात कर लिया करूँगा। परदेश में नौकरी करना इतना आसान नहीं! हर समय एक गिद्ध जैसी नजर पीछे लगी रहती है। थोड़ी सी भी गलती हुई, बस, पूरे देश को बेपानी होना पड़ता है। इनकी नजर में 'वसुधैवकुटुम्बकम' केवल बाहरी दिखावा है। अंदर से तो इन्हें सभी गैरमुल्कवासी अपने परोक्ष शत्रु या जासूस ही लगते हैं।

मेरी पिछली नौकरी भी इसी परोक्ष शत्रुता का शिकार हुई। यहाँ शायद ही कोई ऐसी कंपनी होगी जो दो वर्षों से ज्यादा किसी गैरमुल्कवासी वर्कर को काम पर रखती हो! इन लोगों को हमेशा ही यह डर सताता रहता है, कि कहीं कोई विदेशी वर्कर इनकी कंपनी पर एकाधिकार न जमा बैठे।''

शारदा अपने बेटे की इन्हीं बातों में गोता खा रही थी कि बाहर दरवाजे से उनके पति मनोहर का आगमन हुआ, ''तब से तुम यहीं बैठी हो?..... मैं टहल कर भी आ गया।

आज घर का काम नहीं करना क्या?''

शारदा के चेहरे पर उदासी छायी थी। उसका मन किसी उहापोह के कारण छटपटा रहा था। वह हताश भाव से बोली, ''आज काम तुम निपटा लो मेरी तबियत ठीक नहीं है?''

मनोहर मुस्कुराते हुए बोला, ''अच्छा ठीक है। लेकिन ये अचानक तुम्हारी तबियत को क्या हो गया? सुबह तो तुम अच्छी भली जगी थीं? क्या ऋतुराज ने आज फिर अपनी माँ से बात नहीं की?''

मनोहर ने मानो बुझी राख पर मुक्का मार दिया, शारदा तिलमिलाते हुई बोली, ''क्या तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ता? आखिर वो तुम्हारा भी तो बेटा है?

ऐसी नौकरी किस मतलब की! कि उसे अपने माता-पिता के जीने-मरने की भी सुधि नहीं?

या तो उसे इंडिया बुलालो या फिर उससे कह दो कि हमें भी ले जाए आपने साथ पिट्सबर्ग! ''हमें नहीं रहना यहाँ अकेले?''

मनोहर ने बात पलटते हुए कहा, ''तुम ही तो उसे विदेश भेजने के लिए आमादा रहती थीं? और अब खुद ही उसे इंडिया बुलाने की बात कर रही हो? देखती नहीं, लोगों में कितना रौब है हमारा! आखिर हमारे बेटा-बहू विदेश में नौकरी जो करते हैं! पूरे आठ सौ डालर कमाता है एक सप्ताह में हमारा ऋतुराज!'' शारदा को मनोहर की ये शीतल बातें किसी उल्कापिंड की भाँति दाहक लगीं।

वह विदग्ध होकर बोली, ''कमाता होगा आठ सौ डालर! पर अपने बाप के इलाज के लिए तो उस रईस के पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं! कितने वर्षों से छाती का दर्द झेल रहे हो, क्या उसे यह पता नहीं? पर तुम हो कि कान में पत्थर डाले बैठे हो!''

मनोहर बगलें झाँकते हुए शारदा से बोला, ''तुम तो बेकार में ही बिफरती हो। अरे! वहाँ के खर्चे और यहाँ के खर्चे में मोहर-कौड़ी का अंतर है। और फिर मुझे पेंशन मिलती तो है, फिर भी तुम खामखा उस बेचारे को कोसती रहती हो?''

शारदा एक कुटिलदृष्टि से मनोहर को घूरती हुई रसोईघर में चली गई। मनोहर भी किसी लुटे हुए व्यापारी की तरह करहाते हुए छाती को पकड़े सोफे पर बैठ गया। शायद आज फिर उसकी छाती में दर्द हो रहा था।

''चाय पीनी है क्या?'' शारदा ने रसोईघर में चाय बनाते हुए उससे पूछा। लेकिन मनोहर ने कोई जवाब नहीं दिया। शारदा ने इस बार उखड़ते हुए पूछा, ''अरे! चाय पीनी है क्या?''

इस बार मनोहर का स्वर भी गंभीर था, वह करहाते हुए बोला, ''नहीं..!!''

तभी दरवाजे पर पड़ोस वाले शर्मा जी की दस्तक होती है। उनका लड़का गली के नुक्कड़ पर परचून की दुकान चलाता था। ''अरे शर्मा जी! आइए-आइए। बैठिए.... और बताइए कैसे हैं? घर पर सभी कुशल-मंगल तो हैं?'' मनोहर ने छाती को पकड़े बीमार स्वर में शर्मा जी से पूछा।

आज पौ फटते ही उसे छाती में हल्का-हल्का दर्द हो रहा था। लेकिन इतने वर्षों में दर्द को दबाने और सहने की क्षमता भी उसने विकसित कर ली थी। वह शर्माजी की तरफ सोफे पर बैठने का इशारा करते हुए दबे स्वर में शारदा से बोला, ''अरे, एक कप चाय और बढ़ा लेना, बगल वाले शर्मा जी आए हैं।''

शर्मा जी खोजी स्वभाव के थे। वे जब भी मनोहर के घर आते थे, तो किसी खोजी कुत्ते की तरह उसके घर के हर सामान को सूँघते। आज फिर आते ही उन्होंने किसी सी.आई.डी. अफसर की भाँति अन्वेषण करते हुए, दीवार पर टँगी एक तस्वीर पर अपनी तिलिस्मी नजरें टिकाकर एक बनावटी हँसी हँसते हुए मनोहर से पूछा, ''मनोहर जी ये तस्वीर आपने पास वाले हाट बाजार से खरीदी थी क्या?

''ही..ही..ही.. बड़ी सुन्दर दिख रही है?''

शर्माजी को जानबूझकर मनोहर के घर की अधिकांश विदेशी चीजों को देशी और फूहड़ बताने में मजा आता था। वे मनोहर के स्वाभिमान को चोट पहुँचाते हुए पुनः बोले, ''इस बार हमारे लिए भी खरिदवा दीजिएगा, ही..ही..ही..!''

मनोहर सम्मान को पोषित करते हुए तपाक से बोला, ''नहीं!.. नहीं..! शर्माजी, यह किसी हाट बाजार से थोड़े ही खरीदी है! बल्कि इसे तो पिछले साल हमारा ऋतुराज पिट्सबर्ग से लाया था।''

शर्माजी मनोहर की बात का खंडन करते हुए बोले, ''पता नहीं, मनोहर जी! पर गंगा कसम बिल्कुल ऐसी ही एक तस्वीर मैं हाट बाजार में पिछले दिनों छोड़ कर आया था। वो तो उस दिन मोटरसाइकिल पर पीछे कोई तस्वीर पकड़ने वाला नहीं था, नहीं तो लेकर ही दम लेता!''

मनोहर अपने सम्मान की डूबती नाव को बचाते हुए बोला, ''क्यों गाल बजाते हैं शर्माजी?

यह कोई धूल-माटी से बनी तस्वीर तो है नहीं, जो इन फड़ों पर बिकती फिरे! इसे तो पूरे दो सौ डालर में खरीदा है हमारे ऋतुराज ने! कहाँ यहाँ के रद्दड़ हाट बाजार और कहाँ वहाँ के विशाल गगनचुम्बी मॉल! मुझे तो यहाँ की हर चीज में ही एक घूस और बेईमानी नजर आती है। यहाँ जिसे देखो वो अपनी सड़ी-से-सड़ी चीज का भी श्रेष्ठता से गुणगान करता-फिरता है!

आप क्या जानें, कितनी विलग है वहाँ की वस्तुएँ? महँगी जरूर हैं, पर टिकाऊँ और अनुपम हैं! यहाँ की तरह गाजर घास थोड़े हैं! ये जो दीवारों पर आपको पेंट दिख रहा है न, पिट्सवर्ग का ही है! अगर दस साल भी मकान को न पोतें तो भी क्या मजाल कि उसकी चमक फीकी पड़ जाए! शारदा चाय की ट्रे टेबल पर रख कर शर्माजी का अभिवादन करती हुई मनोहर से बोलती है, ''ऋतुराज का फोन आया था, पूछ रहा था कि पापा की तबियत कैसी है?''

यह सुनकर मनोहर का मन शर्माजी के वाकयुद्ध से निकल स्वयं के अंतस युद्ध में घिर गया। अभी कुछ देर पहले जिस मनोहर का मन विदेशियत के गौरव गीत गाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा था, उसे मानो अचानक साँप सूँघ गया। इतने में शर्माजी चुटकी लेते हुए बोले, ''यह बात तो माननी पड़ेगी मनोहर जी, कि आपके विदेशी सामान के आगे हमारे रद्दड़

शर्माजी किसी निठल्ले की तरह हँसते हुए अपने घर की ओर चले गए। यद्यपि उनके जाने के बाद घर में नीरवता छा गई थी, लेकिन उनकी बातों का भूचाल मनोहर और शारदा के मन में अभी भी बवंडर बनकर घूम रहा था। कुछ देर तक वे दोनों एक-दूसरे की आँखों में लाचार दृष्टि से देखते रहे, फिर बरबस दोनों की आँखों में जल भर आया। अब कौन किसके आँसू पोंछता!

अंततः दोनों एक-दूसरे से नजरें बचाते हुए अलग-अलग कमरों में घुस गए। कमरे भी मन की तरह सूने और वीरान थे। उनकी दीवारों से टकराकर मनोहर और शारदा की लौटती हूक ने उनकी जड़ता को और अधिक निष्ठुर बना दिया था। कमरों के भीतर से उठता उन दोनों का अंतर्नाद किसी दारुण व्यथा की चीत्कार लग रहा था। दोनों अपनी-अपनी हथेलियों में मुँह दिए फफक कर रो रहे थे। अब मरहम कौन लगाता, जब दोनों ही घायल पड़े थे!

सामान की कोई औकात नहीं! लेकिन फिर भी मैं यह बात जोर देकर कहना चाहता हूँ कि हमें अपने सामान की रद्दड़ता कभी अखरती नहीं है! हो सकता है गिलहरी के लिए गूलर ही मेवा हो.. ही..ही..ही..!''

मनोहर को लगा कि शर्माजी ने उसका सारा वैभव खाक में मिला दिया। वह अपनी प्रतिष्ठा का अंतिम तंतु उधड़ने से बचाते हुए बोला, ''हाँ आप सही कह रहे हैं शर्मा जी!

अब क्या है कि आपने तो कभी ब्रांडेड चीजें यूज की ही नहीं, जो आप उनका मर्म समझ सकें! आपके लिए तो पीतल ही सोना है! और फिर हम जिस अंदाज में जीने की आदत डाल लेते

हैं, हमें वही अंदाज तो सर्वश्रेष्ठ लगने लगता है, है कि नहीं..! इसमें आपकी कोई गलती नहीं शर्माजी...!!''

शर्माजी ने इस बार मनोहर पर दोगुनी शक्ति से व्यंग्य-बाण चलाया, ''पर सुख तो अपनों के पास रहने से ही मिलता है मनोहर जी! कम-से-कम मेरा बेटा रात को परिवार के साथ बैठकर खाना तो खा लेता है, आपको तो वो भी नसीब नहीं..!!''

इस बार तीर ठीक निशाने पर लगा। मनोहर का पूरा शरीर विध गया। शर्माजी के व्यंग्य-बाण लौट-लौट कर उसके हृदय को भेदने लगे। शारदा से न रहा गया।

वह शर्माजी को आड़े हाथ लेते हुए बोली, ''हमें पता है शर्माजी कि आप कितनी चुपड़ी खाते हो? अब मेरा ज्यादा मुँह मत खुलवाओ? बड़े आए परिवार वाले!

आप जब भी आते हो, ऐसी ही ऊल-झुलूल बातों से हमारा मूड खराब करके चले जाते हो! आप तो आग लगाकर चले जाते हो, पर हमें पूछो, यहाँ बुझाने में महीने भी कम पड़ जाते हैं! विदेशों तक पहुँचना कोई बच्चों का खेल नहीं है! अनेक अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना पड़ता हैं।

आपके बेटे जैसी परचून की दुकान नहीं है ऋतुराज की, जो पूरे दिन वहाँ बैठ कर मक्खियाँ मारे! वहाँ काम में भी इज्जत है और दाम भी आपके बेटे से हजार गुना ज्यादा कमाता है हमारा ऋतुराज।'' शर्मा जी का चेहरा पीला पड़ गया। वे थूक अंदर निगलकर किसी खजैले कुत्ते की तरह रिरियाते हुए बोले, ''अरे भाभी जी, आप तो बुरा ही मान गईं! ही..ही..ही..!

मेरा मतलब आप लोगों को दु:खी करना थोड़े ही था। मैं तो मजाक कर रहा था। ही... ही...ही...! अच्छा ठीक है, तो फिर मैं चलता हूँ, फिर कभी आऊँगा!

नमस्ते..!! ही..ही..ही..!

शर्माजी किसी निठल्ले की तरह हँसते हुए अपने घर की ओर चले गए। यद्यपि उनके जाने के बाद घर में नीरवता छा गई थी, लेकिन उनकी बातों का भूचाल मनोहर और शारदा के मन में अभी भी बवंडर बनकर घूम रहा था। कुछ देर तक वे दोनों एक-दूसरे की आँखों में लाचार दृष्टि से देखते रहे, फिर बरबस दोनों की आँखों में जल भर आया। अब कौन किसके आँसू पोंछता!

अंतत: दोनों एक-दूसरे से नजरें बचाते हुए अलग-अलग कमरों में घुस गए। कमरे भी मन की तरह सूने और वीरान थे। उनकी दीवारों से टकराकर मनोहर और शारदा की लौटती हूक ने उनकी जड़ता को और अधिक निष्ठुर बना दिया था। कमरों के भीतर से उठता उन दोनों का अंतर्नाद किसी दारुण व्यथा की चीत्कार लग रहा था। दोनों अपनी-अपनी हथेलियों में मुँह दिए फफक कर रो रहे थे। अब मरहम कौन लगाता, जब दोनों ही घायल पड़े थे!

कुछ देर बाद शारदा को मनोहर के कमरे से कराहने की आवाज सुनाई दी। उसने देखा मनोहर छाती को पकड़े कमरे के एक कोने में जमीन पर पड़ा दर्द से कराह रहा है।

''क्या हुआ तुम्हें? छाती में फिर दर्द होने लगा क्या?'' शारदा घबराते स्वर में मनोहर से बोली। मनोहर की आँखें बंद हो रही थीं। दर्द के मारे उसका चेहरा सूखता जा रहा था। वह बार-बार अपनी छाती को पकड़ता और छोड़ता।

फिर एक आर्तध्वनि में नि:श्वास छोड़ते हुए शारदा से बोला, ''नहीं!.. नहीं! वैसे ही थोड़ी सी घबराहट हो रही है। जी मिचल रहा है, थोड़ा पानी ले आओ!''

शारदा झट से पानी लेने चली गई। मनोहर खुद को सम्हालते हुए विस्तर पर लेट गया।

शारदा अविलंब पानी ले आई और मनोहर को सहारा देकर बिठाते हुए बोली, ''लो पानी पी लो। तब तक मैं किसी रिक्शे वाले को बुलाती हूँ। चल कर डॉक्टर को दिखा लेते हैं।''

गला चटकने के कारण मनोहर बार-बार पानी पिए जा रहा था। फिर अचानक किसी उद्वेग में आकर एक लम्बी श्वाँस छोड़ते हुए वह बोला, ''ऋतुराज ऑफिस से आ गया होगा क्या?''

मनोहर के इस प्रश्न ने शारदा के जख्म को हरा कर दिया।

वह किरते हुए उससे बोली, ''मुझे क्या पता वह कब आफिस से आता-जाता है?

मरे जा रहे हो!... फिर भी तुमसे उस निर्मोही का मोह नहीं छूटता! तुम्हें डॉक्टर को दिखाने चलना है कि नही?'' मनोहर एक करुण नि:श्वास छोड़ते हुए जवाब देता है, ''नहीं!'' शारदा मनोहर के इस उपेक्षित व्यवहार पर झल्लाती हुई बोली, ''मेरा दिमाग खराब मत करो!

''मैं अभी रिक्शे वाले को बुलाने जा रही हूँ! हॉस्पीटल जाना बहुत जरूरी है!''

शारदा किसी रिक्शे वाले को बुलाने बाहर चली गई थी। इधर मनोहर अपनी दशा में बेसुध हो रहा था। दोनों के दर्द का पर्वत पिघलकर दरिया बन गया था, जिसमें एक ओर मनोहर की जिंदगी डूबती जा रही थी तो दूसरी ओर शारदा का जीवन किसी मझधार की नाव बन रहा था।

थोड़ी ही देर में शारदा बेहोश मनोहर को रिक्शे में बैठाकर हॉस्पीटल ले आई।

डॉक्टर ने इसे इमरजेंसी केस मानते हुए तुरंत एडमिट कर लिया और शारदा को बाहर बैठने का इशारा करते हुए कहा, ''आप बाहर बैठ जाइए मैडम, जैसे ही इनकी रिपोर्ट आएगी आपको बुला लिया जाएगा।''

शारदा ने अपने व्याकुल मन को सम्हाला और छाती पर पत्थर रखते हुए बेंच पर बैठ गई। उसका मस्तिष्क शून्य होता जा रहा था और उसकी आँखों के सामने बार-बार मनोहर और ऋतुराज का चेहरा घूमने लगा। उसने बिना कोई देर किए अपने पर्स से मोबाइल निकाल कर देखा, शायद ऋतुराज का कोई फोन या मैसेज आया हो, लेकिन मोबाइल की स्क्रीन बिल्कुल सूनी थी। उससे रहा न गया, उसने तुरंत अपनी ममता के टुकड़ों को समेटा और ऋतुराज को फोन लगा दिया,

''हैलो..!! हाँ... ऋतु बेटे कैसे हो?''

ऋतुराज ने हमेशा की तरह सहजतापूर्वक अपना जवाब दिया, ''अच्छा हूँ मम्मी, आप लोग कैसे हैं?...पापा की तबियत कैसी है?''

ऋतुराज की सहजता देखकर शारदा को लगा कि वह फोन पर ही जोर से रो दे। पर वह कलेजे को कठोर करते हुए ऋतुराज से बोली, ''ऋतु बेटे आखिर तुम लोग इंडिया कब आओगे?'' ऋतुराज को अपनी माँ का यह सवाल अटपटा लगा। वह हँसते हुए उससे बोला, ''माँ अब तो तुम्हारी बहू भी एक टॉय-मेकिंग कंपनी में जॉब करने लगी है!

अब ऐसे में हम लोगों का इण्डिया आना, हाल-फिलहाल तो मुश्किल लग रहा है। ''शारदा का दिल भर आया, उसकी जुबान किसी बुझती हुई लौ की तरह लड़खड़ाने लगी। उसने अपने आँसुओं को पीते हुए ऋतुराज से कहा, ''अच्छा ठीक है बेटा, फोन रखती हूँ। भगवान तुम्हें सुख-संपत्ति दे!''

ऋतुराज को अपनी माँ का यह व्यवहार बाकी दिनों से अलग लगा। ऑफिस से घर पहुँचने तक उसके दिमाग में यही बात बार-बार घूम रही थी कि आखिर आज उसकी माँ ने उससे ज्यादा बातें क्यों नहीं कीं? और न ही दूसरे दिनों की तरह कोई शिकायत-शिकवा किया।

मालती भी थोड़ी देर पहले ही घर पर आती जा रही थी। बच्चे अपने-अपने टैबलेट पर होमवर्क कर रहे थे। ऋतुराज वॉस-रूम से निकलते हुए दबे स्वर में मालती से बोला, ''चलो क्यों न कुछ दिन इण्डिया घूम आएँ ? बहुत दिन हुए मम्मी-पापा को देखे?''

मालती को इंडिया शब्द सुनते ही मानो साँप काट जाता था, उसने एक कुटिल दृष्टि अपने पति पर दौड़ाई और भिनभिनाते हुए कमरे में चली गई। ऋतुराज ने गुहार लगाते हुए मालती से फिर पूछा, ''बोलो न डार्लिंग, चलें क्या इंडिया?''

मालती स्वदेश के नाम पर चिढ़ती थी, उसकी नजर में विदेश ही स्वर्ग था। वह मुँह की कड़वाहट उगलते हुए ऋतुराज से बोली, ''अगर तुम्हे उस नरक में जाना ही है तो बेशक जाओ, पर मुझे जाहिलों से मिलने का कोई शौक नहीं!

भूल गए! पिछली बार गए थे इंडिया, क्या हुआ? तुम्हारी नौकरी जाते-जाते बची थी! और फिर वहाँ जाकर बच्चों का कितना कबाड़ा हो जाता है, ये तुम कभी भी महसूस नहीं कर सकते!

ऋतुराज मालती के पास आकर पुनः द्रवित स्वर में हाथ बाँधे बोला, ''पता है, आज मम्मी ने मुझसे ज्यादा बात नहीं की! मुझे लगता है कि घर में कोई परेशानी है, शायद पापा की तबियत ज्यादा खराब है?''

यह सुनकर मालती का विष हलाहल बन गया। वह किसी भुजंग भामिनी की भाँति, फुस्कार मारते हुए बोली, ''जब भी तुम्हारे माँ-बाप का फोन आता है, तुम इसी तरह किसी जानवर की तरह घर भागने के लिए बेकाबू होने लगते हो।

अगर तुम्हें घास खाने का इतना ही शौक था, तो फिर यहाँ इंसानों में आकर क्यों दुलत्ती मार रहे हो! वहीं ढोर-गँवारों में बने रहते...?

मैं फिर कहे देती हूँ, अगर तुम्हें अपने भविष्य की कोई चिंता नहीं है, तो बिल्कुल इण्डिया चले जाओ, पर मेरी नौकरी तो अभी नई-नई है, मुझसे साथ चलने की उम्मीद मत करना!

ऋतुराज का मन खिन्नता के शिखर पर था। रह-रह कर मालती की बातें उसे डश रही थीं। वह मुँह लटकाए बच्चों के पास आकर बैठ गया।

''व्हाट हैपंड डैडी'' संकेत अपने पिता का लटकता हुआ चेहरा देखकर बोला। ऋतुराज को अपने पुत्र के ये शब्द किसी मरहम की तरह लगे। उसने तुरंत एक वात्सल्य भरी मुस्कान लिए संकेत से कहा, ''विल यू गो टू योर ग्रांडपैरेंट्स?''

संकेत अपनी माँ से प्रभावित था। स्वदेश के प्रति दुत्कार की भावना उसने मालती से ही सीखी थी। वह खीजकर तुरंत बोला, ''नो..!नो..!नो..! आई डू नोट गो टू माई ग्रांडपैरेंट्स!''

पुत्र के इस जवाब से ऋतुराज का मन अपनों में ही बेगानों सा अनुभव करने लगा। वह चुपचाप उठ कर कमरे से बाहर निकलकर सड़क पर आ गया। चारों तरफ ऊँची-ऊँची इमारतें चौड़ी-चौड़ी सड़कें, जिन पर दौड़ते असंख्य वाहन हवा को माप रहे थे। हर तरफ एक निष्ठुर कोलाहल मचा हुआ था, मानो प्रकृति ने जड़ होकर पूरी मनुष्यता को मार दिया हो। ऋतुराज को लगा कि उसके चारो तरफ एक पतझड़ छा रहा है। प्रेम और करुणा का एक-एक पुष्प जमीन पर गिरकर गल रहा है। अचानक उसे खुदके गलने का भान हुआ और वह खुद को कोसते हुए बोला, ''हाय! यह क्या कर दिया मैंने! आखिर मैं क्यों वहाँ अकेले मरने के लिए अपने माता-पिता को छोड़कर आ गया!

कितनी अच्छी जिंदगी गुजर रही थी इंडिया में मेरी! सुबह-शाम माता-पिता के आश्रय में पलता था! अपने देश की मिट्टी में खेलता था! लेकिन, हाय! जब से इन बेगानों में आया हूँ, तिल-तिल कर मेरी जिंदगी की महक इस गुलशन से कब कूच कर गई, मुझे पता ही न चला?'' यकायक ऋतुराज के मानसोद्यान में बचपन की स्मृतियों के गुल खिलने लगे। उसे याद आया किस तरह उसके माँ-बाप ने अपने शिक्षित और आधुनिक होने का पूर्ण परिचय तब और महानता के साथ साबित किया, जब कुटुम्ब और समाज के अनेक लोगों के गला फाड़ने के बाद भी उन्होंने दूसरा बच्चा पैदा नहीं किया।

''एक ही सर्वस्व है और उसी में सम्पूर्णता देखो!'' के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए मेरे ही खान-पान और शिक्षा-दीक्षा को तरजीह दी। पड़ोस वाले शर्मा जी अक्सर पापा से कहते, ''अरे!

एक बच्चा भी कोई गिनती में होता है?

हम दो हैं तो कम-से-कम हमारे भी दो तो होने ही चाहिए! अगर एक गद्दार निकल जाए तो बूढ़े माँ-बाप कम-से-कम दूसरे का पल्ला पकड़ कर किसी कोने में डले तो रहेंगे?'' पर मम्मी-पापा ने कभी भी इस छुद्रता को गरिमा नहीं दी।

मेरे बचपन को उन्होंने कैसे सँवारा? खुद को बुझाकर मुझे जगमगाया!

धिक् ! इस तथा-कथित उन्नति पर, जो ऊपर से चमकदार और अंदर से इतनी घिनौनी है!

छि:!! क्या इसीलिए उन्होंने एक बच्चे को जन्म दिया था!

क्या उन्हें पता नहीं था? कि जिस बच्चे को वे इतने लाड़-प्यार से पाल रहे हैं, जब वह विदेश चला जाएगा तो उसके बिना रहना उनके लिए दु:स्वार हो जाएगा?

क्यों पढ़ाया मुझे इतना कि विदेश में नौकरी करने की मेरी ललक ने एक ही झटके में मेरे माता-पिता-परिवार और देश को निगल लिया!

ओह! मम्मी-पापा मैं कैसे रहूँगा यहाँ? ''क्यों आने दिया तुम लोगो ने मुझे यहाँ काँटो के बीच!''

ऋतुराज को स्वयं का अस्तित्व किसी वृक्ष से टूटे हुए पत्ते की भाँति लगने लगा, जो चाहकर अब कभी भी उससे नहीं जुड़ सकता। उसे स्वयं से घृणा होने लगी। जीवन की डोर अविशाप लगने लगी। अमर्ष और आत्मग्लानि में आकर वह खुद को चोटिल करना चाह रहा था कि आवेग में आकर उसने अपना एक पैर मारे क्रोध के जोर से जमीन पर दे मारा, लेकिन उसे यह भी अपर्याप्त लगा।

अचानक उसका एक हाथ जेब में रखे मोबाइल से टकराता है, वह अविलंब उसे जेब से निकाल कर देखता है, कि शारदा का एक मैसेज आया था, ''अब तुम्हें कभी भी इंडिया आने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि तुम्हारे पापा तुम लोगों का ज्यादा इंतजार न कर सके!''

ऋतुराज के पैरों तले जमीन खिसक गई। उसका शरीर मानो निष्प्राण हो गया। किसी तीखी चीत्कार को छोड़ते हुए उसने मोबाइल पूरी ताकत के साथ सड़क पर दे मारा और खुद को गोली की तरह खुली सड़क पर छोड़ते हुए जोर से चिल्लाया, ''पापा***...!!!!'' और पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ा।

डॉ. यदुनन्दन प्रसाद उपाध्याय, अंशिया प्लाजा, मयूर मार्केट, थाठीपुर, ग्वालियर (म.प्र.)
पिन-474011, मो. : 7489651919, ई-मेल : dr.yaduupadhyay@gmail.com

✧ ✧ ✧

आशीष

डॉ. करुणा कमल

प्रेम ने गोलंबर पर आकर गाड़ी एक जगह खड़ी कर दी। मनोरमा कार की खिड़की खोलकर बाहर देखने लगी। बाहर का दृश्य हृदयविदारक था। उस दृश्य को देखकर मनोरमा की आँखें भर आईं। उसके मुख से एक आह भर निकली। वृक्षों के कुँज के नीचे कई लोग जूट का बोरा तथा प्लास्टिक ओढ़े सो रहे थे। उन्हें देखकर यह जान ही नहीं पड़ रहा था कि वहाँ सामान रखा हैं या लाश पड़ी है। चारों तरफ खामोशी थी। सब कुछ शिथिल, निस्तब्ध, बेजान-सी थी। मनुष्य पशु सदृश्य खुले आसमान तले निद्रा में खोए थे। उन लोगों को प्रकृति ने वृक्षों की डालियों और पर्णों से निर्मित छत प्रदान किया था।

मनोरमा और मयंक एक निजी संस्था में काम करते थे। दोनों स्वभाव से मृदु, दयालु तथा बड़े संकोची थे। एक बार सर्द रात के अंधेरे में सुनसान सड़क पर उनकी गाड़ी सांय-सांय करती दौड़ती चली जा रही थी। सारा शहर गहरी नींद में था। सड़क पर ठिठुरते कुत्तों के सिवा कोई भी न था। बीच-बीच में भारी वाहन अपनी लाइट का फोक्स आँख पर डालते हुए निकल जाते थे। कुछ समय के लिए रात का खौफ दिल दहला देता किन्तु इस युगल दंपति को कौन डरा सकता था। बस कोई उन्हें यह काम करते न देख ले, इसका भय उन्हें अवश्य सता रहा था। मनोरमा और मयंक दोनों जैसे अलसाए हुए मौन धारण किए गाड़ी में बैठे थे।

राजापुर पार करते ही मनोरमा अपने कार चालक से कहा, 'प्रेम, गाड़ी की गति धीमी कर लो और फुथपाथ पर नजर रखो। यदि कोई दिखे, तो गाड़ी रोकना।'

प्रेम ने धीरे से कहा, 'ठीक है। पर मैम....कौन..' उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि मनोरमा ने आगे कहा, 'और देखो यदि कोई दिखे तो तुरंत गाड़ी रोक कर सामने रखे कंबल में से एक उसे ओढ़ा देना'।

'ओढ़ा देना!.... क्या मतलब?' मयंक चकित होकर बोला।

'ओह! समझे नहीं, यदि हम उतरेंगे तो संभव हो कि हमें कोई देख ले। इससे समय भी अधिक लगेगा और... हमें तो यह काम आज रात ही पूरा करना है।' मनोरमा बड़े दृढ़

स्वर में बोली और मयंक ने 'हूँ....' कहकर सिर हिलाते हुए अपनी सहमति दे दी।

तभी एक जगह गाड़ी रोककर प्रेम ने झट से दरवाजा खोला, हाथ में एक कंबल लेकर सड़क किनारे सो रहे एक व्यक्ति के ऊपर डाल दिया। वह व्यक्ति न हिला न डुला और प्रेम उसकी प्रतिक्रिया के लिए रूका भी नहीं, तुरंत आज्ञानुसार लौट गया। और इसी प्रकार प्रेम अपने घर से गाँधी मैदान तक कई जगह रूक-रूक कर निर्देशानुसार सो रहे लोगों को कंबल ओढ़ाता चला गया।

प्रेम ने गोलंबर पर आकर गाड़ी एक जगह खड़ी कर दी। मनोरमा कार की खिड़की खोलकर बाहर देखने लगी। बाहर का दृश्य हृदयविदारक था। उस दृश्य को देखकर मनोरमा की आँखें भर आईं। उसके मुख से एक आह भर निकली। वृक्षों के कुँज के नीचे कई लोग जूट का बोरा तथा प्लास्टिक ओढ़े सो रहे थे। उन्हें देखकर यह जान ही नहीं पड़ रहा था कि वहाँ सामान रखा हैं या लाश पड़ी है। चारों तरफ खामोशी थी। सब कुछ शिथिल, निस्तब्ध, बेजान-सी थी। मनुष्य पशु सदृश्य खुले आसमान तले निद्रा में खोए थे। उन लोगों को प्रकृति ने वृक्षों की डालियों और पर्णों से निर्मित छत प्रदान किया था। ऐसा लग रहा था मानो वृक्षों ने उन्हें गोद ले लिया है। बूँद-बूँद करके उन वृक्षों से ओसकण टपक रहे थे।

मयंक इस दृश्य से आहत होकर बोला, 'इतने लोगों के सर पर छत नहीं है। और हमें अपने आराम से फुरसत नहीं।'

मनोरमा मयंक की बातों से सहमत होते हुए बोली, 'तुम ठीक कहते हो।... ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद कि कम-से-कम हमारे पास घर है। हमें कृतज्ञ होना चाहिए।'

मयंक गहरी साँस भरते हुए बुदबुदाने लगा, 'आज की रात मानो प्रकृति भी कहर बरसा रही है। हाथ-से-हाथ न जान पड़ता है और ये बेचारे.....इस तरह...।'

प्रेम ने झटके से मयंक की ओर का दरवाजा खोला, जिससे मयंक की चेतना वापस लौटी और वह प्रेम के साथ अपने हाथों में कंबल लेकर उतरा। दोनों फटाफट उन सब के तन पर कंबल डालते चले गए। वे इस काम को इतनी शीघ्रता से कर रहे थे कि जब तक किसी को कुछ आभास होता, वे वहाँ से निकल जाते थे।

आगे बढ़ते हुए मनोरमा और मयंक का मन व्यथित हो रहा था। गाड़ी अपनी धीमी गति से घूम रही थी। वे गाँधी मैदान का एक चक्कर लगाते हुए उसके दूसरे छोर पर पहुँचे और सोते लोगों पर कंबल डालने लगे। कंबल डालते ही एक की नींद खुल गई। पता नहीं उसने उन्हें नींद में चोर समझा या कुत्ता।

अर्धनिद्रा में वह घबराता हुआ, 'हे..हे..दूर्र-दूर्र..' कहकर दुत्कारने और शोर मचाने लगा।

प्रेम ने उसे शांत करते हुए धीरे से कहा, 'भाई! आप घबराएँ नहीं....। शांत और निश्चिंत हो जाए। हम कोई चोर नहीं हैं। देखिए, हमारे साहब ने आपको कंबल दिया है।' और वह यह सुनते एवं देखते हुए निश्चिंत होकर कंबल में सिमट गया।

मयंक सोचने पर विवश हो गया। उसने गंभीर होकर मनोरमा से कहा, 'मनु, क्या है यह जीवन? क्या ईश्वर को यह सब नजर नहीं आता? धर्म के ठेकेदार और नेता क्या कर रहें हैं? क्या उन्हें मानव की यह दृशा दिखाई नहीं देती या वे देखना ही नहीं चाहते हैं।'

मनोरमा उसके मनोभाव को जानकर थोड़ी उग्र होकर बोली, 'यह दुनिया स्वार्थी है, स्वार्थी.., सभी को अपने भले की चिंता है। सब को सब कुछ दिखता है। किन्तु उन्हें तो केवल वहीं दिखाई देता है, वहीं उनकी चेतना जगती है, जहाँ से वे सबकी आँखों पर छा सकते हैं।'

तभी अचानक मनोरमा की नजर एक समूह पर पड़ी। कुछ लोग सड़क के किनारे ही प्लास्टिक का अपना आशियाना बनाकर पूरे परिवार के साथ चैन की नींद सो रहे थे परन्तु एक वृद्धा की आँखों में नींद नहीं थी। नींद तो जैसे उससे रूठ गई थी, भयंकर पाला जो उसे सता रहा था। वह अपने को एक फटी-पुरानी सूती धोती में समेटने का असफल प्रयास कर रहा था।

मनोरमा ने कातर स्वर में कहा, 'ओह! उस वृद्धा को देखो। आह!... उसकी धोती....भी कैसी....वह तो...पूर्ण रूप से ओस की बूंदों से भींग गई है। इस घने कोहरे को देखकर तो ऐसा लग रहा था मानो आज की रात समाज की इस निष्ठुरता पर प्रकृति आंसू बहा रही है।'

वह वृद्धा अपने दुख में खुद को नजर अंदाज कर रहा था। शीतलहर के प्रकोप से वह पत्ते की तरह थर-थर काँप रहा था। उसकी दशा देखकर उन दोनों की आत्मा व्याकुल हो गई। समाज के इस विद्रुप रूप से उनका मन विक्षिप्त-सा होने लगा।

मनोरमा अपने आप को संभालते हुए मयंक से बोली, 'अब एक क्षण भी गंवाना उचित नहीं। चलो, हम उस बाबा के पास चलें।'

दोनों गाड़ी से उतर कर उस वृद्धा के तन को एक कंबल से ढ़क दिये। तत्क्षण वृद्धा आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। वृद्धा की कृतज्ञतापूर्ण नजर उन्हें अपलक देख रही थी। वह कुछ कहना चाहता था पर शायद उसकी जुबां साथ नहीं दे रही थी। वह वृद्धा अपनी पथराई नजर और कांपते हाथ बारंबार उनकी तरफ उठा रहा था। उसने निःशब्द आशीर्वादों की झाड़ी-सी लगा दी थी। उसके मौन आशीर्वचन से दोनों भाव-विभोर हो रहे थे। उन्हें एक सूकुन का एहसास हो रहा था। मनोरमा और मयंक के चेहरे पर सौम्य एवं स्निग्ध मुस्कान थी। सचमुच आज उन्हें परमानंद की अनुभूति हो रही थी।

डॉ. करुणा कमल, प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, डॉनबास्को स्कूल, पटना
मो. : 9546138889, ई-मेल : karuna.kamal2015@gmail.com

✧ ✧ ✧

'रुक जाना नहीं.....'

भावना विशाल

परंपराओं, संस्कारों में बंधी उस असहाय नारी के लिए जीने के सभी रास्ते मानो बंद हो गये थे। आखिर वो माँ के पास क्या मुँह लेकर जाये? और बहनों से सहायता की उम्मीद कब तक की जा सकती है। और यदि कहीं बहनों के ससुराल वालों को उसके बारे में पता चल गया तो? कहीं उसके दुःख का अंधकार, उसकी बहनों के जीवन का प्रकाश भी ना हर ले? यह सब सोच-सोच कर अनुकृति को हर रास्ता मद्धिम होता दिखाई पड़ रहा था।

अनुकृति के जीवन में सब कुछ सामान्य होकर भी सामान्य नहीं था। हालाँकि आज का सूरज उसके लिए नई रोशनी लेकर आयी थी, लेकिन उसी रोशनी के साथ कई ऐसी परछाइयाँ भी उसके साथ चल रही थी, जिनका सीधा-सीधा संबंध उसके अतीत की गुजरी हुई रात से था। जीवन के सैंतीस बसंत पार कर चुकी अनुकृति ने जीवन के हर मौसम और हर रंग को बहुत नजदीक से अनुभव किया था। उसे आज भी याद है, कैसे करीब पन्द्रह वर्ष पहले पापा के अचानक इस दुनिया से चले जाने के बाद जैसे उन सब पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। तीन बहनों में सबसे बड़ी अनुकृति पढ़ाई में शुरू से ही होशियार थी और इरादों की कसौटी पर भी वह एक मजबूत व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। माँ की सरकारी नौकरी से और पापा द्वारा जोड़ी गई संपत्ति से जैसे तैसे माँ ने एक-एक करके तीनों बहनों को इज्जत से अपने-अपने घर के लिए विदा किया। अपनी बाकी दोनों बहनों की तरह शुरू-शुरू में अनुकृति भी शैलेश के साथ अपने गृहस्थ जीवन में खुश थी। ममता के दो सुंदर उपहारों के साथ वह अपने गृहस्थी के उत्तर दायित्वों का पालन पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ कर रही थी लेकिन धीरे-धीरे उसकी खुशहाल गृहस्थी की काठ को षड्यंत्र की दीमक ने घेर लिया। सास-ससुर, जेठ, ननद और यहाँ तक कि शैलेश का व्यवहार भी बद से बदतर होने लगा। दरअसल अनुकृति के ससुराल वाले चाहते थे कि उसकी माँ अपनी संपत्ति को बेचकर शैलेश को व्यापार के लिए धन उपलब्ध कराएँ।

नुकृति के जीवन में सब कुछ सामान्य होकर भी सामान्य नहीं था। हालाँकि आज का सूरज उसके लिए नई रोशनी लेकर आयी थी, लेकिन उसी रोशनी के साथ कई ऐसी परछाइयाँ भी उसके साथ चल रही थी, जिनका सीधा-सीधा संबंध उसके अतीत की गुजरी हुई रात से था। जीवन के सैंतीस बसंत पार कर चुकी अनुकृति ने जीवन के हर मौसम और हर रंग को बहुत नजदीक से अनुभव किया था। उसे आज भी याद है, कैसे करीब पन्द्रह वर्ष पहले पापा के अचानक इस दुनिया से चले जाने के बाद जैसे उन सब पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। तीन बहनों में सबसे बड़ी अनुकृति पढ़ाई में शुरू से ही होशियार थी और इरादों की कसौटी पर भी वह एक मजबूत व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। माँ की सरकारी नौकरी से और पापा द्वारा जोड़ी गई संपत्ति से जैसे तैसे माँ ने एक-एक करके तीनों बहनों को इज्जत से अपने-अपने घर के लिए विदा किया। अपनी बाकी दोनों बहनों की तरह शुरू-शुरू में अनुकृति भी शैलेश के साथ अपने गृहस्थ जीवन में खुश थी। ममता के दो सुंदर उपहारों के साथ वह अपने गृहस्थी के उत्तर दायित्वों का पालन पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ कर रही थी लेकिन धीरे-धीरे उसकी खुशहाल गृहस्थी की काठ को षड्यंत्र की दीमक ने घेर लिया। सास-ससुर, जेठ, ननद और यहाँ तक कि शैलेश का व्यवहार भी बद से बदतर होने लगा। दरअसल अनुकृति के ससुराल वाले चाहते थे कि उसकी माँ अपनी संपत्ति को बेचकर शैलेश को व्यापार के लिए धन उपलब्ध कराएँ। लेकिन अनुकृति के लिए अपनी माँ के बुढ़ापे का सहारा छीनना, सपने में भी स्वीकार्य नहीं था। पापा के जाने के बाद उनके बड़े से मकान के एक हिस्से को माँ ने किराए पर चढ़ा दिया था। उस हिस्से से आने वाले मासिक किराए और अपनी नौकरी के सहारे ही उन्होंने अपनी तीनों बेटियों की पढ़ाई और विवाह की जिम्मेदारियों को पूरा किया था। और अब शैलेश और उसके परिवार वाले उसकी माँ के इस बुढ़ापे के सहारे को ही उनसे छीन लेना चाहते थे। ससुराल वालों का व्यवहार तो अनुकृति समझ सकती थी, लेकिन शैलेश? शैलेश तो उसका अपना था, उसके दो छोटे छोटे बेटों का पिता, उसका जन्म-जन्म का साथी।

कहते हैं किसी भी इंसान को जीवन में सबसे गहरी चोट, उसका कोई बहुत अपना ही दे सकता है, शैलेश के बिगड़ते व्यवहार से अनुकृति बिलकुल टूट सी गयी थी। धीरे-धीरे शैलेश के अवगुणों पर से आवरण हटने लगे। अब वो रोज शराब पीता और आए दिन अनुकृति के साथ मारपीट किया करता। मासूम अनुकृति ने काफी समय तक तो सहायता के लिए सास, ननद और जेठानी को पुकारा, लेकिन वहां से सिवाय तानों और तिरस्कार के उसे कुछ ना मिला। और एक दिन शैलेश ने अपनी ब्याहता को दो बच्चों के साथ, आधी रात को घर से बाहर निकाल दिया। उसकी शर्त थी कि अगर वो उसके साथ रहना चाहती है तो अपनी माँ से मुँहमांगी रकम लेकर ही आये। दु:ख जैसे जीवन में काली रात के समान आता है, वैसे ही वो रात भी अनुकृति के जीवन में दु:ख का घना कालापन और अंधेरा लेकर आयी थी।

परंपराओं, संस्कारों में बंधी उस असहाय नारी के लिए जीने के सभी रास्ते मानो बंद हो गये थे। आखिर वो माँ के पास क्या मुँह लेकर जाये? और बहनों से सहायता की उम्मीद कब तक की जा सकती है। और यदि कहीं बहनों के ससुराल वालों को उसके बारे में पता चल गया तो? कहीं उसके दु:ख का अंधकार, उसकी बहनों के जीवन का प्रकाश भी ना हर ले? यह सब सोच-

नुकृति के जीवन में सब कुछ सामान्य होकर भी सामान्य नहीं था। हालांकि आज का सूरज उसके लिए नई रोशनी लेकर आयी थी, लेकिन उसी रोशनी के साथ कई ऐसी परछाइयाँ भी उसके साथ चल रही थी, जिनका सीधा-सीधा संबंध उसके अतीत की गुजरी हुई रात से था। जीवन के सैंतीस बसंत पार कर चुकी अनुकृति ने जीवन के हर मौसम और हर रंग को बहुत नजदीक से अनुभव किया था। उसे आज भी याद है, कैसे करीब पन्द्रह वर्ष पहले पापा के अचानक इस दुनिया से चले जाने के बाद जैसे उन सब पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। तीन बहनों में सबसे बड़ी अनुकृति पढ़ाई में शुरू से ही होशियार थी और इरादों की कसौटी पर भी वह एक मजबूत व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। माँ की सरकारी नौकरी से और पापा द्वारा जोड़ी गई संपत्ति से जैसे तैसे माँ ने एक-एक करके तीनों बहनों को इज्जत से अपने-अपने घर के लिए विदा किया। अपनी बाकी दोनों बहनों की तरह शुरू-शुरू में अनुकृति भी शैलेश के साथ अपने गृहस्थ जीवन में खुश थी। ममता के दो सुंदर उपहारों के साथ वह अपने गृहस्थी के उत्तर दायित्वों का पालन पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ कर रही थी लेकिन धीरे-धीरे उसकी खुशहाल गृहस्थी की काठ को षड्यंत्र की दीमक ने घेर लिया। सास-ससुर, जेठ, ननद और यहाँ तक कि शैलेश का व्यवहार भी बद से बदतर होने लगा। दरअसल अनुकृति के ससुराल वाले चाहते थे कि उसकी माँ अपनी संपत्ति को बेचकर शैलेश को

अपनी माँ का ये पत्र पढकर अनुकृति की आँखों से झरझर आँसू बहने लगे। और उन आंसुओं के साथ ही उसका अवसाद भी बह गया। माँ के शब्दों ने उसके मन में एक नयी चेतना का संचार कर दिया था। उसे अहसास हो रहा था कि जीवन शायद हर कठिनाई से हारे बिना चलने का ही नाम है।

व्यापार के लिए धन उपलब्ध कराएँ। लेकिन अनुकृति के लिए अपनी माँ के बुढ़ापे का सहारा छीनना, सपने में भी स्वीकार्य नहीं था। पापा के जाने के बाद उनके बड़े से मकान के एक हिस्से को माँ ने किराए पर चढ़ा दिया था। उस हिस्से से आने वाले मासिक किराए और अपनी नौकरी के सहारे ही उन्होंने अपनी तीनों बेटियों की पढ़ाई और विवाह की जिम्मेदारियों को पूरा किया था। और अब शैलेश और उसके परिवार वाले उसकी माँ के इस बुढ़ापे के सहारे को ही उनसे छीन लेना चाहते थे। ससुराल वालों का व्यवहार तो अनुकृति समझ सकती थी, लेकिन शैलेश? शैलेश तो उसका अपना था, उसके दो छोटे छोटे बेटों का पिता, उसका जन्म-जन्म का साथी।

कहते हैं किसी भी इंसान को जीवन में सबसे गहरी चोट, उसका कोई बहुत अपना ही दे सकता है, शैलेश के बिगड़ते व्यवहार से अनुकृति बिलकुल टूट सी गयी थी। धीरे-धीरे शैलेश के अवगुणों पर से आवरण हटने लगे। अब वो रोज शराब पीता और आए दिन अनुकृति के साथ मारपीट किया करता। मासूम अनुकृति ने काफी समय तक तो सहायता के लिए सास, ननद और जेठानी को पुकारा, लेकिन वहां से सिवाय तानों और तिरस्कार के उसे कुछ ना मिला। और एक दिन शैलेश ने अपनी ब्याहता को दो बच्चों के साथ, आधी रात को घर से बाहर निकाल दिया। उसकी

नुकृति के जीवन में सब कुछ सामान्य होकर भी सामान्य नहीं था। हालांकि आज का सूरज उसके लिए नई रोशनी लेकर आयी थी, लेकिन उसी रोशनी के साथ कई ऐसी परछाइयाँ भी उसके साथ चल रही थी, जिनका सीधा-सीधा संबंध उसके अतीत की गुजरी हुई रात से था। जीवन के सैंतीस बसंत पार कर चुकी अनुकृति ने जीवन के हर मौसम और हर रंग को बहुत नजदीक से अनुभव किया था। उसे आज भी याद है, कैसे करीब पन्द्रह वर्ष पहले पापा के अचानक इस दुनिया से चले जाने के बाद जैसे उन सब पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। तीन बहनों में सबसे बड़ी अनुकृति पढ़ाई में शुरू से ही होशियार थी और इरादों की कसौटी पर भी वह एक मजबूत व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। माँ की सरकारी नौकरी से और पापा द्वारा जोड़ी गई संपत्ति से जैसे तैसे माँ ने एक-एक करके तीनों बहनों को इज्जत से अपने-अपने घर के लिए विदा किया। अपनी बाकी दोनों बहनों की तरह शुरू-शुरू में अनुकृति भी शैलेश के साथ अपने गृहस्थ जीवन में खुश थी। ममता के दो सुंदर उपहारों के साथ वह अपने गृहस्थी के उत्तर दायित्वों का पालन पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ कर रही थी लेकिन धीरे-धीरे उसकी खुशहाल गृहस्थी की काठ को षड्यंत्र की दीमक ने घेर लिया। सास-ससुर, जेठ, ननद और यहाँ तक कि शैलेश का व्यवहार भी बद से बदतर होने लगा। दरअसल अनुकृति के ससुराल वाले चाहते थे कि उसकी माँ अपनी संपत्ति को बेचकर शैलेश को व्यापार के लिए धन उपलब्ध कराएँ। लेकिन अनुकृति के लिए अपनी माँ के बुढ़ापे का सहारा छीनना, सपने में भी स्वीकार्य नहीं था। पापा के जाने के बाद उनके बड़े से मकान के एक हिस्से को माँ ने किराए पर चढ़ा दिया था। उस हिस्से से आने वाले मासिक किराए और अपनी नौकरी के सहारे ही उन्होंने अपनी तीनों बेटियों की पढ़ाई और विवाह की जिम्मेदारियों को पूरा किया था। और अब शैलेश और उसके परिवार वाले उसकी माँ के इस बुढ़ापे के सहारे को ही उनसे छीन लेना चाहते थे। ससुराल वालों का व्यवहार तो अनुकृति समझ सकती थी, लेकिन शैलेश? शैलेश तो उसका अपना था, उसके दो छोटे छोटे बेटों का पिता, उसका जन्म-जन्म का साथी।

कहते हैं किसी भी इंसान को जीवन में सबसे गहरी चोट, उसका कोई बहुत अपना ही दे सकता है, शैलेश के बिगड़ते व्यवहार से अनुकृति बिलकुल टूट सी गयी थी। धीरे-धीरे शैलेश के अवगुणों पर से आवरण हटने लगे। अब वो रोज शराब पीता और आए दिन अनुकृति के साथ मारपीट किया करता। मासूम अनुकृति ने काफी समय तक तो सहायता के लिए सास, ननद और जेठानी को पुकारा, लेकिन वहां से सिवाय तानों और तिरस्कार के उसे कुछ ना मिला। और एक दिन शैलेश ने अपनी ब्याहता को दो बच्चों के साथ, आधी रात को घर से बाहर निकाल दिया। उसकी शर्त थी कि अगर वो उसके साथ रहना चाहती है तो अपनी माँ से मुँहमांगी रकम लेकर ही आये। दु:ख जैसे जीवन में काली रात के समान आता है, वैसे ही वो रात भी अनुकृति के जीवन में

भावना विशाल, पीलीबंगा, हनुमानगढ़, राजस्थान
मो. : 9680213565

✧ ✧ ✧

खुद्दारी

हरिप्रकाश राठी

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नज़रें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

दिनेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, "दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?" कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नजरें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

दिनेश बाबू ऑफिस पहुँचे तो जानकर संतोष हुआ कि सेठ अचलनाथ किसी कार्य में फँस गये हैं। आज वे दो घण्टे देरी से आएंगे। जान बची लाखों पाए। उन्होंने मन ही मन प्रभु को धन्यवाद दिया, अपनी सीट पर आये एवं कार्य में मशगूल हो गए।

दिनेश बाबू सेठ अचलनाथ के यहाँ गत बीस वर्षों से लेखा-जोखा देखते थे। कार्य में पारंगत तो थे ही, नई तकनीक एवं नियमों से भी स्वयं को अपडेट रखते। इसी कारण पुरानी पद्धति

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से

दिनेश बाबू जानते थे इस हालात में सेठजी की कृपा ही डूबते को तिनखे का सहारा बन सकती है, लेकिन उनका स्वभाव जानकर सहम गए। इन दिनों नित्य से अधिक कार्य करते, जब-तब सेठ को रिझाने की कोशिश करते एवं फिराक में रहते कि मूड अच्छा हो तो पाँच लाख अग्रिम लेने की बात करूँ। दुःख के इस गोवर्धन को तो सेठ अचलनाथ ही अपनी कृपा-तर्जनी पर उठा सकता था।

बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नजरें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

दिनेश बाबू ऑफिस पहुँचे तो जानकर संतोष हुआ कि सेठ अचलनाथ किसी कार्य में फँस गये हैं। आज वे दो घण्टे देरी से आएंगे। जान बची लाखों पाए। उन्होंने मन ही मन प्रभु को धन्यवाद दिया, अपनी सीट पर आये एवं कार्य में मशगूल हो गए।

दिनेश बाबू सेठ अचलनाथ के यहाँ गत बीस वर्षों से लेखा-जोखा देखते थे। कार्य में पारंगत तो थे ही, नई तकनीक एवं नियमों से भी स्वयं को अपडेट रखते। इसी कारण पुरानी पद्धति

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नजरें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

दिनेश बाबू ऑफिस पहुँचे तो जानकर संतोष हुआ कि सेठ अचलनाथ किसी कार्य में फँस गये हैं। आज वे दो घण्टे देरी से आएंगे। जान बची लाखों पाए। उन्होंने मन ही मन प्रभु को धन्यवाद दिया, अपनी सीट पर आये एवं कार्य में मशगूल हो गए।

दिनेश बाबू सेठ अचलनाथ के यहाँ गत बीस वर्षों से लेखा-जोखा देखते थे। कार्य में पारंगत तो थे ही, नई तकनीक एवं नियमों से भी स्वयं को अपडेट रखते। इसी कारण पुरानी पद्धति

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नजरें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

दिनेश बाबू ऑफिस पहुँचे तो जानकर संतोष हुआ कि सेठ अचलनाथ किसी कार्य में फँस गये हैं। आज वे दो घण्टे देरी से आएंगे। जान बची लाखों पाए। उन्होंने मन ही मन प्रभु को धन्यवाद दिया, अपनी सीट पर आये एवं कार्य में मशगूल हो गए।

दिनेश बाबू सेठ अचलनाथ के यहाँ गत बीस वर्षों से लेखा-जोखा देखते थे। कार्य में पारंगत तो थे ही, नई तकनीक एवं नियमों से भी स्वयं को अपडेट रखते। इसी कारण पुरानी पद्धति

नेश बाबू आज फिर लेट हो गये।

दिनेश बाबू सदैव प्रयत्नरत रहते कि ऑफिस समय पर पहुँचें, लेकिन मत्थे चढ़ी गृहस्थी की समस्याएँ अक्सर देरी कर देती। अभी दस रोज पहले ही सेठ अचलनाथ ने उन्हें लताड़ पिलाते हुए कहा था, ''दिनेश बाबू! मैं देखता हूँ आप अक्सर लेट आते हैं। अगर आप जैसे वरिष्ठ कर्मचारी भी ऐसा करने लगें तो अन्यों को कैसे समझाएंगे?'' कहते हुए उन्होंने दिनेश बाबू को यूँ घूरा मानो कह रहे हों, समझदार को इशारा काफी है, मेरा स्वभाव तुम जानते हो, यही लच्छन रहे तो एक दिन उल्टे पैर रास्ता नपवा दूंगा। दिनेश बाबू सकपकाए, उन्होंने सर नीचे कर 'सॉरी' कहा एवं चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गए।

किसी भी सज्जन को मुनासिब है कि वह डाँट-डपट अकेले में एवं प्रशंसा सबके सामने करे पर सेठ उल्टी खोपड़ी थे। वे प्रशंसा इस तरह करते कि अन्य कोई सुन न ले, लेकिन डाँट-डपट खुले आम करते। वे इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर थे कि एक कबूतर पर पत्थर मारने से बाकी सब सहम जाते हैं। उन्हें पता था हालात के मारे यह कबूतर अब कहीं अन्यत्र उड़ने वाले नहीं हैं। उनका स्पष्ट मानना था कि ऐसा सूत्र रामबाण की तरह प्रबंधन में कारगर होता है।

दिनेश बाबू अब दस वर्ष पुरानी मोपेड पर उड़ रहे थे। उनकी मोपेड अजायबघर की किसी सामग्री से कम नहीं थी। किक पर लगे रबर के गट्टे कब के काल कवलित हुए। कई बार किक लगाते हुए लोहे की छड़ टखने से टकराती तो दर्द भी होता पर वे ज़ब्त कर लेते। जहाँ तक संभव होता खर्च टालते रहते। उनका बजट इतना तंग होता कि अन्य खर्चों की गुंजाइश ही नहीं रहती।

जेठ के दिन थे। उन्होंने मोपेड चलाते हुए बाँया हाथ ऊपर कर घड़ी पर नजर डाली। कांटा आठ के पार था। इसी समय उन्हें ऑफिस पहुँचना होता था। सेठ अचलनाथ का रौद्ररूप उनकी आंखों के आगे उभर आया। वे सिहर गए। उन्होंने मोपेड की गति बढ़ाई एवं ऐसा करते हुए क्षणभर आसमान की ओर देखा।

सूरज पूर्वांचल से ऊपर उठ आया था। नित्य उगते हुए सूर्य को देखकर उनके मन में अजीब श्रद्धा का जन्म होता, पर आज यही सूरज आग उगल रहा था। मोपेड चलाते हुए उन्होंने एक-दो बार पुनः सूर्य को निहारा फिर जाने क्या सोचकर नजरें सड़क पर जमा ली। आज सूर्य के प्रति उनके मन में श्रद्धा कम एवं भय अधिक था। यह भय उचित भी था। निःसंदेह सूर्य जगत को रोशन करता है, पर क्या उसका यूँ आंखें फाड़ना उचित है?

हरिप्रकाश राठी, सी–136, कमला नेहरू नगर, प्रथम विस्तार, जोधपुर – 342 009
मो. : 94141.32483, ई–मेल : hariprakashrathi@yahoo.co.in

✧ ✧ ✧

साहित्य यात्रा में आरम्भ से ही हम 'दस्तावेज' नाम से एक स्थायी स्तंभ प्रकाशित करते हैं। इस स्तंभ के अंतर्गत कीर्तिशेष पत्रिकाओं से कालजयी रचनाओं का पुर्नप्रकाशन किया जाता रहा है। इसका उद्देश्य है कि आज की पीढ़ी उन रचनाओं और रचनाकारों के चिंतन, लेखन से परिचित हो सकें। इसी क्रम में 'साहित्य यात्रा' के इस अंक में प्रस्तुत है अर्वातिका के जुलाई 1954 में प्रकाशित निराला की कविता पर जानकी वल्लभ शास्त्री का यह लेख।

निराला की कविता

श्री जानकी बल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य

अधिकारी विद्वानों ने कुछ प्रामाणिक विवेचानाएँ भी प्रस्तुत की है और डाक्टर रामविलास शर्मा ने बड़े श्रम से 'निराला' नामक एक आलोचनात्मक पुस्तक भी लिखि है; परंतु निराला एक आलोचनात्मक पुस्तक भी लिखी है; परंतु निराला की कविता के सांगोषांग अध्ययन के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। 'निराला' पुस्तक ने तो कदाचित् यह भी प्रमाणित कर दिया है कि निराला को बादों में बाँध रखना साहित्यिक ईमानदारी का परिणाम नहीं हो सकता।

निराला की कविता पर बहुत कम लिखा गया है। इसलिए नहीं कि उनकी कृतियाँ विश्वविद्यालयों में अपेक्षाकृत कम पढ़ाई जाती है, अत: 'अनुभवी अध्यापकों' को 'वदुतोषिणी टीकाएँ' लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसलिए भी नहीं कि 'जीवितकवेराशयो न वर्णानीय:' की लोकोक्ति को एकमात्र उन्हीं पर चरितार्थ करने की कोई सामूहिक योजना बना ली गई है! प्रत्युय मेरी समझ से इसका कारण यह है कि निराला का असाधारण व्यक्तिव, जो उनकी कला-कृतियों में बहुविध अभिव्यक्तियों से झाँकता रहा है, चौंधिया देनेवाली रोशनी के सबब झटपट पकड़ में नहीं आता; उनकी बहुरंगी जीवनानुभूतियों में इकरंगे जीवन-दर्शन का पता नहीं लगता। व्यवसायी आलोचकों को थोक पूँजी ही हाथ नहीं लगती फिर वह वस्तुनिष्ठ आलोचना के खुदरे व्यापार में प्रवृत हो तो कैसे?

अलवत्ता झुँझलाकर निषेधात्मक रूप में वैसे-वैसों ने बेरोक लेखनी दौड़ाई है। उनकी सांस्कृतिक भाषा को क्लिष्ट और कलात्मक अभिव्यक्तियों को दुरूह बताकर गर्दन झाड़

लेने में आगा-पीछा नहीं किया है। और यह सबकुछ ऐसे नाजी ढंग से, अधिकारपूर्वक किया है, कि प्रतिक्रिया में स्थापित उस 'सच' को झुठला देना आसान नहीं रह गया है।

अनेक वादी आलोचकों ने आलोचना के ऊँचे-ऊँचे सिद्धांत बघारे हैं जिनके द्वारा उद्धृत निराला के अधिकांश पदों का यह अर्थ नहीं होता जिसे प्रमाण मानकर उन्होंने निराला को पाठ पढ़ाया है! इससे संभवत: यही सिद्ध होता है कि निराला महान् है, ऐसे अनुल्लंघ्य महान् जिसे ठीक-ठीक नहीं मापा जा सकता। यों प्रशांत महासागर के तल से पल भर में विज्ञान ने कीचड़ निकाला और गौरीशंकर शिखर पर सतरंगा झंडा भी गाड़ा ही है।

अधिकारी विद्वानों ने कुछ प्रामाणिक विवेचनाएँ भी प्रस्तुत की हैं और डाक्टर रामविलास शर्मा ने बड़े श्रम से 'निराला' नामक एक आलोचनात्मक पुस्तक भी लिखि है; परंतु निराला की कविता के सांगोषांग अध्ययन के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। 'निराला' पुस्तक ने तो कदाचित् यह भी प्रमाणित कर दिया है कि निराला को वादों में बाँध रखना साहित्यिक ईमानदारी का परिणाम नहीं हो सकता।

मैं समझता हूँ, निराला की तथाकथित क्लिष्टता, दुरूहता किंवा जटिलता का रहस्य कहीं-न कहीं 'वादीविवादी' आलोचनाओं में भी अवश्य निहित है। निराला अपने तई संभवत: बैसे नहीं। महान हैं कि उन्हें हथेली पर रखे हुए आँवले की तरह उलट-पुलटकर नहीं निरखा-परखा जा सकता।

पूरे इक्कीस बरस पहले सन् 33 में श्री नलिनविलोचन शर्मा ने लिखा था- निरालाजी जॉनसन की तरह कर्मठ और अध्यवसायी, लार्ड वाइरन से उद्यट प्रत्यालोचक, कीट्स और टैगोर की तरह सु-कवि और टॉल्सटाय, ह्यूगो और शॉ की तरह निर्भीक उत्क्रांतिकारी औपन्यासिक है।

1. जैसे श्री नरेश ने 'काव्यानुशासन' नामक निबंध में लिखा है:-

निराला की कविताएँ काव्य की संज्ञा की वास्तविक अधिकारिणी है। हिंदी में अबतक कवि कहे जाने के हकदार एकमात्र वही हैं। उनका काव्य कितना नि:संग (Depersonalised) है। यह इसी से स्पष्ट है कि उनके काव्य से अबतक भी इने-गिने व्यक्तियों ने ही आनंद लिया है।

निराला के गीतों में एक विशेषता है-हर गीत की गहनता (इनटेंसिटी) महाकाव्य की है-'कैलासदर्शन' से 'कुकुरमुत्ता' तक में। उनके काव्य का एक-एक शब्द जीवंत, प्राणा-शक्ति से पूर्णा और सशक्त (भाइटल, कोर्सफुल) है। शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया गया हो कि उनकी शक्ति की संभावनाओं को अधिक से अधिक गृहीत (एक्सप्लायट) किया जा सके, केवल निराला में है।

-'साहित्य' वर्ष 2, अंक 2

और, अभी तीन वर्ष पहले सन् 51 में उन्होंने लिखा- हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में क्यों राजकीय स्वीकृति मिलनी चाहिए थी, इसके लिए अनेक तर्क उपस्थित किए गए और अतत: हिंदी को ईप्सित मान्यता मिली भी। जो तर्क सर्वथा अकाव्य या उसे किसी हिंदी-प्रेमी ने कभी गर्व के साथ उपस्थित किया, इसका ज्ञान इन पंक्तियों के लेखक की नहीं है। भारत की सभी आधुनिक

भाषाओं के जीवित कवियों में एकमात्र हिंदी को ही 'निराला' का दावा करने का सौभाग्य है। इस महाकवि को पाकर कोई भी समृद्ध भाषा गौरवान्वित हो सकती है–यह दूसरी बात है कि इस महाकवि को भाषा बोलनेवाले जितने अगुणा ग्राहक हो सकते हैं उतने दूसरे नहीं। हमारी दृष्टि में यदि निराला–जैसा कवि हिदीं में नहीं लिखता होता तो हिंदी राष्ट्रभाषा के सम्मानित पद की अधिकारिणी नहीं हो सकती थी।

'निराला के अध्ययन–संबंधी कुछ प्राथमिक विवेचन' शीर्षक विदूतापूर्ण अँगरेजी निबंध में श्री दामोदर ठाकुर लिखिते हैं।

Poets build the standred of their language that is why perhaps no comparision within Hindi poetory will show very clarly what 'Nirala' has done for the language.

X X X X X X

The nationalism of a poet is not a politician's nationalism. We do not write national poetory by being a nationalist and also writing poetory. To 'Nirala' his poems represent his language and his country. Where we shall understand what Ronsard and Dubeliment in their time by an illustration 'de la Langue francaise', we shall understand some of the metaphoraus and experiences of those in the poetory of Nirala. "This brilliance of Nirala's language is a fulfilment of the language by his light, by his sharpness and clarity of appreciation of life and language may get the clarification that we seek from language."

निश्चय ही इस सबका यह तात्पर्य नहीं कि अपनी पैंतीस वर्षों की साहित्य साधना में निराला ने समग्र महत्वपूर्ण राष्ट्रीय घटनाओं को छंदोवद्ध कर दिया है जिससे उनके द्वारा राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के साक्षात् गौरवान्वित होने की बात पानी की तरह साफ हो गई है! नहीं, यदि ऐसा होता तब तो घटनचक्र के पद्यकार को महान् कवि मानकर कोई अपना साहित्यक अज्ञान प्रकट ही न करता! वादी आलोचक उनमें दो क्रांतिकारी युगों का प्रतिनिधित्व ही नहीं पाते! किंतु उनकी राष्ट्रीयता तो तेजस्विनी भाषा और उसकी जीवंत काव्य–कला की परिधि के भीतर से ही पूरी प्रखरता के साथ प्रकाशित हुई है, उसने सस्ती नारेवाजी का रास्ता कहाँ अख्तियार किया है? श्री प्रभाकर माचवे के शब्दों में–'निराला की कविता में राष्ट्रीय भावधारा प्रत्यक्ष 'माइक्रोफोनी' या प्रचारात्मक 'झंडावादी' या 'नारावादी' कविता बनकर नहीं आई! भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन के; उसकी उथल–पुथल के, बहुत सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष प्रभाव–सूत्र निराला की रचना में विद्यमान है।.... प्रगतिशील कविताओं की ये सब कविताएँ बहुत उत्तम उदाहरण हैं, जहाँ व्यापारिक शोषण का पर्दाफाश किया गया है, जहाँ अर्थशास्त्र के कठिन सिद्धांत 'पाँचक' की दस पक्तियों में 'कांग्रेस' कर रख दिए गए हैं; जहाँ गतिरोध की भयानकता 'तारे गिनते रहें' में व्यक्त कर दी गई है, जहाँ मेढ़क और कुत्ते की प्रतीकात्मक सहायता लेकर किसानों की असहायता और विषमता पर निर्भय घनापात है; जहाँ विशुद्ध नैचुरलिज्म है; जैसे 'डिप्टी साहब आए' या 'महगू महगा रहा' में–जो कि समाजवादी यथार्थवाद से गर्मित है; या कि शुद्ध भावनातमक चीजें हैं, जैसे आर0 एस0 पंडित की

प्रेतयात्रा और प्रेतदाह पर 'तिलांजलि' और 'खून की होली जो खेली' में विद्यार्थियों की आइ0 एन0 ए0 के संबंध में गोलियाँ खाने पर भावोनमेष! इन सब कविताओं में निराला ने मार्बिड मृत्यु-प्रेम नहीं दरसाया है, जो अक्सर राष्ट्रीय ध्वंसवादी कवि दिखाते हैं। उनकी स्वस्थ, परूप, कालाकार आत्मा सर्वत्र दहाड़ती है, 'हुइ-हुइ' कर विलाप नहीं करती।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी प्रकारांतर से उनकी असाधारण साहित्यिक मर्यादा को लक्ष्य किया है- 'विद्रोह के स्वर में बोलनेवाले साहित्यकारों की इस युग में कमी नहीं है। पुरातन विधि-निषेध व्यवस्था को खुली चुनौती देना आजकल की अति परिचित घटना है। सनातन समझी जानेवाली नैतिकता निस्संदेह आजकल सबसे प्रधान हन्तव्य मानी जाने लगी है। किंतु इस प्रकार की चुनौती देनेवाली प्राय: संतुलन खो बैठते हैं; व्यवस्था का विरोध प्राय: ही उच्छृखलता के द्वारा किया जाता है और सनातन समझी जानेवाली नैतिकता का विराधी ततोधिक सनातन मानी जानेवाली निर्मर्याद बाचालता का आश्रय लेता है। किंतु निराला के काव्य में इतना विद्रोह और ललकार होने पर भी उच्छृंखल और निर्मर्याद वाचालता नहीं आने पाई है। इसका कारण यह है कि निरालाजी को अपना लक्ष्य ठीक मालूम है। अच्छा डाक्टर रोग पर आक्रमण करता है, रोगी पर नहीं; और इसीलिए उसके सारे प्रत्यनों की एक सीमा होती है। यदि उसके प्रयत्न रोग को नष्ट करने के बाद रोगी को भी नष्ट करने लगें तो निस्संदेह वह अवांछनीय डाक्टर है। निरालाजी के कठोर-से-कठोर आक्रमण भी मर्यादित है।'

संक्षेप में आए दिन निराला के वास्तविक मूल्याकंन का कार्य रचनात्मक आलोचनाओं के माध्यम से नए सिरे के शुरू हो गया है, यह ऊपर के कतिपय नए निर्देशों से स्पष्ट हो जाता है। ज्यों-ज्यों निराला की कविता का मनन-मंथन होगा, त्यों-त्यों हिंदी कविता की असीम शक्ति-सामर्थ्य ही उद्‌घाटित-उद्भासित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

(2)

यों तो निराला की 'जुही की कली' का और मेरा जन्म एक ही साल हुआ था; किंतु मेरा उससे प्रथम परिचय अटठारह वर्ष बाद हुआ। तब से अपनी ही आँखों निराला की कविता को देखता आ रहा हूँ। देखता आ रहा हूँ कि निराला की काव्य-प्रतिभा दल-पर-दल खोलती हुई संपूर्ण अर्थ में शतदल हो चुकी है और अब यह सहस्रदल होने के क्रम में है। इधर के गीत आकृति में जितने छोटे हैं, प्रकृति में उतने ही बड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भाव जो छलके पदों पर, न हों हल्के, न ही नश्वर' की प्रार्थना सार्थक हो चुकी है।

इधर 'रचना की ऋजु वीन बनीं तुम, ऋतु के नयन नवीन बनीं तुम' से आरंभ कर अब तक के गीत संगृहीत नहीं हुए हैं, एक 'अर्चना' आई है। अत: अभी आरंभिक रचनाओं की भाँति इनका संकलन भी दुर्लभ होने के कारण निराला की कविता का अध्ययन क्रमश: परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, अणिमा, कुकुरमुत्ता, बेला, नए पत्ते और अर्चना द्वारा ही संभव है। यहाँ थोड़े में इन्हीं नव रत्नों की चर्चा का प्रयत्न किया जाएगा।

'परिमल' सन् 30 में प्रकाशित हुआ था। पंद्रह वर्ष पहले से खड़ी बोली की कविता जिस जीवंत भाषा-शैली एवं भाव-विस्तार का संधान तथा निर्माण करती आ रही थी उसीक प्रथम प्रतिनिधि रचना न 'पल्लव' है और न 'आँसू' वह 'परिमल' ही है, यह इस परस्पर प्रशंसी युग के समाप्त होते ही तटस्थ आलोचकों द्वारा उद्घोषित हो जाएगा। डाक्टर भटनागर ने ठीक ही लिखा है- 'आँसू' की अभिव्यंजना को कम लोग ठीक-ठीक समझ पाते थे। आज भी सब सरलता से उसे समझ नहीं पाते। 'पल्लव' में मूर्तिमत्ता (कल्पना) का अतिरेक इतना था, अँगरेजी रोमांटिक कवियों (विशेष कर 'शेली') की छाप इतनी अधिक थी कि उस काव्य का हिंदीपन बहुत कुछ डूब गया था। निराला के 'परिमल' ने इस हिंदीपन को अक्षुपण बनाए रखा। प्रसाद गुण, सीधी-सादी अभिव्यंजना, साधारण बोलचाल के ढंग पर वाक्यविन्यास-ये हिंदी के लिए नई चीजें थी। 1930 के पाठकों और आलोचकों में विश्लेषणात्मक दृष्टि का अभाव था, इससे केवल कुछ रहस्यात्मक कविताओं के नाते 'निराला' को 'कठिन कवि', 'रहस्यवादी कवि' या 'दार्शनिक कवि' कहकर छुट्टी पा ली गई। परंतु सच तो यह है कि पंत, प्रसाद और निराला-तीनों नए कवियों में निराला का काव्य ही अधिक विस्तृत भूमि पर खड़ा था। न वह प्रसाद की कविता ही तरह अभिव्यंजनात्मक शली के चक्कर में पड़ा था, न उसे पंत के 'पल्लव' की कवितओं की तरह उपमा-उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगानी थी।'

आज हिंदी कविता में 'सचेष्ट सरलीकरण' की जैसी अद्भुत प्रक्रिया अपनाई जाने लगी है, चौतीस वर्ष पहले के निराला में उसका स्वस्थ, स्वाभाविक रूप देखते ही बनता है। भाषा का विकच बचपन जहाँ-

लाज ने पकड़ लिए हैं पैर,
करूँगी अब न बाग की सैर!

जैसी पंक्तियों से प्रकट होता है, वहाँ उसकी स्वस्थ, गतिशील सुंदरता का पता मिलता है-

अलसता की-सी लता।
किंतु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बरपथ से चली!

अथवा

बंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
यौवन-उभार ने-
पल्लव-पर्य्यंक पर सोई शेफाल के,

-के समान आरावंत पंक्तियों से। और मेरा तो यह अंतिम अभिमत है कि आधुनिक हिंदी काव्य में निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की कि झोकों की झड़ियो से सुंदर-सुकुमार देह सारी झकझोर डाली!

–से अधिक आवेगपूर्ण तथा सौंदर्य दप्त भाषा का प्रयोग हुआ ही नहीं।

'परिमल' की विषय-वस्तु की व्यापकता के साथ ही उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन अपेक्षित है। निराला नई टेकनीक की राह से ही नई भावभूमि की ओर क्रमशः बढ़ना चाहते थे, यह उनके मुक्तवृत्त के प्रथम आग्रह से भी स्पष्ट हो जाता है–

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू

प्रिये, छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह! 'परिमल' में प्रार्थना के पद है; प्रकृति की 'वहिरंतर'- छवियों के प्राणवान् प्रतिमान हैं; प्रेम की आंतरिक उपलब्धि की स्वरलिपि है; दार्शनिक भाव-भूमि का निर्मल प्रकाश है और युग की राष्ट्रीय चेतना की ऊँची पहचान के साक्षी कलात्मक संयम तथा दार्शनिक गांमीर्म्य से उद्दीप्त, मेघ-निर्घोष भी है।

निराला के, शाखा-प्रशाखाओं के स्निग्धच्छाया, काव्य-कल्पतरू का मूल स्वयं उन्हीं का विराट् व्यक्तित्व है।

'गीतिका' में भी आरंभ ही से अनेक आकार-प्रकार के गीत देखने को मिलते है-विशुद्ध दार्शनिक और श्रृंगारात्मक; आवेगपूर्ण और गांभीर्य्य-मंथर; अलंकारखचित और निरामरण। कहीं तो वेदांत की विरसता काव्य की कमनीयता में समरस हुई दिखती है और कहीं दर्शन की दिव्य ज्योति रमणी की रमणीयता बनी हुई। कहीं कठिन साधना-शीला से पिष्ट प्रणय की मर्मच्छवि है और कहीं गोधूलि के मटमैले प्रकाश में, निराशा से झुकी हुई गीली पलकों का छायाचित्र। कहीं मृदंग का मंगल निनाद है और कहीं प्राणावल्ल्की के कनक-रजत तारों की मदिर-मधुर झंकार। तात्पर्य यह कि इसमें महोदवी के गीतों की तरह एक ही भाव की विविध भावनाएँ नहीं; किंतु वस्तुतः विभिन्न स्थितियाँ और परिरिथतियाँ हैं; और कहीं-कहीं तो एकही एक में आश्चर्य कर अनेकता है।

कदाचित् यह ऐसा इसलिए है कि कवि को गत्यात्मक जीवन का कोई एक ही रूप, कोई एक ही स्थिति, कोई एक ही पक्ष जमकर देखते रहना पसंद नहीं है; वह हँसी के साथ आँसू को, विरह के साथ मिलन को, सौंदर्य के साथ स्वास्थ्य को, मृत्यु के साथ मुक्ति को और आरंभ के साथ परिणति को अन्वित कर निरखता-परखता है; जीवन की जिस पँकिल पगडंडी पर पल भर पग रखता है उसी पर अपनी अमिट छाप छोड़ देता है। काव्यगत चित्रण में रेखा के साथ रंग, रंग के साथ लय और लय के साथ स्वयं वहीं सुरीला हो गया है। गीतों के केंद्र में अपने व्यक्तिव को सुप्रतिष्ठित करने के क्रम में उसने चित्र और संगीत की रूढ़ि से निःसंग होकर आत्म निरीक्षण किया है कि उसका स्वर निषाद में साफ है या गांधार में सधा; उसकी तड़ितूलिका जड़ प्रकृति को सजीव कर सकी है या सजीव सत्ता को सजग; उसका रूप-निर्माण सफल हुआ है या प्राण-प्रतिष्ठा समारोह-पूर्ण; उसकी कल्पना ओजस्विनी है या अनुभूति तेजस्विनी; उसकी बासना तीव्र है या साधना उग्र; वह गा सका है, रंग भर सका है या निर्माता भी है। अनेक ऐसे ही जाग्रत क्षणों की बारीक पकड़ गीतिका के वर्ण-चमत्कार और भावोल्लास, ओज और माधुर्य, छंद और संगीत की विविधता में वाणी पा गई है। फिर भी 'अविभक्त विभक्तेषु' का अभिज्ञ गीतिका की

केंद्रीय दार्शनिकता को सहज ही लक्ष्य कर लेगा। आरंभ में कवि ने 'नव नम के नव विहगवृंद को नव पर, नव स्वर' देने की जो बहुर्थक प्रार्थना की है, वह अंतिम गीत में- 'उड़ने को नभ को ताके, उपवन की परियाँ आली' की तृप्ति से ही चरितार्थ हुई है।

'अनामिका में 'परिमल' और 'गीतिका' की अपेक्षा निराला का और प्रौढ़-पुष्ट, और अधिक स्वस्थ-समर्थ रूप प्रकट हुआ है। निराला की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से काव्य की सामग्री का संकलन किया है। अत: छंदो की मुक्ति के प्रवर्तन के साथ-साथ आधुनिक कविता के विषय-विस्तार की दृष्टि से भी उनका महत्व सर्वप्रथम 'परिमल' द्वारा अंकित हुआ, फिर 'गीतिका' ने बिंदु में सिंधु समो देने की उनकी उदात्त शक्ति का अपरूप परिचय दिया और इस 'अनामिका' ने तो एक ही साथ (बीज रूप में परिमल-काल से ही विद्यमान) उनकी उन त्रिविध प्रवृत्तियों को प्रकाशित किया जिनमें क्रमश: 'क्लासिकल' कलात्मक प्रौढ़ि व्यंग्यात्मक सामर्थ्य और प्रगतिशील तत्त्वों का अद्भुत आकलन है। दूसरे शब्दों में अनामिका में शक्ति और सौदर्य की जैसी अन्योन्य-संसक्तता के दर्शन होते हैं वैसी, आधुनिक हिंदी-काव्य में, पहले या अबतक और कहीं नहीं देखी गई।

'अनामिका' साधक कवि की सिद्धावस्था है। 'राम की शक्ति-पूजा' के से स्वल्प आकार-प्रकार का, परम पौढ़ 'प्रबंध काव्य' विश्व की किसी भी भाषा में कमी नहीं लिखा गया। 'सरोज-स्मृति' सी 'एलेजी' न 'ग्रे' की है और न 'आर्नल्ड' की। बाह्य तथा अंतर्जगत् के द्वंद्वों, आलोड़नो से उन्मथित-तरंगायित, प्रसिद्धि से सिद्धि तक क्रम की, झकझोर देनेवाले व्यंग्य से स्तब्ध कर देनेवाली निस्तब्ध लब्धि तक की अभिव्यक्तियों से ओतप्रोत, 'वनवेला' सी अतल के अतुल वास से भरी कविता बार-बार नहीं रची जाती ।

'अनामिक' निराला का प्रतिनिधि काव्य-ग्रंथ है। इसमें छंदो के नए-नए प्रकार के प्रस्तार में, विचारों की उच्चता में-सर्वत्र वह महान कवि कलाकार के रूप में प्रकट हुए हैं। कोरी भावुकता या भावोच्छ्वास से ऊपर- बहुत ऊपर उठे हुए, कलासाधक की प्रौढ़ शैली और पुष्ट भावों का प्रवाह अनामिका की अपनी विशेषता है। बड़ी-से-बड़ी कविता में भी जैसे कोई श्लथ-शिथिल पंक्ति ढूँढ़े नहीं मिल सकती वैसे ही यहाँ छोटी-से-छोटी रचना भी महत्ता में अनुपम प्रमाणित होगी। 'तोड़ती पत्थर' अथवा 'वे किसान की नई बहु की आँखे', 'बादल गरजो' या 'तोड़ो-तोड़ो, तोड़ो कारा'-ये सभी एक से बढ़कर एक है। 'ठँठ' की भावामिव्यंजकता इसी प्रकार की किसी संस्कृत कविता-

कस्त्वं भो:? कथयामि,
दैवहतकं मां विद्धि शाखोटजं,
वैराग्यादिव वक्षि, साधु विदितं, कस्मादिदं कथ्यते,
वामेनात्र वटस्तमध्वगजन: सर्वात्मना सेवते न च्छायाऽपि
परोपकारकरणी मार्गस्थितस्यापि मे।

-से तुलना करने पर अपनी श्रेष्ठता के पर्याप्त मार्मिक उपकरण प्रस्तुत कर देगी। उद्धत पद्य में एक भुतहे पेड़ और बटोही की बातचीत है। बटोही पूछता है- 'तुम कौन हो, जी?'

'ठहरो, बताता हूँ- मैं एक अभागा भुतहा पेड़ हूँ!'
'बड़ा ही कचोट-भरा जवाब देते हो तुम तो!'
'हाँ, भई, तुमने सही समझा।'
'मगर ऐसा क्यों।'

'बताता हूँ-देखो न, यह इधर बाई ओर जो एक बरगद का पेड़ दिखलाई पड़ता है उसे बटोही हमेशा घेरे ही रहते हैं-कभी कोई इसके ठंडे साए में सोया रहता है, कोई पकाता-खाता रहता है, कोई दोने बनाने के लिए पत्ते तोड़ता है; मतलब, सब-के-सब इसे चाहते हैं, और इधर एक मै हूँ जो ठीक रास्ते पर पड़ता हूँ, पर और तो और-जिसे देखो, वही-मेरी छाँह तक बचाकर, कतराकर धीरे से निकल जाता है; अपने थककर चूर हुए बदन पर भी मेरा साया नहीं पड़ने देना चाहता।

निराला का ठूँठ अपने में ऐसी व्यथा नहीं छिपाए हुए है। वह फक्कड़ है, मस्त है, उसे ललित लवंग-लताओं से ईर्ष्या नहीं, वह कृतघ्नता सहकर व्यंग्य की एक बेधक मुसकान के साथ कहता है-

अब यह वसंत से होता नहीं अधीर,
पल्लवित झुकता नहीं अब यह धनुष सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं हैं तीर!

'एजरा पाउंड' के 'द ट्री' या 'थ्रेनस' से तुलना के योग्य यह परिधि नहीं, फिर भी थ्रेनस की कुछ पंक्तियाँ यहाँ बरबस गगन-मन में घुमड़ने लगी है

नो मोर फॉर अस द लिट्ल शाइंग
ने मोर द विंड् एट ट्विलाईट ट्रबुल अस

XXXXX

नो मोर डिजायर फ्लाइएथ मी,
नो मोर फॉर अस द ट्रेबलिंग
एट द मीटिंग ऑफ हेंड्स।

'केवल वृद्ध-बिहग एक बैठता कुछ कर याद' की-सी निगूढ़ व्यंजना अवश्य इनमें कहीं नहीं है। वैसी व्यंजना का ईषत् आभास एक दूसरी कविता में मिलता है-

एंपटी आर द वेज ऑफ दिस लैंड वेयर जॉन
वाक्ड वंस, एंड नाउ डज नॉट वाक
बट सीम्स लाइक ए पर्सन जस्ट गौन।

-पौंड

'तुलसीदास' निराला की एक महान कलाकृति है। 'राम की शक्तिपूजा' से इसकी समता उदात्तता तथा गाढ़ बंधता के कारण ही प्रचलित हुई है। वैसे, मेरे विचार से, इनमें, रचनाकौशल तथा

भावधारा-संबंधी पर्याप्त वैषम्य है। 'राम की शक्तिपूजा' मे पांडित्यपूर्ण ओजस्विनी भाषा का सुघटित छंद के भीतर से सुसंयत प्रवाह तथा असाधारण भावगरिमा विद्यमान है जिस कारण वह पाश्चात्य 'एपिक' का सान्निध्य प्राप्त करती है। पौराणिक आख्यान के आधार पर रचित तथा सांकेतिक व्यंजनाओं से ओत-प्रोत होरक भी वह विशिष्ट मनोभूमि पर घटित होनेवाले चारित्रिक घात-प्रतिघातों की सजीवता के कारण महाकाव्य-सी महार्घ है। किंतु 'तुलसीदास' तो इतिहास, समाज, राजनीति, दर्शन तथा मनोविज्ञान के ताने-बाने से बुना हुआ एक ऐसा सांस्कृतिक खंडकाव्य है जो मेघदूत की श्रेणी की कलात्मक बहुमूल्यता का अधिकारी है। स्वल्प परिधि में ही, कल्पनाओं की मांसलता, विचारों की प्रौढ़ता, द्वंद्वात्मक भावनाओं की नाटकीय उच्चावचता तथा कलात्मक कसावट की दृष्टि से वह 'कामायनी' से अधिक सफल काव्य है, यह मेरा सुदृढ़ विचार है।

छायावादी युग में 'तुलसीदास' का जन्म उस युग को अमरत्व प्रदान करने के लिए ही हुआ होगा। अभीतक छायावाद का अर्थ हवाई कल्पना समझनेवालों को चाहिए कि वह निराला की कविता-विशेषकर 'तुलसीदास' के जोड़-तोड़ की कोई दूसरी कलाकृति आधुनिक हिंदी-काव्य से दें। कामयनी का नाम लेने से काम नहीं चलेगा। कामयनी की महत्ता उसकी प्रशंसा करने की परिपाटी में से नहीं प्रकट होती। मैं मधुमयी भाषा और समरसता के सिद्धांत पर उद्धरण-प्रचुर बहुज्ञता की विज्ञापिका, नीरस व्याख्यानमाला की अपेक्षा नहीं करता। यह कहता हूँ कि उस विराट् पट पर अंकित चलचित्रें से तुलसीदास की चित्ररेखाएँ कहीं अधिक पुष्ट और प्रदीप्त है। 'कामायनी' की मधुमादकता में जहाँ काव्य का संपूर्ण वातावरण झूमता रहा है, वहाँ 'तुलसीदास' की पौरूष-प्रगल्भ तेजस्विता से काव्य की पंक्ति-पंक्ति में गत्यात्मकता और प्रबुद्धता बनी रही है। कामायनी के कलस्वन वंश से तुलसीदास का धमकता हुआ मृदंग नहीं तुलित हो सकता? कुमारसंभव के तृतीय सर्ग में संचारिणी पल्लविनी लतासी उमा की छविच्छटा का अंकन कालिदास की कनक-तूलिका का अतुल चमत्कार समझा जाता है। वस्तुतः अकलुष सौदर्य की पावन मादकता की उससे ऊँची सृष्टि अबतक नहीं देखी गई; किंतु भाव-व्यंजना में उतनी ही गंभीर, अपर प्रकार की एक नारी-मूर्ति तुलसीदास में अंकित हुई है-

देखा, शारदा नीलवसना
हैं सम्मुख स्वयं सृष्टिरशना
जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना वरदात्री
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर

यह विश्व हंस, है चरण-युगल जिस पर श्री! मैं समझता हूँ, यह वैदिक उषा-सी विश्व-व्यापक पावन ज्योतिःप्रतिमा है। तुलसीदास पर शैली की वह संमति मान्य हो सकती है जो उसने कीट्स के 'हाइपीरियन' को 'पैरेडाइज लॉस्ट' से भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए दी थी- इफ हाइपीरियन बी नोट ग्रेंड पोएट्री, नन हैज बीन प्रोड्यूस्ड बाई आवर कॉन्टेम्पोरेरी। मैं तुलसीदास के संबंध में भी ऐसा ही कुछ कहना चाहता हूँ कि यदि तुलसीदास महान काव्य नहीं है तो दूसरा उस युग में और नहीं रचा गया।

'परिमल' में कसाव के साथ-साथ खुलाव भी था। हर रंग के डोरे उसके ताने-बाने में थे, फिर भी 'चदरिया' झीनी-झीनी बीनी गई थी। और 'गीतिका' में रंग उभरा गहराया, बुनाई घनी-गाढ़ी फिर भी जैसे ढाके का साठ गल मलमल कि क्वाँरी लुनाई छिपाए न छिपे। 'अनामिका' में परिमल और गीतिका के वस्तु-विस्तार तथा रचना कौशल का मिश्र विकास दिखता है। 'तुलसीदास' 'राम की शक्तिपूजा' से बहुत पहले रचित होकर भी बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ, अत: 'अनामिका' की महाकाव्य-सी गहन कतिपय कविताओं में ही उसकी शैली और जीवन के आवेग की छिटफुट छाप देखी जानी चाहिए।

इस प्रकार की कविता की सुनहली तरूनाई 'परिमल' से 'तुलसीदास' तक रूप-रस-गंध की पतों पर पतें बिछाती गई। 'अणिमा' में पहली बार उसे वह आभरण उतरते देखा गया, परिमल के वनफूलों के श्रृंगार की पतझड़ के अल्हड़ झोके की तरह तोड़कर गीतिका-गायनकाल से ही जिस ससंभ्रम धारणा कर रखा था। 'परिमल' यदि निराला का एकमात्र धरातल होता तो 'अणिमा' उसीकी प्राकृतिकता कहलाती।

अणिमा के गीत उज्ज्वल जल-भरे बादल-से इकहरे कजरारे हैं। ऐसे कि किसी जलपरी की छिँगुनी से छू जाने पर भी अनास्वादित रस बरस पड़े। व्यावहारिक घरेलूपन लिए चारवरस की बिटिया की आँसुओं के डलबल- **आँखों सी सरल-सजल भाषा; स्वर सौंदर्य से अतिश्य श्रुति-मधुर गीत** 'अणिमा' की वहिरडग विशेषता है। इसमें **'तुमसे चल तुममें ही पहुँचे, जितने रस आनंद रहें'** ऐसी उपलब्धि है; **'तुम्हें सुनाने को मैंने भी नहीं कही कम गाने गाए-जैसी द्दप्त तृप्ति है।**

'जानता हूँ, नदी-झरने, जो मुझे थे पार करने, कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख कोई नहीं मेला' की भाँति अखंड आत्म-विश्वास है; **'द्रुम-दल-शोभी फुल्ल नयन थे, जीवन के मधु-गंध-चयन थे'** के समान स्वस्थ-संतुलित श्रृंगार है; **'हरे तन-मन प्रीति-पावन, मधुर हो मुख मनोभावन, सहज चितवन पर तरंगित हो तुम्हारी किरण तरूणा'** के तुल्य आर्द्र करूणा है और **'दूर हो अभिमान संशय, वर्णा आश्रम-गत महामय, जातिजीवन हो निरामय वह सदाशयता प्रखर दे'**- ऐसी जातीय सदाशयता है।

आलोचकों को शिकायत है कि 'अणिमा' में निराला का मौसम सम पर है; प्रतिभा का फेनोज्जवल ज्वार उतार पर है-वह रैदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रति भी प्रणात हो उठे है। सचमुच ही बिजली की कड़क और बादलों की तड़क-भड़क से क्वाँर की मादनी चाँदनी में नहाए अकाश की छवि और होती है; धुएँ के भभाको में खोई लपटों से दहकते अंगारे दूसरी तरह के होते है; आमूल मुकुलिता माधवी की बेल से पदतल पर बिछे फूलोंवाले हरसिंगार के झाड़ में अंतर होता है। सचमुच ही 'अणिमा' से निराला की कविता नए मोड़ लेती है।

नए मोड़ लेती है- 'जैसे युगांत' से पंत की कविता। इसमें अतीत का सिंहावलोकन है, वर्तमान की धुंध और भविष्य का प्रकाश भी। अपनी आवृत्ति भी निराला ने नहीं की, अत: युग-सँधि के रंध्र से छनकर आनेवाली किरणों को सँजो सकने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी है। यहाँ से हिंदी कविता को नई भाषा, नई शैली मिली है-

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
लोण है, महफिल है,
नग्मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है।
प्रकृति-चित्रण में ऐसा यथार्थ-
भरा हुआ तालाब
खेलती हैं मछलियाँ
पानी की सतह पर
पूँछ पटकती हुई।

X XX

जलाशय के किनारे कुहरी थी,
हरे, नीले पत्तों का घेरा था;
पानी पर आम की डाल आई हुई;
गहरे अँधरे का डेरा था।

निराला की कविता में ही नहीं, हिंदी-कविता में पहली बार प्राप्त हुआ। आगे चलकर आम्या में पंत ने 'वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार' लिखा, पर यह निरलंकारता अपने में अप्रतिम रही। यों तो कब न निराला ने नए-नए बीच बोए, पर परती पड़ी जमीन के गोड़ते, खाद देते जाने के सब अब पौधे उग-उगकर लहराने को मचलने लगे थे। देव-दुर्लभ मानवता रक्त-मज्जावाले आदमी की सूरत में ढल चली थी; हृदय के अमृत में आँसू, पसीने और खून की सर्दी-गर्मी भी घुलने लगी थी। और निराला ने 'कुकुरमुत्ता', 'वेला' और 'नए पत्ते' में धरातल बदल दिया। नई जिंदगी के पाँवे के नीचे की जमीन टटोलते और अपनी नई कविता के लिए नए प्रतीक और प्रतिमान गढ़ते हुए निराला ने यह गुर पा लिया था-

स्वार्थ के अवगुंठनो से हुआ है लुंठन हमारा।

XXXXX

जमींदार की बनी, महाजन धनी हुए हैं;
जग के मूर्त पिशाच-धूर्तगण गनी हुए हैं।

XXXXX

खुला भेद, विजयी कहाए हुए जो,
लहू दूसरे का पिए जा रहे हैं!

हर सैरगाह में आदमी के खून के फव्वारे आकाश-गंगा संगाम के लिए जैस अविच्छिन्न ऊर्ध्वमुख हो रहे थे; धुँधलका रक्ताक्त धरती का काले रंग का बुर्का हो रहा था, जिसके भीतर से करूणा-कातर नयन मटमैली बूँदें उगल रहे थे और निराला नई कविता सिरज रहे थे-

विशेषता के गले नीच की छुरी जो चली
गुलाब जैसा खिला रिक्तमाभ शान हुई।

XXXXX

सफाई कट गई है चाँद की भी
जुही के उसने जो जोबन टटोले
गई पत देवता- पति की, कि उसने
प्रिया मीरा को विष के घूँट घोलें।

XXXXX

जमाने की रफ्तार में कैसा तूफाँ
मरे जा रहे हैं, जिए जा रहे हैं।

XXXXX

जिन्होंने ठोकरे खाई गरीबी में पड़े उनके हजारों-हा हजारों हाथ के उठते समर देखे। गगन की ताकतें सोई, जहाँ की हसरतें रोई निकलते प्राण बुलबुल के बगीचे में अगर देखे।

निराला की विविध वृत्तियों का मोटे तौर पर वर्गीकरण करना हो तो पहले हम उन्हे दो वर्गो में बाँट लें-आत्मनिष्ठ वृत्तियाँ और समाज-निष्ठ वृत्तियाँ। उनकी काव्य-साधना में यह द्विविधता प्रारंभ से ही प्राप्त होती है। परिमल की दीन, भिक्षुक, विधवा, बादल आदि कविताएँ जैसी है वैसी गीतिका में भी है; अनामिका, तुलसीदास और अणिमाा में भी। इसी प्रकार 'वेला' और 'नए पत्ते' में भी उनकी रहस्यवादी प्रवत्ति नहीं छूटी है। यह रहस्य-दर्शन और समाज-चेतना कवि के एक ही उत्स की दो धाराएँ है। वह उत्स है मानवता से अपार प्यार। वह मानवता के उन्नयन के लिए ही भूमि और आकाश-दोनों का सहारा लेता है। यह सच है। कि 1916 से 40 तक की रचनाओं में आत्मनिष्ठ वृत्तियों की प्रमुखता रही है और 40 से अबतक की रचनाओं में सामाजिक प्रवृत्तियों की। किंतु उन्होंने पंचवर्षीय अथवा पंत्रसूत्रीय योजना बनाकर ऐसी विभक्त वृत्तियाँ कदापि व्यक्त नहीं की है। यह उनकी सहज वृत्ति-व्यक्ति है। युद्ध की पृष्ठभूमि में कहा जाय तो यह कहना होगा कि प्रथम महायुद्ध ने उन्हें दार्शनिक दृष्टि दी थी और द्वितीय ने सामाजिक दृष्टिकोण। यह अंतविरोध नहीं, वृत्ति-सचमुच है। मानवता को केंद्रित कर जड़-चेतन वादों का कंठाश्लेष है।

पराजय और पलायन के चिह्न निराला में नहीं है, इसका कारण उनका अपने ऊपर अखंड विश्वास, फिर जनता की शक्तियों पर अटूट आस्था है। परिस्थितियों से घबराकर भागों नहीं, उनका डटकर (शरीर और आत्मा दोनो से) मुकाबला करो, निराला की कविता में यह भाव सर्वत्र व्याप्त है-

खीचे वगैर नभ से डरता झरता नहीं शिशिर-का;
तेल, आँच जब न खाया निकला कब आँवले से?

XXXXX

आँख से आँख मिलाओ, उनका डर छोड़ो!

XXXXX

राह पर बैठे, उन्हें आजाद तू जबतक न कर चन मत ले,
गैर को बरबाद तू जबतक न कर।

'पास ही रे हीरे की खान' आदि दार्शनिक गीत भी ऐसे ही । इसी प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक युग का युद्ध चित्र प्रस्तुत करते हुए निराला ने जहाँ भौतिकवाद के अमंगल स्वरूप पर प्रकाश डाला है वहाँ भी उनका दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी नहीं है अन्यथा 'रोक रहजन की प्रगति का, फेर से, बाधक जो है, दरबदर भटका उसे, मर्याद तू जबतक न कर' वह क्यों लिखते? इसलिए यहाँ श्री विश्वभरनाथ उपामयाय के शब्दों को दुहराना आवश्यक है, इनसे आपातत: परस्पर-विरोधी प्रतीत होने-वाले निराला के अनेक स्तरों का सामंजस्य संकेतित होता है- 'निरालाजी पर विवेकानंदजी द्वारा लिए वेदांत के उपनिषद् आधार का प्रभाव अधिक है, शंकर का कम, क्योंकि उनका ज्ञान-ज्ञान के लिए उतना नहीं है जितना समाज के लिए है; शंकर में निरपेक्षितावाद अधिक है जबकि निराला में ज्ञान की सापेक्षता अधिक पाई जाती है। शाश्वत ब्रहा-आत्मा की अनुभूति अस्थिर मायामय जगत् के विरूद्ध नहीं पड़ती है और जब मानवता की मुक्ति का अंतर्नाद कवि में प्रबल हो जाता है तो वह अपने सबसे बड़े प्रलोमन-अपवर्ग और अधिवास को भी छोड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, यद्यपि उसका विश्वास यही है कि मनुष्य का चरम लक्ष्य नदी के समान उसी चेतना-सागर में मिल जाना है ताकि पुन: इन बंधनो में न पड़ना पड़े।

1. आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर गवित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौने-जैसे बने हुए वैज्ञानिक साधन, केवल पैसे आज लक्ष्य में मानव के, जल, स्थल, अंबर, रेल-तार-बिजली, जहाज, नभयानों में भर दर्प कर रहे है मानव, वर्ग से वर्ग-गण, भिड़े राष्ट्र, स्थार्थ से स्वार्थ विचरण।

-अणिमा: भगवान बुद्ध के प्रति

अर्थात् कवि जन्म-मरण के बंधनों से मिलनेवाली मुक्ति को टाल सकता है; किंतु जन-जीवन की विषमता, पीड़ा, दु:ख, दीनता को सहन नहीं कर सकता।

इसीलिए निराला अद्वैतवादी भी है, द्वैतवादी भी भक्त भी और ज्ञानी भ; पुनरूथानवादी भी और क्रांतिकारी भी, लौह-प्रहार तथा ललकार भी और आत्म पर-मात्म-मिलन की मधुर झंकार भी। वह वैयक्तिक अनुभूतियों के स्वर्ग में विचरनेवाला मुक्त विहग भी है और पतनोन्मुख रूढ़िप्रिय संस्कृति की विहग-बालिक के लिए भयंकर बाज भी; उसमें लौकिक प्रेम की ललक भी है और आध्यात्मिक भूमि पर अनुभूत आत्मपुलक भी निराला विरोधों का स्वयं सामंजस्य और

सामंजस्यों का विरोध है। अत: अंतविरोधी को देखकर जो समझते है कि निराला किसी एक विचार-दर्शन का कवि नहीं-एक निश्चित विचार-सरणि का स्रष्टा नहीं, वे सोचने से इन्कार करते हैं।'

काल-क्रम से 'कुकुरमुत्ता' का प्रकाशन 'अणिमा' से पहले हुआ था। आजतक की निराला की काव्य-साधना को यदि दो भागों में विभक्त करें तो 'जुही की कली' से प्रथम भाग का प्रारंभ माना जायगा और 'कुकुरमुता' से द्वितीय भाग का। इस समय तक भाषा और भाव के क्षेत्र में विश्व -साहित्य में नई-नई उत्क्रान्तियाँ होने लगी थी, प्रबुद्ध निराला का काव्य भला कैसे अछूता रह जाता। प्राचीन संस्कारों की दीवारें ढहकर 'कुकुरमुत्ता' में समतल बन गई है। वेला और नए पत्ते में कवि का जो जनवादी रूप प्रकट हुआ है, उसे आँकने के लिए 'कुकुरमुता' को परिपाटी की पाटी धो-पोछकर साफ करनी पड़ी है। 'कुकुरमुत्ता' असंस्कृत सामान्य का प्रतीक है जो अपने चारों ओर के स्वाभाविक प्राकृत वातावरण से बल लेकर विकास को प्राप्त होता है। कुकुरमुत्ते की कलम नहीं लगाई जाती, वह उगाया नही जाता। इसी तरह सामान्य मानवता स्वत: विकसित चीज है। वह नकद है, उधार नहीं।

'कुकुरमुता को निरालाजी ने दीन-हीन शोषित जनता का प्रतीक माना है और गुलाब को शोषक अभिजातवर्ग का। इस रूपक में परंपरागत भाषा, संगीत, उपमाएँ, शब्दचित्र आदि सब विलीन हो गए है और एक नई कला का जन्म हुआ है। यह कला कुकुरमत्ता के ही समान बंजर धरती की उपय है, उसमें रूप, गंध, रस आदि की कमी है, वह भावों की सुकुमारता में नहीं गुदगुगाती, पाठकों को सोचने के लिए विवश करती है। 'कुकुरमुत्ता' के समान ही उसकी एक सामाजिक उपादेयता है।

'कुकुरमुत्ता' के व्यंग्य के व्याख्याकारों में ऐकमत्य नहीं है। एक विविधता मैंने भी जोड़ दी है। मैंने 'मित्र के प्रति' कविता का ही दूसरा रूप 'कुकुरमात्ता' को बताया है। तदनुसार 'कुकुरमुत्ता' स्वयं कवि का प्रतीक सिद्ध होता है। 'कुकुरमाता' आधुनिक हिंदी की, एक ऐतिहासिक (मूल्य रखनेवाली) कविता है।

'वेला' के आधे गीत गीतिका की शैली और कोटि के है। अवश्य इनमें गीतिका का रस नहीं है। रहस्यानुमूति अधिक दुरूह हो गई है-जिसका अर्थ यह है कि कवि की मानसिक ग्रंथियाँ क्रमश: जटिल होती गई है; किंतु शेष आधे गीतों (गजलों) में, इसके विपरीत, प्रांजलता अधिक है जब भी ये नई गढ़न की चीजें है-व्यंगो की चुमन, अभिव्यक्तियों का नुकीलापन, अलग-अलग बहरों की गजलों, में मुहाबरेदार भाषा का प्रयोग, सब कुछ नवीनता लिए हुए।

वेला में परिमार्जना दिखती है, कुकुरमुत्ता का अनगढ़पन यहाँ नहीं। निराला के सफलतम गीतों में से कुछेक-

रूप की धारा के उस पार कभी धँसने भी दोगे मुझे?

XXXXX

कैसे गाते हो? मेरे प्राणों में आते हो, जाते हो!

XXXXX

हँसी के तारे के होते हैं ये बहार के दिन।

–'बेला' की ही देन हैं। ऐसी ही सन् '42' की जनता की कुंठाओं का चित्रण कजली और लोकगीतों की तर्ज से अत्यधिक प्रभावोत्पादक हुआ है। वस्तु-विस्तार के साथ नई शैली की स्वस्थ चित्ररेखा 'बेला' में मिलती है। यह कहना तो पिष्टपेषण ही होगा कि नई कविता के लिए नई राह निकाले बिना निराला का कोई काव्य-संग्रह नहीं निकला फिर यह बेला' ता युग-संधि-बेला की प्रतिनिधि रचना है।

'नए पत्ते' में 'कुकुरमुत्ता' के '42' वाले संस्करण की सारी रचनाएँ आ गई हैं, जिनमें 'खजोहरा', 'रानी और कानी', 'मास्को डायलाग्स' आदि रचनाएँ उत्कृष्ट व्यंग्य-विनोद के लिए सुप्रसिद्ध है। 'देवी सरस्वती' संग्रह की एक विशिष्ट कला-कृति है। 'कैलास में शरत्' अवचेतन मन की अद्‌भूत देन है। 'स्फटिक-शिला' अपने 'चरम विंदु' के लिए चर्चा में आई है, किंतु भावना की उठान और आकस्मिक मोड़ के कारण वह रस और मनोविज्ञान की द्वंद्वात्मक भूमि पर खड़ी अकेली कला-कृति है। शेष रचनाएँ जनवादी काव्य का प्रतिनिधित्व करती है।

अध्यात्मवाद और समाजवाद के समन्वय की दिशा में 'अर्चना' निराला का नूतन अभियान है। यहाँ व्यक्ति और अभिव्यक्ति, आदर्श और यथार्थ, वस्तु और रहस्य का सहज मिलन हुआ है। पारिभाषिक शब्दों के साँचे में ढला हुआ मिलान नहीं, पुस्तकीय ज्ञान के मकड़ी-जाल से ढँका हुआ मिलन नहीं, पुस्तकीय ज्ञान के मकड़ी-जाल से ढँका हुआ मिलन नहीं, मानवता के विराट और व्यापक विकास के क्रम में जीवनानुभूतियाँ का बंधु-भाव से मिलन। ऐसा लहर का लहर से संबंध-बंधन अनुभूतिप्रवण जीवन की अगाधता का निदर्शन है।

एक महाकाव्य को नाना चरित्रों के माध्यम से महाकवि अपनी भावना-तरंगो का चेतना-समुद्र बनाता है। शताब्दियों की परंपरा से पाठक वैसे समस्त भावावेगों का एकायन करता आ रहा है। मूर्त्ता पात्रों का माध्यम वहाँ एक बार भी अंतविरोध की शंका नहीं उत्पन्न करता। क्योंकि शंका से भी पहले वहाँ समाधान मिलता आ रहा है। इलियड और आडेसी, रामायण और महाभारत-सबमें अनुस्यूति है, तारतम्य है, केवल निराला के गीतो में-परिमल से अर्चना तक के स्वरों के संगीतात्मक आरोह-अवरोह की संगति समझ में नहीं आती; इसका कारण गीतिकवि के पावस्थानीय बहुविध भावों से परंपरित परिचय का अभाव नहीं तो और क्या हो सकता है।

व्यष्टि निराला लघु-लघु गीतों की समष्टि नहीं, जीवन की संपूर्णता की अनुभूति के रस-भावों से भरा महाभारत सा महाकाव्य है।

श्री जानकी वल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, जुलाई 1954, अवंतिका

चार सॉनेट

गजल, रुबाई, सॉनेट, बैलेट, हाइकू आदि काव्यगत विधाओं को भारतीय साहित्यकारों ने अपने कुटुंब में सस्नेह सहेजा है। इसी कड़ी में हिंदी सॉनेट की चर्चा करते हुए ध्यान आता है कि सर्वप्रथम इस विधा को रूपनारायण पाण्डेय ने अपने कविता-संग्रह पराग (1924) में स्थान दिया था। जयशंकर प्रसाद और कुछ अन्य बड़े साहित्यकारों ने भी हिंदी सॉनेट लिखे, लेकिन, आगे चलकर इसे प्रख्यात साहित्यकार त्रिलोचन शास्त्री ने हिंदी साहित्य में स्थापित किया। त्रिलोचन जी के समय में और उनके बाद भी कई ख्यातिलब्ध रचनाकारों ने कुछ सॉनेट लिखे हैं। ग्रीक सभ्यता और कुछ अन्य सांस्कृतिक प्रभावों के साथ तेरहवीं शताब्दी में इटली से प्रारम्भ हुई इस विधा में विभिन्न सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण अनेक प्रयोग भी जुड़ते चले गए। इसके फलस्वरूप, पश्चिमी साहित्य में पेट्रार्कन सॉनेट, स्पेन्सरियन सॉनेट, शेक्सपियरन सॉनेट, मिल्तोनिक सॉनेट आदि की यात्रा तय करते हुए यह आज हिंदी में चतुर्दशपदी के रूपविधान के साथ प्रचलित है। हाल ही में युवा साहित्यकार वेद मित्र शुक्ल ने सौ से अधिक हिंदी सॉनेट लिखे हैं जिनमें से उनके चार प्रतिनिधि सॉनेट यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं:

1.

खिल रहे कमल थे मौन बुद्ध के आस-पास
ये वो उमड़े महकाने को खुद को ऐसे
भौंरे औ मंद हवा हों साथ-साथ जैसे
पर, कोई तो षडयंत्र रचे था एक खास।

छल-दंभ-द्वेष भीतर पाले था सोच रहा
आखिर वह बुद्ध हुआ कैसे उससे ऊपर
है 'धम्म' भला क्या चीज रहा इतरा जिसपर
था देवदत्त को 'धम्म शरण' अरे कहा।

तब नालागिरि पागल हाथी को दौड़ाया
थे बुद्ध सामने या कोई करुणा-सागर

लो शान्त हुआ करुणा का शीतल जल पाकर
दह रही देह पर हाथ बुद्ध का था पाया।

हैं नालागिरि, पर, आज बुद्ध ही नहीं मिलें
सहमे हैं कमल कमलिनी कैसे कहाँ खिलें।

2.

शोर-शराबा भीड़-भाड़ सब ले डूबेगा
तुमको, मुझको, इसको, उसको, हर इक को ही
पहिए हैं ज्यों सांसें थमी हुई सड़कों की
बतलाना ऐ दोस्त! जाम ये कब टूटेगा।
छाँव कहाँ अब, भरी दुपहरी सूरज बरसे
तारकोल सा बहे पसीना मजदूरों के
सिकुड़े माथे ए.सी. कारों में हूरों के
गौरतलब है हर इक रूह सुकूँ को तरसे।

मिट्टी, मानुष, पेड़, परिंदे सब मुश्किल में
रोज हजारों में उगते हों जहाँ इमारत
हर पल ही बर्बादी का लिख रहा इबारत
इन्सां शायद मिले मगर किस्सों-नॉविल में।

आज मशीनें धड़क रहे दिल पर यों भारी
धड़कन-धड़कन हार रही है बारी-बारी।

3.

सुख-सुविधाएं कितनी भी हो महानगर में
लेकिन, लगता नहीं शहर में अपना दिल है,
गाँव लौटना जो चाहूँ तो भी मुश्किल है
कुछ यों फंसी जिन्दगी देखो बीच भंवर में।

भूल गया हो जैसे कोई पाकर के धन-
दौलत कहना, 'खुल जा सिमसिम, खुल जा सिमसिम'
ऐसे में तो बीत रहा हर पल ही जालिम

टुकड़े-टुकड़े करके बाँट रहा है तन-मन।

काश अलीबाबा औ कादार मर्जीना
जैसे कुछ किरदार कहानी में आ जाते
औ सुखान्त कैसे करते हैं वो बतलाते
गाँव लौटकर सच्चा जीवन होता जीना।

पथराए अरमानों के इस महानगर में,
गाँव खोजता फिरा किया मैं डगर-डगर में।

4.

एक शिकारी अन्तिम उससे मुश्किल बचना
देखा है आखिर हिरणी को गोली लगते
लाचारी बेबसी दर्द से तिलतिल मरते
कुछ भी कर लें हम ये वो सब उसकी रचना।

इक पगले बाबा को मैंने चौराहे पर
आसमान को आँख दिखा लड़ते देखा है
पूछे था, किस्मत की ये कैसी रेखा है
लोग भले जो देखे मरते तड़प-तड़पकर।

हैं सवाल अनगिन पर उत्तर कैसे पायें
बहलावे हैं स्वर्ग, नरक या जहाँ सभी कुछ
दूर कयामत, होने को क्या नहीं अभी कुछ
जीते जी सांसें यारा! मरसिया सुनायें।

राम नाम ही जपना अब क्या रहा दोस्त! है
ज्यों कबीर, तुलसी, गांधी ने कहा दोस्त! है।

डॉ. वेद मित्र शुक्ल, अंग्रेजी विभाग, राजधानी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,
राजा गार्डन, नई दिल्ली – 110015, मो. : 9953458727, 9599798727
ई–मेल : vedmitra.s@gmail.com

✧ ✧ ✧

बंद आँखों के नीचे

तुम्हारी बंद आँखों में
बहुत भीतर तक झाँक आया हूँ
अनगिनत बातें हैं वहाँ
कुछ सपने बड़े बन रहे हैं
और कुछ हकीकतें हैं
अपने छोटे पैरों से
चहलकदमी करतीं।

तुम्हारी बंद आँखों के पीछे
बड़ा-सा आकाश है
चमकीले सुर्ख रंग
उभरते-मिटते हैं वहाँ
मैं उन्हें पकड़ना चाहता हूँ
पर वे फिसल कर
भाग जाते हैं तुम्हारी तरह।
तुम्हारी बंद आँखों के ऊपर
पतली-सी नदी है एक
वेग से बहती
यह दुर्गम पहाड़ों पर भी चढ़ जाती है
वाह ऐसा भी मुमकिन है।

तुम्हारी बंद आँखों के नीचे
कुछ ज्यादा नीचे, कुछ और बाँयें
इतने जटिल, उबड़-खाबड़ रास्ते हैं
और ये धड़क रहे हैं
तेज-तेज और कभी धीमे भी
मुझे मालूम है
कि मुहब्बत का ख़जाना
तुमने यहीं कहीं छुपा रखा है
जान गया हूँ
कहाँ से आती है
प्यार भरी इतनी सारी बातें।

भाषा

वे कहने लगे
भाषा हिंसक हो रही थी
जहर उगल रही थी
आँखें लाल-पीली कर तरेर रही थी
भाषा को भाषा होना चाहिए था
अलंकारयुक्त, सौंदर्यमयी
शुभांगी और मृदुल
भाषा को सहिष्णु होना चाहिए था
हमारी संस्कृति के अनुरूप।

बुला लिए सपेरे उन्होंने
भाषा के दाँत उखाड़ने
ढक्कनदार टोकरियों में वे
जमा करते गए दंतहीन भाषा
बीन बजाने और
तमाशाई इकठ्ठे करने की
शास्त्रीय रीतियाँ मालूम थीं उन्हें।

वे चौराहे-चौराहे बताने लगे
मदारी-जमूरे का खेल
पिटारा खोल दिखाने लगे
फूँफकारती भाषा
जीभ लपलपाती भाषा
दूध पीती भाषा और
ढक्कन में बंद हो
पिटारे में सो जाती भाषा।

मदारी डुगडुगी बजा रहे हैं
जमूरे भीख माँग रहे हैं
तमाशाई विस्मित हो देख रहे हैं
भाषा क्या बन रही है!

धर्मपाल महेन्द्र जैन, 1512-17, एन्डेल ड्रिव, टोरंटो एम2 एन2 डब्लू 7, कांडा
फोन नं. : +416 225 2415, ई-मेल : dharmtoronto@gmail.com

तकनीकी तरक्की या त्रासदी

दिनों दिन तकनीकी के विकास का गुल खिल रहा,
प्रेम पतझड़ के, पल्लव बन गिर रहा!
नाम, पद, पहचान नहीं नम्बरों में बंट गए।
तकनीक ने दी त्रासदी, ऐसी की अखियाँ तरस गई
बातें तो होती रहीं, मिलने को अखियाँ बरस गई
दूर थे पर पास दिलों के अब पास होकर दूर
दिल की दूरी बढ़ती गई थे स्नेह प्रेम मानव के मीत
दिन वो आज हैं बने अतीत गांधी ने देखा स्वप्न था।

सब स्वरोजगार हों और आत्मनिर्भर भी
भौतिक सुख भोग रहे नैतिकता नष्ट हुई
सत्य और सत्य व अहिंसा की रट लगाते
हिंसा व असत्य की पगडंडियाँ बनती गईं
इतनी बनी, इतनी बढ़ी
दर, दर दरारें, दिल की दिवार तक दड़क गई
मिसाइलें बना बना, मिसाल कायम कर रहे
मानव तो बने नहीं, मानव-बम बन गए
प्रवंचना विजय की, पर विजय हुए नहीं
यंत्रो का दुरुपयोग कर
घट घट घटती गई, मन की देख मानवता
आँखों को दिखती हैं कम, आपस की एकता
तकनीक की ये त्रासदी, ऐसी की अखियाँ तरस गईं
बातें तो होती रहीं, मिलने को अखियाँ बरस गई
सुख साधानों से मिली शान्ति, विश्व अशान्ति बढ़ती गई
महलों और कारखानों से क्षणिक सुकुन भले मिले
लघु व कुटीर उद्योग टूटते गए, दुश्मनी की देख बस्तियां बसती गई
ऐसी नहीं थी सोच गांधी की, थी कभी नहीं
पर कहते हैं जब तक है साँस
लोगों रखो विश्व शान्ति की आश और सोचे सभी
है ये क्या .....? तकनीकी की तरक्की या त्रासदी?

डॉ. अर्चना त्रिपाठी, श्री अरविंद महिला कॉलेज, काजीपुर, पटना–4
मो. : 7033643268, 9708329867

दिनकर के प्रति

ये दिनकर हैं कोई शुक्र नहीं महीनो तक अंतरद्वन्द चले,
जो उदय हुआ तो अस्त नहीं जो अस्त हुआ तो उदय नहीं।
धरती की ही अपनी गति से ये उदय अस्त का नाता है,
स्थिर होकर एक बिंदु पर दिनकर प्रकाश फैलता है।।

साहित्य गगन के यह दिनकर कैसे मानू मै अस्त हुआ,
कैसे कहदूँ चिरनिद्रा मे वो स्वर्णजागरण व्यस्त हुआ?
हुँकार, हिमालय, कुरूक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी दिया हमें
प्रणभंग, रेणुका, रसवंती, दिल्ली से उपकृत किया हमे।।

जो प्रश्न उठाये दिनकर ने अब भी जंगल मे भटक रहे,
जो राजनीति के तन-मन मे काँटो जैसे हैं खटक रहे।
उनका दर्शन उनका चिंतन क्या और कहीं मिल पायेगा?
गूलर की डाली पर भी क्या फूल कभी खिल पायेगा?

क्या राजनीति साहित्य कभी मिल संग साथ चल पाएँगे?
क्या दिनकर जी के साँचे में ये जन गण मन ढल पायेंगे?
है ओज, जोश, तीव्रता सदा आवेग, उग्रता लक्षण है,
जो भौतिकता से दूर-दूर मानवता के अभिरक्षण है।।

जो रामेश्वर में जाकर के सागर से विनती करते है,
जो विष्णुलक्ष्मी के पद पर अपने मस्तक को रखते है।
जो अपनी मृत्यु माँगते हैं जेपी को जीवनदान मिले,
जिनकी उस विनती को सुनकर थे कालचक्र के पात हिले।।

अगली ही रात त्याग तन को परलोक पंथ पर निकल गए,
जेपी के मरण-वरण के दिन फिर जीवन मे बदल गए।
माता शारद का महाभक्त क्या फिर दुनिया मे आएगा?
साहित्यिक ओस कणों को जो फिर मोती सा चमकाएगा।।

अनगिन कृतियाँ लिखने वाले दिनकर जी को शत-शत वंदन
मैं सत्य हृदय के भावों से करता हूँ उनका अभिनंदन।।

ललित हरि मिश्रा, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9140776120, 9651813346

✧ ✧ ✧

भूख

पेट मे जल रहे अलाव और
उसकी ऊष्मा से तप्त
मनोदशा का स्थायी भाव
जिसके अनुभाव, विभाव, संचारी
सब हो गये व्यभिचारी
शेष है सिर्फ अभाव
जिसके सम्मुख लाचार हैं
सब प्रभाव।

रोटी

आंटे की लोयी के सुकृति स्वरूप का
तवे पर सिंकना, जलना व
रोम-रोम से तपकर चिटकना
और कहना मानव से
तुम भी मेरे लिये गुँथों, तपो, जलो
ग्रीष्म, शीत व बरसात में सहो
दुख, तकलीफ,अपमान
यह कहते हुये कि –
पापी पेट का सवाल है ।

कपड़ा

आवरण नहीं,
सिर्फ तन ढँकने का वरन
पूरी परिभाषा है वस्त्र की,
जिसके विन्यास में छिपा है आकर्षण
और गढ़ता है नित नयी कहानी
व खोलता है पोल,
उस आकर्षण में न्यस्त
मानव आचरण के होते
पूर्ण निर्वस्त्र की।

मकान

ईंट और गारे से निर्मित
एक आशियाना
जिसकी नींव में दफन हैं
कई मन, आशा व अपेक्षाएं
और जो है भवन, महल आदि
बिरादरी का सबसे गरीब तबका,
जिसके सम्मान के भी पायदान हैं
पहले कच्चा फिर पक्का।
हाँ!
मकान एक कलात्मक ढांचा है,
घर नहीं
और घर
परिवार का एक साँचा है,
मकान नहीं।

घर

एक आलय
मनुष्य, पशु या पक्षियों का,
जहां रहता है उनका कुनबा
अपने साझे की संवेदनाओं के साथ,
रहते हैं वहीं पर
सुख, दुख भी बारी-बारी से
सबकी पारी में
कहे, अनकहे भाव संवेद्यों के साथ
घर इसीलिये घर होता है,
मकान नहीं।

श्री अंजनी कुमार सिंह, प्रयागराज, साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन, मो. : 8840949154

'आश' की आस निरास न भई

विनोद नागर

आम तौर पर अपने दैनंदिन जीवन की यादों को सहेजने के लिए लोग डायरी लिखते है। इस अच्छी आदत का लाभ तब सामने आता है जब पकी उम्र में याददाश्त कमजोर पड़ने से इंसान को अतीत में झाँकने में कठिनाई होने लगती है। "लैश बैक में अपनी ही तस्वीर धुंधली नजर आने पर दशकों पूर्व लिखे डायरी के पन्ने समय की गर्द साफ करने का काम करते हैं। लेकिन डायरी के पन्नों में लिखी विगत को जस का तस छाप देने भर से प्रकाशित पुस्तक आत्मकथा की श्रेणी में नहीं आ जाती। इन्दौर की श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के साहित्य मंत्री हरेराम वाजपेयी 'आश' की सद्य प्रकाशित आत्मकथा 'पांच से पचहत्तर तक' को पढ़ते हुए इसी विडम्बना की अनुभूति होती है।

चूँकि वे समिति की प्रतिष्ठित पत्रिका 'वीणा' के प्रबंध संपादक भी हैं। ऐसे में एक वरिष्ठ साहित्यकार की आत्मकथा के पुस्तक रूप में प्रकाशित होने पर जिस सुगढ़ भाषा शैली, लेखकीय प्रवाह और संपादन कौशल की सहज अपेक्षा पाठकों को होती है, उसका यहाँ घोर अभाव है। खास तौर पर जब यह आत्म कथा समूचे मालवांचल की शीर्ष साहित्य संस्था श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य संस्था के पदाधिकारी और जीवन भर हिन्दी के लिए तन, मन धन से समर्पित बिरले हिन्दी सेवी की आत्मकथा के रूप में आपके हाथों में पहुंची हो। पुस्तक पढ़ते समय रोचक प्रसंगों का तारतम्य बार बार टूटता है। बीच बीच में अतिरिक्त पृष्ठों पर दिए गए तीस-चालीस रंगीन छायाचित्र लेखक के शब्द चित्रों का

रसभंग कर पुस्तक को आत्मकथा के बजाय स्मारिकाध अभिनन्दन ग्रन्थ का रूप देते नजर आते हैं।

करीब दो सौ पृष्ठों की इस राम कहानी में बहुतेरी घटनाएँ ऐसी हैं जो समय सापेक्ष होने से प्राय: उस जमाने के हर व्यक्ति के जीवन संघर्ष में घटी हैं। वाजपेयीजी की बुलंद आवाज, जुझारू प्रवृत्ति और दबंग स्वभाव से उनके संपर्क में आने वाला हर व्यक्ति अच्छी तरह परिचित है। इसकी मिसाल उनके बचपन की उस घटना में मिलती है जिसका उल्लेख 'आत्मकथा' में हुआ है– ''स्कूल के शहरी लड़कों ने जब शहर में उठना बैठना सीख रहे अपने नए गंवई सहपाठी को 'हरे राम.. हरे राम' कहकर चिढाना शुरू किया तो दबंगई प्रकट होना ही थी। एक दिन इसी बात से खफा हरेराम ने एक नामाकूल की जमीन पर पटक कर वो धुनाई की, कि मजमा खत्म होते ही बाकी लड़कों ने उन्हें क्लास का मॉनीटर चुन लिया। पर स्कूल प्रबंधन को दादागिरी की यह हरकत नागवार गुजरी। परिणाम स्वरुप नूतन का विज्ञान संकाय छोड़कर पास ही के महाराजा शिवाजी राव हायर सेकेंडरी स्कूल में भूगोल विषय लेना पड़ा।''

अपनी आत्मकथा में वाजपेयीजी ने रचना, सम्मान, पुरस्कार, यात्रा वृत्तान्त, विदेश यात्राएं, हवाई यात्राएं, पर्यटन, तीर्थाटन आदि से लेकर हर उस शख्स का नामोल्लेख किया है जिनसे वे जीवन में एकाधिक बार मिले अथवा जिनका सान्निध्य/सहयोग उन्हें मिला। यहाँ तक कि जिन दिवंगत लोगों की अंतिम यात्रा में वे व्यथित हृदय से सम्मिलित हुए, डायरी में लिखा वह ब्यौरा भी उन्होंने पुस्तक में साझा किया है। आत्मकथा में उन्होंने गाँधी हॉल से अकस्मात स्कूटर चोरी जाने का वाकया.. बेटे की शादी के रिसेप्शन में आज की मशहूर गायिका और तब की बेबी पलक मुछाल द्वारा गीत गाने तक का जिक्र किया है। पुस्तक में उनके अखिल भारतीय बैंक अधिकारी महासंघ के अध्यक्ष पद तक पहुँचने का रोचक वर्णन है। इसके अलावा यूको बैंक के मंडल कार्यालय में हिन्दी अधिकारी के बतौर हासिल उपलब्धियों का जिक्र भी है और मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति से जुड़कर संस्था में साहित्य मंत्री के पद तक पहुँचने की दास्तान भी।

हिन्दी में पिछले पांच दशकों से गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में निरंतर लेखन कर रहे वाजपेयीजी की रचनाएँ नई दुनिया, दैनिक भास्कर, पत्रिका, स्वदेश, हितवाद के अलावा वीणा, समावर्तन, समीरा, मालविका, गन्धर्व, मरू गुलशन, गोलकुंडा दर्पण, अर्पण समर्पण, मानस संगम, राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना आदि में छपती रही हैं। पिछले बाईस सालों में उनके तीन काव्य संग्रह– 'बिना किसी फर्क के' (1998), 'ताना बाना' (2012) और 'कोपल वाणी' (2014) प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी के शलाका पुरुष, शब्द शिरोमणि, देव भारती, जन काव्य भारती, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति सहित मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का जहूरबख्श सम्मान भी उन्हें राज्यपाल के हाथों मिल चुका है। देवआनंद की तरह पचहत्तर साल से ऊपर के इस 'चिर युवा' हिन्दी सेवी की फिटनेस का अंदाजा उनसे मिलने वालों को हर मुलाकात मेंसहज ही हो जाता है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार, समीक्षक और स्तंभकार हैं)

विनोद नागर, मो. : 9425437902, ई–मेल : vinodnagar56@gmail.com

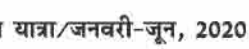

एक आयोजन में बोए से प्रो. कलानाथ मिश्र, संपादक साहित्य यात्रा, बीच में हैं प्रसिद्ध गीतकार डॉ. चंद्रिनाथ मिश्र एवं दाएं प्रो. नवलनंद प्रसाद गुप्त।

साहित्य यात्रा के विभिन्न अंकों का अवलोकन करने के पश्चात पत्रिका की सराहना एवं बहुमूल्य सुझाव देते प्रख्यात आलोचक प्रो. नन्द किशोर नवल।

प्रसिद्ध सांस्कृतिक संस्था चेतना समिति द्वारा आयोजित जगन्नाथ मिश्र जयन्ती समारोह का एक दृश्य। मंच पर बाएं से श्री विजय कुमार मिश्र, डॉ. इन्द्रकांत झा, बीच में हैं डॉ. कलानाथ मिश्र, श्री नरेश मिश्र एवं हिन्दी ग्रंथ अकादमी के निदेशक डॉ. दिनेश चंद्र झा।

RNI No. BIHHIN05272
ISSN 2348 - 1908
Postal Registration No. : PT-76

नंदकिशोर 'नवल'

2 सितम्बर 1937 – 12 मई 2020